संस्कृत के अभिनव रचनाधर्मी :
आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

सम्पादक

प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत विभाग तथा डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) के वरिष्ठतम आचार्य हैं। उनका अनुभव-संसार विस्तृत है तथा लेखन बहुआयामी और विपुल है।

प्रस्तुत ग्रन्थ, संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी के शिखरस्थ विद्वानों में से एक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर आधारित लेखों, समीक्षाओं का संग्रह है, यह उन भावनाओं का प्रसून है, जो उनके वरिष्ठ, समवयस्क तथा कनिष्ठ जनों के द्वारा समर्पित की गई हैं। त्रिपाठी जी के समस्त जीवन को रेखांकित करने वाला यह ग्रन्थ संस्कृत की वर्तमान रचनाधर्मिता का प्रतिनिधित्व करता है। त्रिपाठी जी काव्य, कथा, नाटक, उपन्यास, आख्यान, प्रेक्षणक, गजल, दैनन्दिनी आदि समस्त विद्याओं के साथ काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र पर भी अपनी पैनी पकड़ बनाकर रखने वाले आचार्य हैं। इनकी रचनाएँ लगभग 40 पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं।

संस्कृत के अभिनव रचनाधर्मी आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

सम्पादक

प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता

अध्यक्ष, संस्कृत–विभाग

सम्पादक मण्डल

डॉ. नौनिहाल गौतम

डॉ. रामहेत गौतम

डॉ. किरण आर्या

डॉ. सञ्जय कुमार

डॉ. शशिकुमार सिंह

डॉ. ऋषभ भारद्वाज

संस्कृत–विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर (म.प्र.) 470003

Satyam

सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस

नई दिल्ली (भारत)

इस पुस्तक में व्यक्त विचार लेखक/सम्पादक के व्यक्तिगत हैं। इस पुस्तक में व्यक्त विचारों से किसी भी प्रकार की होने वाली हानि के लिए शब्द संयोजक, मुद्रक तथा प्रकाशक का कोई भी दायित्व नहीं होगा।

ISBN : 978-93-83754-11-3

प्रकाशकः
सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस
एन-3/25, मोहन गार्डन, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-110059 दूरभाषः 011-25358642
ई-मेल-satyampub_2006@yahoo.com
मो. 09899665801, 09968277749

संस्कृत के अभिनव रचनाधर्मी : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

मूल्य : 700.00
प्रथम संस्करण : 2014
© सुरक्षित

भारत में प्रकाशित

आर.डी. पाण्डेय द्वारा **'सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस'**, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित। **कॉन्वेक्स पब्लिशिंग हाऊस**, नई दिल्ली द्वारा टाईपसेटिंग तथा **विशाल कौशिक प्रिंटर्स**, शहदरा, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी अपने शैशव से अद्यपर्यन्त सारस्वत साधना में तत्पर हैं। आपने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से सरस्वती के भण्डार को समृद्ध करने में अपने समय का सदुपयोग किया है।

15 फरवरी 1949 को जन्म लेने वाले त्रिपाठी जी ने अपने जीवन के 65 वर्षो में इतने ग्रन्थ प्रणीत, अनूदित और सम्पादित किये हैं, जिनका औसत प्रतिवर्ष लगभग 4 ठहरता है। इसके अतिरिक्त शतशः शोधलेख, भाषण तथा साक्षात्कार आदि के द्वारा साहित्य की वृद्धि की है। आपने उदयपुर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग में अध्यापन की शुरूआत की और फिर सागर विश्वविद्यालय में लेक्चरर,रीडर और प्रोफेसर के पद पर रहते हुए शैक्षिक दायित्वों को पूर्ण किया। इस बीच आपने बैंकाक में अतिथि आचार्य के रूप में भी कार्य किया। कुलपति के रूप में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के इतिहास में इनका काल स्वर्णकाल के रूप में उल्लेखनीय है। 28 फरवरी 2014 को आप डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से सेवानिवृत्त रहे हैं।

इस अवसर पर आपके शिष्यों और स्निग्धजनों की ओर से आपको यह ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है। निश्चय ही आप जैसे आदर्श गुरु को शिष्यों की ओर से यह सारस्वत उपायन स्मरणीय है। शिष्यों के अतिरिक्त आपके सहयोगियों और कतिपय मित्रों ने भी इस उपायन में अपनी भावाँजलि का संयोजन किया है। यह ग्रन्थ साहित्यिक जगत् के लिये अनुपम उपहार सिद्ध होगा ऐसा मैं मानता हूँ।

ग्रन्थ में त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व से संबंधित पुष्कल और प्रामाणिक सामग्री संकलित की गई है। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में निबद्ध इस सामग्री में जहाँ एक ओर, प्रो. आभिराज राजेन्द्र मिश्र डॉ. रमाकान्तशुक्ल और डॉ. राजकुमार मिश्र ने उनके जीवनवृत्त और व्यक्तित्व के विविध पक्षों का कवित्वमय प्रकाशन किया है, वहीं दूसरी ओर आचार्य कृष्णकान्त चतुर्वेदी, डॉ. विजय बहादुर सिंह, डॉ. रहस विहारी द्विवेदी,

डॉ. भागीरथिनन्द, डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय आदि ने उनकी विविध रचनाओं की समीक्षा और विशेषता प्रस्तुत की है। प्रो. गंगाधर पाण्डा ने संस्कृत माध्यम से शिवसंकल्प का अभिनंदन किया है। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने 15.02. 2013 को उदयपुर विश्वद्यालय में आचार्य त्रिपाठी के सम्मान में आयोजित संस्कृत कवि गोष्ठी के अवसर पर एक संस्कृत रचना 'राधावल्लभलहरी' पढ़ी थी। उसे भी ग्रन्थ सम्पादक ने इस ग्रन्थ में सम्मिलित करने की कृपा की है। इस रचना में साधारण पदावली में त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

हिन्दी माध्यम से त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व एवं ग्रन्थों का परिचय एवं समीक्षण डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता, डॉ. ओमप्रकाश राजपाली, डॉ.परमानन्द मिश्र, डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, डॉ. वत्सला, डॉ महेश कुमार द्विवेदी, डॉ. नौनिहाल गौतम, डॉ. सञ्जय कुमार, डॉ. अजय कुमार मिश्र, डॉ. रामहेत गौतम, डॉ. शशिकुमार सिंह, डॉ. कौशल तिवारी, डॉ. बाबूलाल मीना, डॉ. संजय कुमार दुबे, श्री पी. आर. मलैया, डॉ. ऋषभ भारद्वाज डॉ. प्रतिभा शर्मा, श्रीमती रुचि (दीक्षित) भार्गव, डॉ. माधवी श्रीवास्तव, डॉ. दीपक शर्मा, डॉ. विष्णु मीणा, श्री बलभद्र ब्राह्मण, श्री प्रदीप दुबे, सुश्री राखी श्रीवास्तव, श्री अखिलेष कुमार मिश्र आदि ने किये हैं।

संस्कृत माध्यम में डॉ. नारायणदाश, डॉ. धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेव, डॉ. किरण आर्या, डॉ. प्रियव्रतमिश्र, श्री मनीषचन्द्रपाण्डेय आदि गवेष्णात्मक शोध निबंध के द्वारा त्रिपाठी जी के कृतित्व–व्यक्तित्व पर प्रकाश डाले हैं।

अंग्रेजी माध्यम से डॉ. के. के. मिश्रा एवं डॉ. रेखा राय ने त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का रेखांकन करने का सराहनीय प्रयास किया है।

समग्रतः यह अभिनन्दन ग्रन्थ का एक साहित्यिक महामानव के प्रति अपनी आदर भावना को प्रकट करने के साथ ही उनके महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अवदान का परिचायक भी है। इस सारस्वत अनुष्ठान के आयोजकों, संयोजकों और सम्पादकों को मैं भूरि भूरि अभिनन्दनांजलि समर्पित करता हूँ। साथ ही अभिनन्दन ग्रन्थ के स्वीकर्ता आचार्य त्रिपाठी जी और उनकी प्रेरणा शक्ति, धर्मपत्नी श्रीमती सत्यवती त्रिपाठी जी का भी अभिनन्दन करता हुआ उनके समुज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

27.02.2014 **डॉ. रमाकान्त शुक्ल**

महाशिवरात्रि वि. 2070

भूमिका

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के ''वाग्वल्लभ'' प्रो. कान्तिकुमार जैन के ''संस्कृत विभाग के कैनेडी'' डॉ. भारतेन्दु मिश्र के ''संस्कृत के प्रगतिशील चिन्तक'' प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी के ''सागर का मोती'' डॉ. महेश द्विवेदी के ''सारस्वत साधना के शाश्वत मनीषी'' पत्नी डॉ. सत्यवती त्रिपाठी के ''मौन साधक'' तथा बेटी चिन्मयी के ''सुपरमैन'' इत्यादि विशेषताओं से अलंकृत, संस्कृत के शिखरस्थ विद्वानों में से एक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के चहुँमुखी गुण निश्चित ही उपर्युक्त आलेखों में तो प्रदर्शित होते ही हैं इसके साथ ही उनकी कुछ विशेषताएँ उनके द्वारा ही रचित ''सम्प्लवः नामक काव्य–संग्रह के राधा–वल्लभलहरी में इस प्रकार से प्रकट होते हैं –

ग्रन्थन्नैकविधान् स्वयं विरचयन् सम्पादयन् वाऽथवा,
संगोष्ठीर्विविधा विमर्शबहुला नाट्यस्य वा प्रस्तुतिः।
नानाशास्त्रविदां समाजमपि वा संयोजयन् कौशलाद्
राधावल्लभ एष किन्न भविता धाराधरावल्लभः।।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का लेखन बहुआयामी तथा विपुल है। संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी में इस लेखन के अन्तर्गत काव्य, कथा, उपन्यास, नाटक, गीत, ग़ज़ल, दैनन्दिनी, शोधपत्र, आदि विधाओं के साथ काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उनका अनुभव–संसार विस्तृत है तथा लगभग 40 पुरस्कारों से सम्मानित उनकी रचनाएं परम्परा और आधुनिकता का मिश्रण हैं।

त्रिपाठी जी के स्वाध्याय का अधिकांश समय सागर में विश्वविद्यालय में शिक्षण के साथ अन्यान्य अकादमिक कार्य कर करते हुए व्यतीत हुआ है। इस अवधि में ही उनके विदेशभ्रमण तथा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के अत्यन्त व्यस्त तथा गौरवपूर्ण कुलपति के पद पर नियुक्ति के काल में भी उनके कार्यों

की समीक्षा की जाएं, तो आश्चर्य होता है कि वे अन्य सभी दायित्त्वों के साथ इतना अधिक लेखनकार्य कैसे कर लेते हैं ! अपने लेखन कार्य में निरन्तरता और निर्भीकता को ''सन्धानम्'' नामक काव्यसंग्रह की प्रस्तावना में वे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

यदि नो शृणुते कश्चिद् यदि नैव पठत्यपि।
तेन मे किमिह च्छिन्नं विच्छिन्नं विकले भवे।।

भवभूति के समान भविष्य में अपने समानधर्मा की प्रतीक्षा वे नहीं करते, उनका कार्य तो लिख देने का है। उसे कोई पढ़े या न पढ़े इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। इस प्रकार कवि लिखता जाता है, किन्तु उस लेखन की समीक्षा कैसी–कैसी होगी यह वह स्वयं नहीं जानता।

त्रिपाठी जी के लेखन कार्य की समीक्षाएं प्रस्तुत ग्रन्थ के लगभग 45 लेखों में है, जो उनके वरिष्ठ, समवयस्क और कनिष्ठ जनों के द्वारा की गई हैं। अग्रज पद्मश्री डॉ. रमाकान्त शुक्ल जी ने प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। ग्रन्थ के प्रकाशन में सम्पादक मण्डल ने भी अहर्निश परिश्रम किया है। मैं इन सभी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ तथा अत्यन्त हर्षान्वित होकर यह ग्रन्थ सुधी जनों को समर्पित करती हूँ।

महाशिवरात्रि वि.– 2070 **प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता**

अनुक्रमणिका

1. सो ऽस्मन्मनोवल्लभः
   आचार्य अभिराजराजेन्द्रमिश्रः 11
2. राधावल्लभलहरी
   आचार्य रमाकान्तशुक्लः 14
3. राधावल्लभवैभवपञ्चाशिका
   डॉ. राजकुमारमिश्रः 30
4. कल्पक गतिशील व्यक्तित्व : डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
   आचार्य कृष्णकान्त चतुर्वेदी 41
5. आचार्य राधावल्लभ के जीवन–प्रस्थानत्रय
   डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्रः 44
6. एक जनोन्मुखी बहुविद्याधर : राधावल्लभ त्रिपाठी
   डॉ. विजय बहादुर सिंह 62
7. राधावल्लभ त्रिपाठी और उनका रचना संसार
   डॉ. रमाकान्त पाण्डेय 69
8. तोते के मुख से नारी–संघर्ष की कथा–अभिनवशुकसारिका
   प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता 96
9. लहरीदशकम् में लोकचेतना के प्रसंग
   डॉ. ओम्प्रकाश राजपाली 106
10. संस्कृत साहित्य को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का योगदान
    डॉ.परमानन्द मिश्र 112
11. उपाख्यानमालिका में युगबोध
    डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन 117
12. लोकधर्मी परम्परा के समीक्षक आचार्यराधावल्लभ त्रिपाठी एक विश्लेषण
    डॉ. वत्सला 126
13. आचार्य त्रिपाठी जी की कतिपय कृतियों का अभिनव वैशिष्ट्य
    डॉ महेश कुमार द्विवेदी 136
14. संस्कृत काव्य विधाओं को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का योगदान
    डॉ. नौनिहाल गौतम 144
15. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की दृष्टि में काव्य, कवि एवं समीक्षक
    डॉ. सञ्जय कुमार 153

16. "अहम् ईक्षे की अनुवाद विच्छित्ति"
डॉ. अजय कुमार मिश्र 163
17. तण्डुलप्रस्थीयम् के नायक निरंजन का व्यक्तित्त्व–एक अध्ययन
डॉ. रामहेत गौतम 166
18. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जनवादी कवित्व
डॉ. शशिकुमार सिंह 179
19. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की भाव तरंगों का व्यक्तिकरण–'लहरीदशकम्'
डॉ. कौशल तिवारी 186
20. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र को अवदान
डॉ. बाबूलाल मीना 195
21. लोकधर्मी परम्परा का काव्यस्वरूप
डॉ. संजय कुमार दुबे 208
22. अभिनव काव्यालङ्कारसूत्र–एक विवेचन
पी. आर. मलैया 212
23. लोक चिन्तक : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी
डॉ. ऋषभ भारद्वाज 219
24. भारतीय आख्यान परम्परा एवं उपाख्यानमालिका
डॉ. प्रतिभा शर्मा 236
25. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के नाटकों में सामाजिक चेतना
श्रीमती रुचि (दीक्षित) भार्गव 244
26. दमयन्ती नाटक में नारी शक्ति का गौरव
डॉ. माधवी श्रीवास्तव 251
27. दमयंती नाटक में लोक चेतना
डॉ. दीपक शर्मा 261
28. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत "लहरीदशकम्"–काव्यसंग्रह की प्रासंगिकता
विष्णु मीणा 269
29. सुशीला रूपक में नारी सशक्तिकरण
बलभद्र ब्राह्मण 275
30. सुशीला नाटक में सामाजिक चेतना
प्रदीप दुबे 279
31. भुवनदीप में समाज चिन्तन
राखी श्रीवास्तव 286
32. लहरीदशकम् में पर्यावरण चेतना
अखिलेष कुमार मिश्र 289
33. संसरणसमीक्षा
आचार्य रहस विहारी द्विवेदी 296

34. शिवसकङ्ल्पः
प्रो. गंगाधर पंडा 302
35. राधावल्लभस्य 'समष्टिः'
भागीरथिनन्दः 304
36. अभिनवाचार्यराधावल्लभीयसारस्वतसाधनासु मानवीयसंवेदनाया अभिनवत्वम्
डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्यायः 311
37 आचार्यराधावल्लभत्रिपाठिमहोदयानाम् आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये योगदानम्
प्रो. मिनति रथः 316
38. अन्यच्चोऽयं सुललितकथाबन्धगर्भो कवीनाम्
डॉ. नारायणदाशः 321
39. नाट्यशास्त्रविश्वकोशः : राधावल्लीयो विमर्शः
डा. धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेवः 330
40. आचार्यराधावल्लभकृतलहरीदशके राष्ट्रचिन्तनम्
डॉ. किरण आर्या 333
41. संस्कृतस्याभिनवरचनधर्मिता आचार्यराधावल्लभत्रिपाठी च
डॉ. प्रियव्रतमिश्रः 337
42. अभिनवकाव्यालङ्.कारसूत्रसन्दर्भे रीतितत्त्वविवेचनम्
मनीषचन्द्रपाण्डेयः 341
43. Gentleman Authority,
Prof. K.K. Misra 347
44. Environment thinking in Laharidashakam
Dr. Rekha Rai 348
45. भूली बिसरी यादें
डॉ. श्रीमती सरला दीक्षित 351
46. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी–कुछ संस्मरण
डॉ. रामरतन पाण्डेय 354
47. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी–असाधारण व्यक्तित्व और उनके संस्मरण
हेमलता विल्थरिया 359

सोऽस्मन्मनोवल्लभः

डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्रः

स्वाध्यायोत्तमविग्रहो मतिमतां धुर्यस्सुहृद्वत्सलः
आत्मान्विष्टपथाऽध्वनीन उदितः स्वीयैर्न्नदित्यैर्गुणैः।
दिल्ल्यामत्र हि शारदैककृपया दैवैस्समारोपितो
राधावल्लभवल्लभो विजयते साहित्यकल्पद्रुमः।।1।।

यातास्ते किल कण्टनिष्कुटदरी विश्रान्ति लब्धोत्सवा
विक्षिप्ता मरूमारूता प्रणयिन श्शारवोट शारवाभृताम्
सम्प्रत्यत्रे सुमासवार्थिमधुव्राताऽदरेऽहर्निशं
लग्नः कश्चिदुदेति चम्पकतरूर्वासन्तवाटीवटुः।।2।।

यद्वाणी वरर्णिनीव रूचिरा हृद्यानवद्योज्ज्वला
नव्यैर्लोककथात्रमैः सहृदयान् सोत्कान् करोत्युन्मदान्।
सोऽयं चित्तयबान्धवो विजयते विन्ध्याद्रिसन्मार्मि को
राधावल्लभनामधेयमहितः साहित्यनौधीवरः।। 3।।

अम्भोधौ विनिगूहितोऽपि गतवान् यो रत्नसन्धुर्यतां
शैतल्यञ्च दृगाग्नितापविधुरे भाले भवस्यादधे।
सर्वोच्चं शुशुभे स रात्रिरमणी सौभाग्यहेतुर्विधुः
राधावल्लभतामुपेत्य कवितालङ्कारचर्चास्पदम्।। 4।।

नित्यं प्रेक्ष्य मुखच्छविं वसुमतीं संवेदनादर्पणे
योऽतिकाम्य शिशुत्वसंविदनघं सौम्यं स्फुरद्यौवनम्।
जतःप्रौढिविकस्वरो नववयस्येवाकरस्सम्पदां
जीव्यात्साधु शतं समाः कुलपतिःसोऽस्मन्मनोवल्लभ।। 5।।

कुलमुख्यपदारूढं प्रेक्ष्य बन्धुं गुणाकरम्।
मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रो वल्लभं स्तौति सद्गुणैः।।
कौलपत्यममूर्द्धन्यं नूनं यस्य प्रतिष्ठया।
स विन्देत शतायुष्यं वल्लभो लसतां सताम्।। 6।।

भवेत्छतायुस्स हि वल्लभः कविः

श्रुतेन यत्नेन च वागुपाश्रिता
यदीयकण्ठे वसतिं वितन्वती ।
चकार तं पण्डितमण्डलीमणिं
नमामि तं गोकुल सुनुवल्लभम्।।1।।

स राजधान्या नवदेहलीस्थया
पुरस्कृतस्सम्प्रति विद्वदाश्रवः।
विपश्चितां धुर्युपमानसुश्रिया
चकास्ति तारापरिधौ नु चन्दिरः ।। 2।।

अवाप्य सारस्वतसानु साहिती –
अकादमीभूभृति काम्यशेखरम्।
प्रवर्धयत्येव न कस्य भास्वरं
यशोऽनघं वल्लभ एष कोविदः।। ३।।

स्फुरल्लहर्या दशसंख्ययाऽधुना
विधाय सन्धानपदेनकौतुकम्
सचेतसां यो हि मनांस्यकीरमत्
भवेच्छतायुस्स हि वल्ल्भः कविः।। 4।।

अकादमीमण्डितमस्य जीवनं
वसन्तहृष्टं सहकारसन्निभम्।
सुहृत्पिकानां भवतात्प्रहर्षदं
समृद्धसारस्वतसंसदि ध्रुवम् ।। 5।।
सुतात्रयी यस्य सुद्दापगानिभा
ऋतम्भरा सत्यवती च सङ्गिनी।
स देवतात्मा भुवि वल्लभाचल
स्त्रिपाठिवर्यो हृदि मेऽभिराजताम्।। 6।।

स काव्यशास्त्रोभयमर्मपारगः
बुधेन्द्रकान्तारविहारिकेसरी।
वशंवदानां जयजीववाचिकैः
शतं समा नन्दतु लोकवल्लभः।। 7

साहित्याकादमीमान्यं सुहृद्वर्य वुधोत्तमम्।
अभिनन्दति राजेन्द्रस्तमिह राधावल्लभम्।।८

पूर्वकुलपति
संपूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी

राधावल्लभलहरी

रमाकान्तशुक्लः

श्रीराधावल्लभ! जय जय त्रिपाठिन्! कवीश्वर! जय।
जय विद्या–रत्नाकर! शताधिकग्रन्थलेखक! जय ।। 1 ।।

जय जय राधावल्लभ! विबुधमनःकेकिनीरदवर!
वाग्देवीपदपद्मद्विरेफ कविकुलमणे बुधवर! ।। 2 ।।

विद्वद्वंश–सुमुक्ताफलविद्वज्जनचकोर–राकेन्दो!
जय हे राधावल्लभ शिष्यान्तर्ध्वान्तदारणादित्य! ।। 3 ।।

जय हे सद्गुणमन्दिर! साहित्याम्भोधिमन्दर! जय।
श्री–विद्या–साधक! जय संगणकाभिन्नबन्धो जय ।। 4 ।।

त्वं शिवरात्र्यां जातः फेब्रुअरी–पञ्चदशदिवसे।
नन्दाब्ध्यंकात्म (1949) मिते राजगढे मध्यदेशगते ।। 5 ।।

श्रीगोकुलप्रसादस्त्रिपाठिवर्यः पिता भवतः।
पुण्यश्लोका माता गोकुलबाई मता भवतः ।। 6 ।।

गोकुलबाई माता जनको गोकुलप्रसादस्ते।
त्वमपि च गोकुलसेवी वाचामाचार्यतां कुर्वन् ।। 7 ।।

राजगढे छतरपुरे सागरनगरे भवञ्छात्रः।
स्मृति–मेधा–सम्पन्नो गुरुभिः श्लाघ्यो भवाञ्जातः ।। 8 ।।

मध्यप्रदेश–राज्ये यन्नगरं ब्यावराह्वयं लसति।
तत्रस्थया विवाहो जातस्ते सत्यवत्या सह ।। 9 ।।

भूत्वा कुटुम्बिनी ते सा निरता गेहकार्येषु।
गृहिणी सचिवो मित्रं सती सहायं तवाचरति ।। 10 ।।

सास्ते परातिथेयी कुलद्वयस्य प्रतिष्ठा सा।
स्वाधीनभर्त्तृकाऽथो कवयित्र्यध्यापिकोदारा ।। 11 ।।

सत्पुत्रः सज्जनकः सच्छिष्यः सद्गुरुस्त्वमसि।
सन्मित्रं सत्पतिरसि सत्कुलपतिरसि जगत्ख्यातः ।। 12 ।।

अतिथिस्त्वमातिथेयो गुणाकरस्त्वं गुणज्ञस्त्वम्।
त्वं शिष्यकल्पवृक्षः त्वं प्रतिभा–पूजको विलससि ।। 13 ।।

उदयपुरादध्यापनयात्रा भवतः प्रवृत्ता या।
तां सागर–दिल्लीस्थो विस्मर्तुं नो भवान् शक्तः ।। 14 ।।

यस्मिन् कक्षे भवता छात्रा अध्यापिता आसन्।
स्मरन् स भवतोऽध्यापनकौशलमद्यापि मुदितोऽस्ति ।। 15 ।।

ये च सतीर्था भवतस्ते भवतो गुणगणान् प्रशंसन्ति।
सहयोगिनश्च भवतः स्वभावमद्यापि शंसन्ति ।। 16 ।।

धन्योदयपुरधरणी पण्डितराजेन सेविता पूर्वम्।
यत्राध्यापक आसीः प्रथमं त्वं महोत्साहः ।। 17 ।।

यूनीवर्सिटिरास्ते धन्येयं यत्र यौवनारम्भे।
राधावल्लभ आसीत् युगर्षिरध्यापकोऽनुपमः ।। 18 ।।

नो जानीते कश्चित् कदा भवाँल्लिखति सद्ग्रन्थान्।
प्रकाशितास्ते भूत्वा भवतो व्यञ्जन्ति सामर्थ्यम् ।। 19 ।।

श्लोकान् रचयसि कुतुकात् गद्यं ग्रथयसि गरिम्णा त्वम्।
वदतां वरोऽसि नाटक–कर्त्ता त्वं चिन्तकोऽसि त्वम् ।। 20 ।।

गायसि यदा स्वगीतं रागनिबद्धं सभामध्ये।
लोकोत्तरमानन्दं जनयसि सहृदयजनमनस्सु ।। 21 ।।

जगतः पीडा यास्ते सा ते पीडास्ति कवितायाः।
लोकस्य शिवं कांक्षसि ग्रथ्नन् विविधाः स्वरचनास्त्वम् ।। 22 ।।

चतुष्षष्टिवर्षेषु ग्रन्थाः सिद्धाः शतोर्ध्वं ते।
आश्चर्यं जनयति ते व्यक्तित्वं लोकचित्तेषु ।। 23 ।।

द्विशतप्राया लेखाः शतोर्ध्वसंख्यास्तथा ग्रन्थाः।
रङ्गप्रस्तुतयस्ते ह्याविष्कुर्वन्ति प्रतिभानम् ।। 24 ।।

करुणापूरितहृदय! त्वया सुशीलाख्यनाटकं रचितम्।
नार्याः करुणकथां तत् कथयति मर्मस्पृशा रीत्या ।। 25 ।।

गीतधीवरे भवता संगीताधारगीतमुद्गीतम्।
संसरणेऽक्षर–मात्रा–मुक्तच्छन्दांसि रचितानि ।। 26 ।।

गंगादण्डक–रचना दीर्घच्छन्दश्चमत्कृतिं धत्ते।
'अन्यच्चो' पन्यासो गद्यग्रथनस्य गौरवं गिरति ।। 27 ।।

तण्डुलप्रस्थीयाख्यं प्रकरणमास्ते बलप्रदं नृणाम्।
पेयजलस्य समस्यां समादधत्यत्र पात्राणि ।। 28 ।।

प्रेक्षणसप्तकमास्ते संकलनं दृश्यकाव्यानाम्।
यत्राधुनिकसमस्याः सरसतया चित्रिताः सन्ति ।। 29 ।।

सोमप्रभा स्वमातुः प्राणानां रक्षणं कुरुते।
सौरभ इच्छाशक्त्या मेघं पश्यति लतासहितः ।। 30 ।।

धीवरस्य दयितास्ते शकुन्तलानामिका स्निग्धा।
उभौ मिलित्वा कुरुतो गृहनिर्माणाय निजयत्नान् ।। 31 ।।

श्रममाहात्म्यं दृष्ट्वा मुक्तिं लभते नरश्चैकः।
श्रेष्ठी मशकैर्दष्टो निद्रां त्यक्त्वा पलायितो भवति ।। 32 ।।

गणेशपूजननाट्ये जनतन्त्रस्य प्रतिष्ठास्ते।
स्वसुतासन्देहकरः पश्चात्तापं करोति पिता ।। 33 ।।

लहरीदशके काव्ये रूमी–रचनानुवादे वा।
नवनवप्रतिभोन्मेषो भवतो लक्ष्यो भवति कविवर ।। 34 ।।

'भ्रान्त्वायातः सायं' 'सारं सारं' च 'यात्रेयम्'।
'तारय हे' प्रभृतीनि त्वदीयगीतानि राजन्ते ।। 35 ।।

षोडश्यां संकलिताः विंशशताब्द्यां समुत्पन्नाः।
संस्कृतकवयो भवता सारस्वतसाधनालीनाः ।। 36 ।।

इतिहास–पुराणानां संकलनं त्वं विधाय तत्सारम्।
एकस्मिन् ग्रन्थे किल जिज्ञासुभ्यः समुपहरसि ।। 37 ।।

नाट्यं सागरिकामथ प्रख्यां संस्कृतविमर्शं च।
सम्पाद्य तथानेकान् ग्रन्थाँस्त्वं विजयसे विद्वन्! ।। 38 ।।

लोकज्ञ! लोककीर्तक! लोकाराधक–समुद्बोधक!
लोकस्य पीडया त्वं द्रवसि तवानेकरचनासु ।। 39 ।।

लोकः शास्त्रं विविधाः कला रसाः किञ्च विज्ञानम्।
कारुण्यभूमिकायाम् 'अन्यच्चे' त्यत्र दृश्यन्ते।। 40 ।।

मातृसूक्तरचनार्थं स्वात्मा व्यापारितो भवता।
भूत्वा जननीदेवो ध्यायसि नैजां प्रसूं चित्ते ।। 41 ।।

शुकसारिकामुखेन त्वं गायस्यभिनवां गाथाम्।
समकालीनसमाजं वर्णयसि त्वं समस्याश्च ।। 42 ।।

अभिनवकाव्यालंकृति–सूत्रेष्वाचार्यता स्फुटा तेऽस्ति।
अन्ये सद्ग्रन्था अपि वैदुष्यं ते पिशुनयन्ति ।। 43 ।।

गुणिगणगणनारम्भे कनिष्ठिकाधिष्ठितो हि भवान्।
उत्साहस्ते धन्यो निस्तन्द्रत्वं तथा धन्यम् ।। 44 ।।

विश्वसनीयं नास्ते तथ्यमिदं साम्प्रतं लोके।
कोऽप्यल्पायुषि युवकः शताधिकग्रन्थकर्ता स्यात् ।। 45 ।।

किन्तु विलोक्य भवन्तं नवनवरचनाकरं सततम्।
विश्वासोऽयं पुष्टो भवति जनानां मनस्सु साश्चर्यम् ।। 46 ।।

विविधाभिः संस्थाभिः ख्यातैर्नैकैः पुरस्कारैः।
सम्मानितोऽसि विद्वन् कस्तान् गणयेन्नरोऽल्पज्ञः ।। 47 ।।

आस्ट्रेलियाष्ट्रिया वा थाईलैण्डं च हालैण्डम्।
शर्मण्यधरा वास्ताम् सर्वं त्वं भाषणैर्जितवान् ।। 48 ।।

काव्यशास्त्रसुविनोदनकर्मणि लीनो भवाँस्तिष्ठति।
व्यर्थं क्षणमपि नयसि न भवादृशो ना भवानेव ।। 49 ।।

साहित्यं संगीतं कलाश्च ते सन्ति मित्राणि।
एषामनुसन्धाने त्वं निजकालं नयसि धीमन् ।। 50 ।।

धन्यास्त एव गुरवो येषां शिष्याः सुयोग्याः स्युः।
भवतोऽपि नैकशिष्या विद्यावन्तः प्रशस्यन्ते ।। 51 ।।

पाण्डेय-रमाकान्तो भागीरथिनन्द-धर्मेन्द्रौ।
रामलखनपाण्डेयः पण्डा श्रीक्षेत्रवासी च ।। 52 ।।

एते तथैव चान्ये विद्या–विस्तारणे लीनाः।
प्राध्यापन–सम्पादन–लेखन–कर्मणि रताः सन्ति ।। 53 ।।

राष्ट्रपतिर्धर्मेन्द्रं सम्मानितवान् गते वर्षे।
साहित्याकादम्या भागीरथिनन्द–सत्कृतिश्च कृता ।। 54 ।।

संस्कृत–संस्थानांगे मुक्तस्वाध्यायपीठके विद्वान्।
नैकग्रन्थरचयिता निदेशकः श्री रमाकान्तः ।। 55 ।।

भोपाले विश्वोत्तर–विद्यालय–संस्कृताचार्यः।
विद्यावितरणशीलः पण्डा श्रीक्षेत्रवास्यस्ति ।। 56 ।।

माताजीजाबाईसंज्ञककालेज इन्दौरे।
प्राध्यापिकार्चनास्ते जोशीवंशोद्भवा नम्रा ।। 57 ।।

स्फुरद्रत्नसंकाशैरेतैरन्यैस्तथा भवच्छिष्यैः।
विस्तार्यते प्रकाशः संसारे देवभारत्याः ।। 58 ।।

विद्यावंशो भवतो जयताल्लोके प्रतिष्ठितो भूत्वा।
तव शिष्यैः सद्गुरुभिर्भूत्वा शिष्यात्पराजयः काम्यः ।। 59 ।।

त्वं संस्कृतकवितायाः स्वर्णयुगं स्वं युगं मनुषे।
समकालीनाः कवयो रससिद्धास्ते जयन्तु चिरम् ।। 60 ।।

एतेष्वाचार्यरथोऽभिराजराजेन्द्रमिश्रवरः।
इच्छारामः 'प्रणवो' मणिर्जनार्दनप्रसादपाण्डेयः ।। 61 ।।

'सनातनः' श्रीरेवाप्रसादसंज्ञो द्विवेदवरः।
स्वातन्त्र्यसम्भवाख्यं यस्य प्रथितं महाकाव्यम् ।। 62 ।।

पुष्पादीक्षितवर्या कवयित्री पाणिनीयज्ञा।
यस्या 'अग्निशिखा' स्ते गीतीनां संग्रहोऽपूर्वः ।। 63 ।।

आचार्यो हरिरामो देवर्षिवरः कलानाथः।
श्रीरामकरणशर्मा वैदर्भीकाव्यरचनपटुः ।। 64 ।।

श्रीहरिदत्तः शर्मा रहसबिहारी द्विवेदश्च।
शिवदत्तचतुर्वेदः 'चर्चा'काव्यस्य कर्ता यः ।। 65 ।।

देवर्षिकलानाथः सुन्दरराजस्तथा सुकविः।
वरदाचार्यः कण्णन् श्रीरामकुमारशर्मा च ।। 66 ।।

पुल्लेलरामचन्द्रो दीपकघोषस्तथा शिवजी।
श्रीहर्षदेवमाधवकेशवचन्द्रौ तथा भट्टिः ।। 67 ।।

ठाकुरराधाकान्तो रामविनयसिंह–युवक–कविः।
हरिनारायणदीक्षित–नामा सुकविस्तथा विद्वान् ।68 ।।

आचार्योऽवस्थी श्रीबच्चूलालः 'प्रतानिनी' कर्ता।
कविसम्मेलन–सञ्चालन–कुशलो भास्कराचार्यः ।। 69 ।।

श्रीकृष्णकान्तशुक्लः मधुरालापी कविर्विद्वान्।
श्रीविष्णुकान्तशुक्लः श्रीमदुमाकान्तशुक्लश्च ।। 70 ।।

सागरविहितनिवासो द्विवेदवंशावतंस आचार्यः।
प्रेमोत्तरनारायणनामा काव्यानुवादपटुः ।। 71 ।।

केचिद्दिवं प्रयाताः यशःशरीरेण जीवन्ति।
केचित्काव्यविरचनेऽद्यापि रता लोकमर्चन्ति ।। 72 ।।

एतेष्वेवान्यतमः श्रीब्रह्मानन्दशुक्लसुतः।
मातुः प्रियंवदायाः स्तन्येनास्ते च यः पुष्टः ।। 73 ।।

यस्य 'भाति मे भारत' मिति रचनास्ते जगत्ख्याता।
सहृदयसंघा यस्याः श्रवणं कांक्षन्ति सम्प्रत्यपि ।। 74 ।।

यश्चैता आर्याः किल प्रणीय लभते मनःसौख्यम्।
वाणीविहारवासी वसिष्ठगोत्रो रमाकान्तः ।। 75 ।।

एतैः सर्वैः साकं समकालीनैः श्रुतैः कविभिः।
भवतापि विशिष्टं स्वं पठितं काव्यं सभासु नैकासु ।। 76 ।।

सागरनगरे भवता संगोष्ठीनां सुयोजनं विहितम्।
यत्राहमपि निमन्त्रित आसं स्नेहातिरेकेण ।। 77 ।।

सागर–संगोष्ठीनां महिमा किल केन वर्ण्येत?
देश–विविधभागेभ्यो विद्वांसो यत्रा सम्प्राप्ताः ।। 78 ।।

यत्र विविधविषयेषु प्रकाशनिक्षेपणे चतुराः।
अनुसन्धातारः स्वं प्रतिभावैभवमदर्शयन् सम्यक् ।। 79 ।।

प्रातःकाले मध्याह्ने सायं भोजनं यथाकालम्।
कृत्वा विज्ञा अभवन् रताः स्वविषयस्य प्रस्तुत्याम् ।। 80 ।।

अपराह्णे कविगोष्ठी समायोज्यत सागरे यस्याम्।
कवयो भवता साकं स्वं स्वं काव्यं पठन्ति स्म ।। 81 ।।

तत्रैव 'देववाणी–परिषद्, दिल्ली'ति संस्थायाः।
अधिवेशनमायोजितमासीदध्यक्षतायां ते ।। 82 ।।

भवदात्मजाकृतेन मंगलविधिनेदमारब्धाम्।
अध्यक्षीयं भाषणमासीद् बहुसूचनादातृ ।। 83 ।।

दिल्लीमागत्य भवान् कुलपतिरूपेण प्रथमसंगोष्ठीम्।
कवेः सपर्या–रूपां योजितवान् स्वीय आध्यक्ष्ये ।। 84 ।।

तत्रा ममैव सपर्या तत्रभवद्भिः समाचरिता।
श्रीद्वारकाधिपतिना यथा सुदाम्नः स्वमित्रस्य ।। 85 ।।

तदनु शास्त्रचूडामणिपण्डितरूपेण संस्थाने।
अस्थापयद् भवान् माम् आदरसहितं त्रिवर्षेभ्यः ।। 86 ।।

अस्मिन्नवधौ मयका संस्कृतसंस्थानपरिसरा दृष्टाः।
गरली–प्रयाग–जयपुर–लखनौ–गुरुवायुपुर–संस्थाः ।। 87 ।।

भोपाल–परिसरे मम भाषणमपि योजितं भवता।
तस्य ध्वन्यंकनमपि भवदनुभावादभूत्तत्र ।। 88 ।।

दृष्टं मणिपुर–राज्यं दृष्टा रम्या गुवाहाटी।
दृष्टं च गंगटोकं संगोष्ठीनां प्रसंगतो मयका ।। 89 ।।

राष्ट्रपतेः सम्मानं 'पद्मश्री' नाम–सम्मानम्।
भवादृशं सत्पुरुषं निकषाहं प्राप्तवानस्मि ।। 90 ।।

पत्र–पत्रिका–सिद्धाः रचनाः सूच्यां निबद्ध्यन्ते।
संस्थानस्य सुयोगात् साहित्यस्योपकारः स्यात् ।। 91 ।।

अभविष्यमहं नो यदि संस्थानेनाद्य सम्बद्धः।
इदमभविष्यदसम्भवमखिलं यत्सूचितं मयका ।। 92 ।।

रा.संस्कृतसंस्थानं स्वर्णयुगं लम्भितं भवता।
विद्या–बुद्धि–बलानां तत्रोत्कर्षो भवति यूनाम् ।। 93 ।।

यूनां महोत्सवाः स्युः शास्त्रीयाः सन्तु वा स्पर्धाः।
नाट्यसमारोहा वा त्वन्नेतृत्वे प्रयान्ति सफलत्वम् ।। 94 ।।

भवदागमनादूर्ध्वं संस्थानस्योन्नतिर्जाता।
'नैकार्पित–मूल्यांकनमास्ते तत्र प्रमाणमतिपुष्टम् ।। 95 ।।

केन्द्रीयविश्वविद्यालयोऽस्तु संस्थानमतिशीघ्रम्।
भवतः सेवाकाले यत्ना एवं विधीयन्ते ।। 96 ।।

ऋजुजीवनमुच्चविचारास्ते नित्यं प्रशस्यन्ते
त्वत्संसर्गप्राप्तैः सामान्यजन्यैस्तथा विज्ञैः ।। 97 ।।

धीरगभीरः सन्नपि यदा कदा सद्विनोदकरः।
त्वं सम्राडसि विदुषां त्वमसि परिव्राड् विगतवाञ्छः ।। 98 ।।

मौनी मितभाषी त्वं स्वाश्रितजनपालनं कुरुषे।
यदा कदा कटुवक्ता सन्नपि नृणां हितं कुरुषे ।। 99 ।।

नारिकेलसदृशं ते व्यक्तित्वं राजते लोके।
आपाततः कठोरं सरसं सरलं तथा चित्ते ।। 100 ।।

शृणुषे लोकविचारान् यद्यनुमनुषे क्रियान्वितान् कुरुषे।
बालान् युवकान् प्रौढान् सर्वान् कार्येषु योजयसि ।। 101 ।।

वाणीलब्धवरस्त्वं निरहंकृतिरस्ति ते ह्यलंकारः।
उपरि परुष इव दृश्यः चित्ते करुणाप्रपूरितो भासि ।। 102 ।।

प्रदर्शनात्त्वं दूरे तिष्ठसि नित्यं परिश्रमानन्दः।
त्वत्संसर्गस्पृष्टो यः कोऽपि परिश्रमी भवति ।। 103 ।।

धृत्वा स्कन्धो स्यूतं साधारणजन इवाभासि।
किन्तु यदा त्वं ब्रूषे साक्षाद्वाणी प्रतीयसे विज्ञैः ।। 104 ।।

अध्यक्षासनमथवा मुख्यातिथिपदमलंकुर्वन्।
शास्त्रचिन्तने लीनस्तिष्ठसि गम्भीरवदनस्त्वम् ।। 105 ।।

नेत्रे निमील्य तिष्ठसि यदा सभायां विचारमग्नस्त्वम्।
करतलकपोलधरी छविकाराणां तदा प्रतीक्ष्योऽसि ।। 106 ।।

अत्यन्तविनम्रमुखो यदा सभाध्यक्षतां कुरुषे।
उन्नमितमुखं द्रष्टुं छविकारास्त्वां प्रतीक्षन्ते ।। 107 ।।

संस्कृत–प्राकृत–हिन्दी–प्रभृतीनां नैकभाषाणाम्।
प्रोन्नायकोऽसि महितः सततमतन्द्रितकुलपतिस्त्वम् ।। 108 ।।

अत्यन्तसरलहृदयो वक्ता स्पष्टस्य सत्यस्य।
अभिमानिनां सुशिक्षक आसे त्वं लौहपुरुषः सन् ।। 109 ।।

अविकत्थनः क्षमावानतिगंभीरो महासत्त्वः।
स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतस्त्वमसि ।। 110 ।।

गतवर्षे नवदिल्ल्यां विश्रुतविज्ञानभवने त्वम्।
वैश्वं संस्कृतमेलनमायोजितवान् ससाफल्यम् ।। 111 ।।

सुप्रथितं सम्मेलनमास्ते यत्प्राच्यविद्यायाः।
भवतोऽनुपस्थितावपि तेन भवान् स्वीकृतोऽध्यक्षः ।। 112 ।।

त्वं पितृभक्तिसमेतो नरसिंहगढे स्मृतौ स्वपितुः।
प्रत्यब्दं व्याख्यानं विदुषः कस्यापि योजयसि ।। 113 ।।

जन्माद्य सरस्वत्या मान्यं लोके वसन्तपञ्चम्याम्।
भवतोऽपि जन्मदिवसं सम्मान्य जनाः प्रसीदन्ति ।। 114 ।।

जन्मदिवसमुपलक्ष्य प्रस्तूयन्ते शुभाशंसाः।
अस्मादृशैरनेकैः त्वन्मित्रैस्त्वद्गुणैर्विजितैः ।। 115 ।।

चतुष्षष्टिसंख्याकं जन्मदिनं ते ह्यनुष्ठातुम्।
चतुष्षष्टिसंख्याकाः कलाः प्रसीदन्तु लोकेऽस्मिन् ।। 116 ।।

श्रूयन्तां ते कविताः पठ्यन्तां ते नृभिः समे ग्रन्थाः।
मोदन्तां ते स्वजनाः आस्तां विश्वं कुटुम्बं ते ।। 117 ।।

वक्तुं बहुतरमास्ते शब्दा अल्पा गुणाः प्रभूतास्ते।
चुलुके कथमिव करवै तुङ्गतरङ्गं महाम्भोधिम् ।। 118 ।।

जीव विपश्चिदपश्चिम शतं समानां लसन् स्वस्थः।
सारस्वतयात्रा ते भवतादग्रेसरा नित्यम् ।। 119 ।।

ज्येष्ठो वयसा यद्यपि तथापि मन्ये भवन्तमहम्।
वाग्देवतावतारं प्रणम्यमभिनन्द्यमथ वन्द्यम् ।। 120 ।।

राधावल्लभ विद्वन्! कवे! समीक्षक! सुसम्पादक!
आचार्य! कुलपते! ते नमांसि भूयांसि मे सन्तु ।। 121 ।।

श्रीमन् राधावल्लभ! विद्वन् दोषज्ञ गुणगणज्ञ तथा।
शोधक! लेखक! शासक! विद्यासाधक! शतं जीव ।। 122 ।।

हे कुलपते! कुलं ते वृद्धिं यातु प्रसन्नं सत्।
संस्कृत–विद्या–सेवक! दिग्दिग्व्याप्यस्तु ते सुयशः ।। 123 ।।

एतेषामार्याणाम् उपायनं स्वीकरोतु भवान्।
जन्मदिनं शुभमास्तां राधावल्लभकवीन्द्रस्य ।। 124 ।।

देहल्यां प्रारब्धा सम्पूर्णोदयपुरे जाता।
'राधावल्लभ–लहरी' हरतु मनः शृण्वतां पठताम् ।। 125 ।।

अहमहमिकयायाताः स्नातुं शब्दा लहर्यां ये।
पूताः सन्तु समे ते वाग्देवी–भूषणीभूय ।। 126 ।।

नालंकृतिरन्वेष्या चमत्कृतिश्चापि विद्वद्भिः।
इह खलु दृश्या केवलमृजुभावानामभिव्यक्तिः ।। 127 ।।

(2069) नन्ददर्शनखात्मांके माघे मासि सिते दले।
पञ्चम्यां च तिथौ पूर्णा रचनेयं राजतां भुवि ।। 128 ।।

अनुकवनविधाता मेघदूतस्य धीमान्
भरतमुनिकृत–श्रीनाट्यशास्त्रस्य विद्वान्।
कवि–सहृदय–वाग्मी ग्रन्थसम्पादकोऽसौ
जयति जयति राधावल्लभः सूरिवर्यः ।। 129 ।।

उदयपुरगतश्रीविश्वविद्यालये यः
प्रथमममरवाण्याध्यापकोऽभून्मनस्वी।
तदनु च रमणीये सागरे वाणिगेहेऽ
भवदनुपमविद्यादायकाचार्यवर्यः ।। 130 ।।

अथ कुलपतिरास्ते भारतस्य प्रसिद्धे
बहुपरिसरयुक्ते देहलीस्थेऽद्वितीये।
अमरवरसुभाषा–स्थानके राष्ट्रियेऽसौ
जयतु जयतु राधावल्लभो विद्वदग्र्यः ।। 131 ।।

रचना तिथि : 15/02/2013

उदयपुरविश्वविद्यालये 15/02/2013 तमे दिनांके
समायोजितायां संस्कृतकविगोष्ठ्याम्
आचार्यश्रीराधावल्लभत्रिपाठिनं
सम्बोध्य पठितेयं रचना।

राधावल्लभवैभवपञ्चाशिका

डॉ. राजकुमारमिश्रः

देशे भारतनामकेऽतिमहिते मध्यप्रदेशेऽमले
ख्याते राजगढाभिधे जनपदे सन्मण्डिते मण्डले ।
जातः कोऽपि महाकविर्मतिमतां मान्ये वदान्ये कुले
कृत्यैः यः कुलदीपकः समभवत् लोकादरैकालयः ।।1।।
ख्रिष्टाब्दे निधिवेदशेवधिसुराख्ये सन्मुहूर्त्ते (1949) तथा
रम्ये पञ्चदशे सिताम्बरयुते ताराग्रहेभ्यः शुभे ।
उत्पन्नः कविपुङ्गवो मतिमतां श्रेष्ठोऽथ वन्द्यश्च यो
राधावल्लभसंज्ञयेति स भुवि ख्यातिं प्रपेदे ध्रुवाम् ।।2।।
धन्यावस्य च कालजातविदुषः स्तो धर्मनिष्ठौ च यौ
तातो गोकुलनाथकोऽतिकरुणा माताऽपि तुल्याभिधा1 ।
धर्मे तत्परतां स्वभावसरलौ यौ धारयन्तौ क्षितौ
मन्येऽद्य स्वसुतस्य तौ च पितरौ कीर्त्या गतौ गौरवम् ।।3।।
बाल्ये मातृसुखाच्छठेन विधिना यो वञ्चितो वल्लभो
वात्सल्याऽमृततुल्यरागरहितोऽकाण्डे विपन्नोऽभवत् ।
हा हा कुत्र गता विहाय तनयं जन्मप्रदे ! त्वं निज –
मेवं मातृवियोगशल्यविपदा तारेण डिम्भोऽरुदत् ।।4।।
सद्विद्याध्ययने समुत्सुकमना विद्यालये पुस्तका.
गारे योऽक्षपयत् स्वरिक्तसमयं खेलां च मेलां विना ।
नासीत् कोऽपि तथा यथाऽयमभवत् छात्रेष्वनेकेष्वपि

ग्रन्थाध्यक्षवरः सभाजनमतिर्दृष्ट्वाऽभवत् तच्छ्रमम् ।।5।।
सङ्कल्पोन्नयनाय पत्रमचिरं सोऽध्यक्षवर्यो दृढो
ग्रन्थागारकृतोपयोगपरकं द्राक् शासनायार्पयत्।
सद्योऽयं तु पुरस्कृतोऽपि विदुषां मध्येऽभवत् स्नेहभा –
गेतस्माद् विरतिं न जातु पठनाल्लेभे परं वल्लभः2।।6।।
को ग्रन्थः कुत आगतश्च लिखितः केनाऽथ सम्पादितः
शास्त्रस्येह भवेद् निजस्य भवताच्छास्त्रान्तरस्यापि वा ।
सर्वोद्घाटनतत्परोऽयमभवद् बाल्ये विदां वृद्धवत्
राधावल्लभनामकः स जयताद् धन्यः सुधीः सत्यवाक् ।।7।।
आचार्यं कृतवांस्तथैव कृतवानाङ्ग्ले परास्नातकं
ज्ञानोत्सारक – 'सागरा 'दतिशयात् 'सद्विश्वविद्यालयात्'।
हिन्द्यां ज्ञानमवाप्य भूरितपसा यूरोपभाषामपि
ज्ञात्वाऽभूत् प्रथितः स्वदेशवलये देशान्तरेष्वप्ययम् ।।8।।
नानाशास्त्रविशारदाद् दृढतया यो रामजी–सद्गुरो–
श्चोपाध्यायमहामतेरधिजगे सन्ताप्य देहं निजम् ।
श्रद्धाभावपुरःसरं हितपरान् शास्त्रोपदेशान् गुणान्
स्वात्मीकृत्य विराजते स इव भा–धन्यः स्वयं वल्लभः।।9।।
साहित्यं रसपेशलं सुखमयं तत्काव्यशास्त्रं तथा
वेदान् तत्त्वभरांश्च दर्शनपरान् ग्रन्थांश्च शास्त्राणि षट् ।
सोत्साहेन परिश्रमेण महता पाश्चात्यविद्यामपि
प्रीत्या योऽधिजगाम साधु स बभौ ज्ञानार्णवो वल्लभः।।10।।
राजस्थानमनोरमोदयपुरे सौधेन सम्पूरिते
व्याप्ते रम्यजलाशयेन नयनानन्दाभिरामे तथा ।
सद्विद्याऽध्ययनं विधाय विबुधोऽयं विश्वविद्यालये
शून्यद्वीपयुतग्रहात्मसहिते (1970)प्राध्यापकोऽब्देऽभवत् ।।11।।
सौभाग्याद् गुणभूमिशेवधिसुरखिष्टाब्दकाले (1973) पुनः
वर्षाणां त्रितयेन भूमिवलये मध्यप्रदेशे निजे ।

ख्याते सागरनामके स्वरुचिरे सद्विश्वविद्यालये
वाग्देवीचरणार्पितात्महृदयोऽयं द्राङ् नियुक्तोऽभवत् ।।12।।
सौजन्यं जनयन् स्वशिष्यनिचये चात्माभिमानं तथा
सद्व्यवहारपुरःसरं प्रतिपलं प्रोत्साहयन् प्रातिभम् ।
गोष्ठीनां विदुषां सदा कविजुषामायोजनैः सङ्गमै –
श्छात्रप्रेरणदायकोऽयमभवत् तद्विश्वविद्यालये ।।13।।
तत्रासौ कविपुङ्गवो बुधवरो वाणीं समाराधयन
ध्वान्तं शिष्यगतं हरंश्च रचयन् ग्रन्थान् सुरत्नोपमान् ।
धर्माधर्मविवेकदीपकमहो सञ्ज्वालयन् वल्लभः
स्वीयेऽध्यक्षपदारूढः समभवद् वाचो विभागे मुदा ।।14।।
सम्पूर्णे प्रतिभावशात् श्रमवशात् सद्विश्वविद्यालये
जातः संस्कृतसेवनेन बहुधा सद्योऽथ लोकम्पृणः ।
शिष्यान् स्नेहपुरःसरं प्रतिदिनं योऽध्यापयामास च
ज्ञानाऽदीनगुणोच्चयः स जयताच्छ्रीराधिकावल्लभः ।।15।।
विश्वेऽस्मिन् प्रवहेद्धि संस्कृतमहाधारेति दृष्ट्वा पुनः
खिष्टाब्दे गुणपुष्कराम्बरकृगाख्ये (2003)सन्मुहूर्ताङ्किते ।
थाईलैण्डगतेऽथ संस्कृतकृते बैंकाकशिक्षालये
राधावल्लभसत्कविं नियुयुजे तं शासनं दैशिकम् ।।16।।
सत्काराय नमन्ति यत्र सुजना उद्यम्य हस्ताञ्जलिं
हिन्दूधर्मविभाविता बहुतरा ग्रन्थाश्च रत्नोपमाः ।
बौद्धा यत्र वसन्ति हर्षभरिताः श्यामाख्यदेशे मुदा
तत्रोवास नियुक्तवल्लभकविर्वर्षद्वयं सेवितुम् ।।17।।
वाग्देव्याः च समर्चनां कृढतरं संस्थाप्य धर्मध्वजं
तत्रस्थेषु जनेषु दर्शनपरं सम्बोध्य गूढाशयम् ।
मर्यादां प्रतिबोध्य सर्वजनतां तां भारतीयां पुन –
र्हृष्टोऽयं च विवेश भारतधरां वर्षद्वयानन्तरम् ।।18।।

सेवाभिः च समर्चनेन बहुधा श्रीशारदायाः सुखं
पादाम्भोरुहसेवनेन सकलाभिः सत्क्रियाभिर्युतः।
यातः ख्यातिपथं द्रुतं प्रतिभया राष्ट्रे समस्तेऽधुना
मन्ये लङ्घयतेऽपरो हि भगवान् यो वामनीभूय च ।।19।।

राधावल्लभसंज्ञकस्य सुकवेः शिष्या गभीराशयान्
स्वान्तःकृत्य गताः प्रसिद्धिपदवीं ते साम्प्रतं भूतले ।
सत्कार्यैरधुना गुरोर्द्विगुणितं मन्ये यशः तस्य च
शिष्याणां च निजस्य भूरितपसा बाभासते वल्लभः ।।20।।

शिष्याः संस्कृतसेविनः प्रणयिनः सत्कर्मनिष्ठापरा
राजन्ते विविधैर्हि तस्य सुकवेः सारस्वतोपक्रमैः।
मन्ये तेष्वपि विश्रुतावभवतां यौ स्फीतरत्नोपमौ
श्रीभागीरथिनन्दकोऽथ विदुषां मान्यो रमाकान्तकः ।।21।।

नानाशिष्यगणेन यो वलयितः संसेवितोऽनारतं
शिष्याणां .तिभिः प्रसन्नवदनो जातो हि यः सर्वदा ।
नित्योत्साहविवर्धको मतिमतां श्रेष्ठोऽद्वितीयश्च यो
राधावल्लभसत्कविः स जयतात् कीर्त्या चिरं भूतले ।।22।।

सद्विद्याऽऽकलनं विधाय विदुषः तस्याऽद्वितीयस्य च
सामर्थ्यं च परिश्रमं निपुणतां कार्यत्वरात्वं तथा ।
भारप्रोद्वहनाय तत्कुलपतेः रिक्ते पदे राष्ट्रिय –
संस्थानस्य च संस्कृतस्य कृतवान् मन्त्रालयो निश्चयम् ।।23।।

ख्रिष्टाब्दे वसुशून्यशून्यनयने(2008) वेदेन्द्वगस्ते(14) गुरौ
नक्षत्राद्यनुकूलतामुपगते संस्थानमुख्यालये ।
कर्तव्यं कविवल्लभो मृदुकलो मन्त्रालयेनार्पितं
सद्यः प्राप्तपदः स हृष्टमनसा जग्राह मानम्भरः ।।24।।

शर्मण्ये3 निमिपाल4 नामरुचिरे देशेऽम्बरीषे5 तथा
श्यामे6 वा जयपाणि7 नामसफले देशान्तरे वा पुनः ।

तत्रोवास चिरं तथापि सुकविः कामं तथा नाभव –
दत्रागत्य यथा स्ववासविषये चिन्ताब्धिमग्नोऽभवत् ।।25।।
या सर्वान् प्रथमागमेन युवकान् वृद्धान् विहारोद्यतान
नित्यं मोहयतीव विभ्रमबलैः स्वै राजधानी यदि ।
वासो मे भवताच्च केन विधिनाऽस्यां दीर्घकालात्मकः
चिन्तासागरगह्वरेऽथ विबुधोऽयं हा विलिल्ये चिरम् ।।26।।
यत्पाशे कृढबन्धनेन छलितो गाढेन शुक्लो रमा–
कान्तः कोऽपि कविः च यो व्यरचयत् तद् "भाति मे भारतम्" ।
किं वाऽसौ वसतिं निजां न कुरुतेऽस्यां राजधान्यामतो
वासायेह कृढीभवन् कविवरोऽयं निश्चिकाय स्वयम् ।।27।।
कालेनाल्पतरेण यः प्रतिभया सच्छासनेनोद्भटः
सामञ्जस्य बलेन यो मधुगिरा न्याय्येन मार्गेण च ।
उत्पन्ने विषमेऽपि योऽविचलितोऽहार्योपमोऽकम्पितः
स द्राक् कर्मकरैर्निजैः कुलपतिः सम्पूजितो वल्लभः।।28।।
सौजन्यं जनयन् मिथो बुधवरो यः कर्मचारिषु च
प्रीत्योत्साहबलेन यः प्रतिपलं ध्यानं विकासे ददौ ।
वाग्देव्याः च सुरक्षणाय विविधां यो योजनामानयद्
राधावल्लभकः स यो ह्यगमयत् संस्थानमुच्चं पदम्।।29।।
पक्षात्माम्बरलोचनाख्यशरदि (2012)क्रिस्ते शुभे वासरे
विज्ञाने भवनाङ्गणे जनवरौ तद्राजधान्यां तथा ।
देशे पञ्चदशं हि संस्कृतपरं विश्वस्य सम्मेलन–
मायोज्यायमभूद् बुधोऽधिवसुधं श्रीवल्लभो मानभूः ।।30 ।।
सम्प्राप्तौ मनमोहनश्च8 कपिलः9 प्रोद्धाटने मन्त्रिणौ
दृष्ट्वा संस्कृतगौरवं मुमुहतुः यद्वल्लभोत्थापितम्।
राष्ट्रे नृत्यति संस्कृतं कथयितुं यौ नो मनाक् शङ्किता–
वान्ते यं च ननन्दतुः स जयताच्छ्रीराधिकावल्लभः।।31।।

कार्ये दत्तमतिः निरालसपरः स्फारेऽथवा क्षुल्लके
सर्वत्रैव समानतां बहुमतां योऽदर्शयत् सर्वदा ।
कर्तव्याद् न वरं परं किमपि यो मेने सदा जीवने
राधावल्लभसत्कविः कुलपतिः जीयात्स सौख्यास्पदम् ।।32।।
दण्डचे दण्डविधानतां प्रतिपलं सम्पालयन् सत्वरं
मित्रेऽपीह विनैव भेदकरणाद् योऽयं तटस्थीभवन् ।
कार्यात् त्यक्तमतेः शठस्य विदुषः वामाचरेण स्वयम्
यो नो तत्र विलम्बते क्षणमपि स्थानान्तरे प्रेषणे ।।33।।
ज्ञात्वा भारनिभालनस्य विभुतां मन्त्रालयेनार्पितं
कार्यं निर्वहतेऽधुना बुधमणिः तत्कौलपत्यं महत् ।
संस्थानस्य च 'ला. ब. शास्त्रि'–सदसः शिक्षालयस्यापि यः
सामर्थ्येन सुपूरितो स जयताच्छ्रीराधिकावल्लभः ।।34।।
सौगन्ध्यस्य कृते समापतति यो भृङ्गीभवन् श्रद्धया
ख्यातोऽयं कविराड् विमोहितमना यस्याभिराजः स्वयम् ।
अन्येऽपीह तथोत्पतन्ति 'मधुपा'10 'मिश्रो' 'रमाकान्तकौ'
कं नो काव्यरसैरलं छलयतेऽसौ राधिकावल्लभः ।।35।।
नानालब्धपुरस्कृतिः प्रतिभया सङ्कल्पनाभूरभूद्
यो विद्वत्सम्मानितोऽस्ति कतिधा विद्याबलाद् मानभूः ।
यो नित्यं गुणवर्धकोऽतिकरुणो निस्तानवो मानवो
वन्दे तं कविपुङ्गवं धुरवहं श्रीराधिकावल्लभम् ।।36।।
कार्याभावमिषद् विभाव्य सहसा संस्थानमुख्यालये
काव्यस्योन्नयने निमज्जति सुखं व्यस्ते क्षणे स्वेऽपि यः ।
सद्गोष्ठ्यामपि यो विरच्य कवितां सद्यः कवीनां पुरः
सम्प्रस्तौति नवां नवां स जयताच्छ्रीराधिकावल्लभः।।37।।
प्राच्याप्राच्यसदाशयं हि बहुधा निर्मथ्य रत्नाकरं
साहित्यस्य परम्परां पुनरपि प्रास्थापयद् नूतनाम् ।

आदायेह मणीनिवोम्भितनवप्रस्थानराशीन् निजान
काव्यालङ्करणस्य सूत्रपरकं शास्त्रोन्नयं11 सोऽकरोत।। 38।।
प्राच्याप्राच्यविचारसङ्गमभरे यः काव्यशास्त्रे निजे
हेतुर्जागरिता मतिः कथयते शक्तिः तथैकाभिधा ।
चातुर्विध्यमिदं प्रपञ्चयति यः काव्यस्य तर्केण च
मुक्तिस्तत्र फलं हि तत्र मनुतेऽसौ राधिकावल्लभः ।।39।।
आचार्यो भरतस्य योऽतिविपुलं नाट्यस्य शास्त्रं मुनेः
षट् त्रिंशद्ग्रथितं कलेवरमहत् संभाव्य संक्षिप्य च ।
सद्बोधाय समर्पयद् बुधवरः शोधाय लोकाय च
छात्राणां नवरत्नवैभवजुषां संक्षिप्तनाट्याभिधम् ।।40।।
श्लोकैः तत्र मनोरमैः सुसरलैः संक्षिप्तनाट्याभिधं
यः शास्त्राशुगवचन्द्रदेवसहितैः(1156) शास्त्रं प्रणिन्ये मुदा ।
छात्राः सन्तु विशारदा इति धिया हिन्द्यामनूद्य स्वयं
यो लोकाय ददौ चिरं स जयताच्छ्रीराधिकावल्लभः।।41।।
काव्यं यस्य च गीतधीवरपरं चान्यत् सुशीलाभिधं
चोपाख्यानकमालिकाऽथ12 लहरीणां तत् दशं13 मञ्जुलम् ।
ख्यातं यत् खलु विक्रमस्य चरितं चित्ताम्बुजाह्लाददं
रम्यं प्रेक्षणसप्तकं नवशुकाख्या सारिका14 सम्प्लवः ।।42।।
सन्त्यन्यानि बहूनि यस्य सुकवेः काव्यानि हृद्हारिणि
संख्यायां च शताधिकानि च शतप्रायाश्च लेखास्तथा ।
सद्गोष्ठीसहभागिता शतमिता प्रायेण यस्य स्थिरं
जीयात् सोऽत्र कवींद्रकोऽधिभुवनं श्रीराधिकावल्लभः।।43।।
राष्ट्रे संस्कृतगौरवोन्नतिकृते सम्मेलनानां शतं
यः प्रायोजितवाञ्श्रमेण महता धन्ये निजे जीवने ।
यो विंशत्यधिकप्रतिष्ठितपुरस्कारांस्तथा प्राप च
सोऽयं पाण्डुलिपिप्रकाशनपरो राराज्यतां वल्लभः।।44

यो गौरद्युतिदीव्यदाकृतिधनः सौजन्यमूर्तिर्महान्
सद्वाग्दानविताननोद्यतमना गुम्फो गुणानां गुणी।
सद्वेषः तनुभाषकोऽतिचटुलः श्रीशारदेयश्च यः
साहित्ये गगनेऽधुना ह्युदयते सोऽयं सुधांशुः परः।।45।।
रिङ्गत्संस्कृतवाङ्मयार्णवमहाधाराऽन्तरालात् सुखं
तीर्त्वा यः पुनरागतो नवनवै रत्नैः समं प्रोज्ज्वलैः ।
देशे सद्यशसा निजेन वचसा ज्ञानेन यो भूयसा
छात्राणामुपकारतां निरवहत् सोऽयं बुधो वल्लभः ।।46।।
यो वेदाम्बरवत्सरान् भगवतीं प्रायेण सेवे निजे
तीग्माध्यापनकर्मणा सुकविताग्रुच्छार्पणैर्जीवने ।
तस्माद् यो वहते वरिष्ठपदवीं राष्ट्रे समग्रेऽधुना
राधावल्लभवागुपासकसुधीः सोऽयं सदोद्योतताम् ।।47।।
विद्योद्भासितगौरवं कुलमणिं ज्ञानार्णवं सत्कविं
सौशील्यप्रतनोन्मुखं सहृदयं स्मेराननं धार्मिकम् ।
राधावल्लभसंज्ञकं द्विजवरं बद्धादरं वन्दितं
के वा सम्प्रति संस्कृतप्रणयिनो ये वाऽभिनन्दन्ति नो ।।48।।
यद्गुम्फे रसमाधुरी प्रतिपदं निष्कण्टकं श्च्योतति
रम्या कापि पदावली सुमनसामावर्जयन्ती मनः ।
कान्तावत् कमनीयता सुतिलका यत्काव्यबन्धे स्थिता
जीयात् कोऽपि महाकविर्बुधकुले श्रीराधिकावल्लभः ।।49।।
सौम्यो ज्ञानधुरन्धरो गुणचयो यस्सद्विचारोच्चयी
साहित्याय समर्पितोऽतिमधुरः कल्पद्रुमः स्फीतवाक् ।
नानाकाव्यकरः प्रसन्नवदनः सम्मानमानोन्नतो
राधावल्लभसत्कवित्वसदनं वन्देऽनघं तं बुधम् ।।50।।
धैर्ये यश्च हिमालयो बुधवरो ज्ञाने च वाचस्पतिः
काव्ये श्रीकविकालिदाससदृशोत्साहप्रदानोत्सुकः।

विद्वत्पक्षधरो नितान्तसरलो दीनेऽनुकम्पापरो
राधावल्लभनिष्कलङ्कहृदयं रत्नोपमं नौमि तम् ।।51।।

दुःखं हासकलस्य सिद्धविदुषो हान्तर्दधानस्य तद्
वेत्तुं धैर्यबलेन यस्य सहगा मित्राण्यपि न क्षमाः।
यस्याऽऽशालतिका सदैव सजलोत्फुल्ला फलैः पूरिता
राधावल्लभसत्कविः स जयतात् संवत्सराणां शतम् ।।52।।

लक्ष्यं येन परिश्रमेण सखरेणासादितं भूयसो –
त्पन्ने क्लेशचयेऽपि येन विरतिः मध्येपथं नाश्रिता ।
चिन्तासागरवस्थितेन15 कतिधा सम्भावनोद्भाविता
राधावल्लभसंज्ञकं कविवरं विद्वत्प्रियं तं भजे।।53।।

काव्यैर्दीर्घतरैर्निकामरसलैर्यो रञ्जयन् रङ्गगान्
श्रान्तान् सभ्यजनांस्तथा कलुषितान् लोकेऽधुना राजते ।
पाण्डित्येन सभां बहुज्ञबहुलां यस्तोषयन् भूषयन्
वन्दे ज्ञानधनं विशालहृदयं तं राधिकावल्लभम् ।।54।।

यो कथ्ये न च विश्वसिति करणे दत्तावधानः सदा
खेदं वेत्ति न जीवनेऽल्पमपि यो भीष्मस्थितावप्यहो ।
साहित्यस्य रसं निपीय मधुरं भेजेऽमरत्वं च यः
सोऽयं वल्लभसंज्ञकोऽधिभुवनं विद्वन्मणी राजताम् ।।55।।

काव्यस्यास्य समापनस्य समये शर्मण्यदेशेऽधुना
गोष्ठ्यां लाइपजिंगनामनगरे राजेन्द्रमिश्रैः समम् ।
योऽभिव्यानगलं महत्त्वमवदान् पञ्चतन्त्रस्थितं
राधावल्लभसत्कविः स जयतादाचार्यरत्नोपमः ।।56।।

नानाकाव्यपटीयसे सुवपुषे विद्यादयासिन्धवे
देव्याः पादरजोऽभिलेपनलसद्भालाय भव्यात्मने ।
ग्रन्थग्रन्थिनिवारणोदितहृदे सन्मार्गसम्बोधिने
राधावल्लभसंज्ञकाय कवये पञ्चाशिका ह्यर्प्यते।।57।।

नाहं कोऽपि तथाविधोऽङ्कनपटुर्येनोल्लसेच्चारुता
भावानामिह वर्णनं कतिपयैः पद्यैरकुर्वं श्रमात् ।
तत्त्वं माऽत्र गवेषयन्तु सुधियोऽलङ्कारगुम्फोत्थितं
सद्भावेन विभावयन्तु न मनाक् कुर्वन्तु दोषाग्रहम् ।।58।।
लोके राजकुमारमिश्रसुधियः पञ्चाशिकानामतः
काष्ठां मे लभतां परां कृतिरियं विद्वद्गणे मञ्जुला ।
पद्याधिक्यमभूद् यदत्र रचने तस्मान्न हानिः क्वचिद्
यज्ञे किं स्मरणे प्रभोः समधिके मन्येत दोषावहम् ? ।।59।।
दृग्देवाम्बरलोचनाङ्कितशुभे (2012) क्रिस्तेऽथ शुक्रे दिने
याऽऽरब्धा ननु वेदलोचनतिथौ (24) मासे ह्यगस्ते निशि ।
वाग्देव्याश्च कृपालवेन मयका मासेऽथ सैताम्बरे
सेयं पूर्तिपथं प्रयाति रचना पञ्चाशिका मञ्जुला ।।60।

टिप्पण्यः –

1) एतस्य राधावल्लभस्य मातुर्नाम गोकुलबाई इति

2) राजधान्यां हरिनगरे मुक्तस्वाध्यायपीठपक्षतो मई मासि 2012 क्रिस्ताब्दे प्रायोजितायां दशदिवसीयकार्यशालायां समागतः प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहोदयः स्ववक्तव्ये प्रसङ्गममुं स्वयमेव व्याहार्षीत्, तत्राऽहं स्वोपस्थितिप्रामाण्येन एतद् अवर्णयं न च आधारान्तरेण । 3) जर्मनीदेशः । 4) नेपालदेशः । 5) अमेरिकादेशः । 6) थाईलैण्डदेशः, श्याम इति थाईलैण्डदेशस्य प्राचीनं नाम, अयं च देशः थाई इति नाम्नाऽपि प्रसिद्धः ।

7) जापानदेशः । (प्रस्तुतपञ्चाशिकायां निमिपाल . अम्बरीष – जयपाणि इति देशवाचकपदानां प्रयोगाधारः अभिराजस्य केचन ग्रन्थाः, तदीयव्याख्यानश्रवणं च वर्तते)

8) भारतदेशस्य प्रधानमन्त्री 'मनमोहनसिंहः' ।

9) मानवसंसाधनमन्त्रालयस्य मन्त्री राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य च कुलाधिपतिः 'कपिलसिब्बलः' ।

10) 'मधुपा' इति पदेन अनुप्रासकविः, आवन्तिककाव्यप्रणेता, मधुपोपाह्वः प्रो. रमाशङ्करमिश्रः स्मर्यते ।

11) उपाख्यानमालिका । 13) लहरीदशकम् । 14) अभिनवशुकसारिका।

15) वस्थित = अवस्थित इत्यर्थः "वष्टिभागुरिरल्लोपमवायोरुपसर्गयोः। इत्यादिभागुरिमतरीत्या अवोपसर्गस्य अकारस्य लोपः" वगाहवत्)

सहायकाचार्यः साहित्यविभागे
हरियाणा संस्कृत विद्यापीठम्
बघौला, पलवलं (हरियाणा) 121102

कल्पक गतिशील व्यक्तित्वः डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

आचार्य कृष्णकान्त चतुर्वेदी

भारतीय साहित्य, कला और विद्या की सार्वकालिकता यद्यपि स्वतः सिद्ध है तो भी भिन्न–भिन्न काल खंडों में उसके अवदान तत्कालीन समर्थ प्रतिमाओं ने तत्कालीन परिवेश में निरन्तर मूल्यांकन किया है। न केवल शास्त्र की दृष्टि से साहित्य, दर्शन शास्त्रों की मूल परम्परा में साहित्य लेखन में अर्पित स्वतंत्र रूप से लोक–श्रुति रूप पद्य बिखरे पड़े है जिनमें प्रामाणिक समीक्षा उपलब्ध होती है। वर्तमान संदर्भ में यह अधिक सक्रिय सार्थक एवं विविध रूपों में रूपायित होकर सामने आई है। संस्कृत तथा प्राच्य–विद्या के विभिन्न सेजों में गतिशील सक्रिय प्रतिभाओं पर लेख और ग्रन्थ भी सुलभ है। न केवल उनका मूल्यांकन अपितु मूल्याङ्कन की निकष–पद्धति और प्रयोग भी विकसित हुये। परिणामतः वर्तमान प्रतिभाओं के समुचित मूल्यांकन का अवसर उपलब्ध हो रहा है। जीवन की यात्रा से जुड़े विभिन्न पादक्षेपों को भी निमित्त बना कर यह कार्य हुआ है। उसी सन्दर्भ और क्रम में यह अभिव्यक्ति प्रस्तुत है

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी संस्कृत के वर्तमान परिदृश्य में एक अविस्मरणीय रूप से समर्थ हस्ताक्षर है। उन्होंने अपनी प्रतिभा क्षमता, एवं सक्रियता से एक ऐसा वितान निर्मित किया है कि देश के कुछ लोग ही उनके समकक्ष विद्वान माने जा सकते हैं। डॉ. त्रिपाठी के संपूर्ण लेखन और कर्मठता को कई विभाजक क्षेत्रों के संदर्भ में समझा जा सकता है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है 1971 में लगभग 40 वर्ष पूर्व स्व. डॉ. रामचंद द्विवेदी ने अखिल भारतीय शेखर समारोह में मुझे उनका परिचय देकर आमन्त्रित करने हेतु प्रेरित किया। वे उनके ही साथ आये और एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न तरुण के रूप में प्रशंसित हुये। उसके बाद तो इतने स्थानों में संगोष्ठियाँ, बैठकों, सम्मेलनों, वैयक्तिक आयोजनो में उनसे भेंट होती रही है। वे जबलपुर अनेक बार आये

हैं में भी उनके आकर्षण के कारण बहुत बार सागर गया हूँ। अब तो सम्बन्ध ों की घनिष्ठता के कारण ऐसा लगता ही नहीं कि वे कही दूर रहते है। श्रीमती त्रिपाठी और उनकी पुत्रियाँ, जो संस्कार शील और शिक्षा की निदर्शन हैं, भी हमारे पूरे परिवार से जुड़े हुये हैं। व्यवहार के इस धरातल पर भी वे निरन्तर स्मृति में जाग्रत रहते हैं।

सर्वांग रूप से उन्हें देखपाना उनका आकलन करना, उनके उक्त संदर्भों की विविधता तथा बहुलता के कारण कठिन है तो भी उन्हें वर्तमान पीढी के मानक के रूप में देखा जा सकता है। प्रारम्भ से ही षोधकर्ता के रूप में संस्कृत जगत ने उनको जाना और उन्होंने ने भी अनेक शोध–निबन्ध, पीएच. डी, एवं डी.लिट के लिये लिखे गये शोध–प्रबंध प्रमाण हैं। अनेक ग्रन्थों का विशेष रूप से सहित्य एवं नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों का विशेष रूप से साहित्य एवं नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों का सम्पादन इसका प्रमाण है। कालिदास, भवभूति की समीक्षा, सहित्य–शास्त्र और नाट्य–शास्त्र के अब तक लगभग अपरिचित एवं अप्रकाशित सामग्री को सामने लाने का उनका प्रयास सर्वत्र सराहा गया है। उनमें उनके स्थिर–सजग और विश्लेषक दो रूप प्रकट होते हैं। राजशेखर और विशेषतः कुंतक जैसे समीक्षक और महिमभट्ट तथा अभिनवगुप्त जैसे षास्त्र तत्त्व प्रदर्शकों की वृत्तियाँ दृष्टि गोचर होती हैं। यह सच है कि उक्त दोनों और अन्य आचार्यों का अवदान असाधारण एवं अद्भुत रूप से विलक्षण है परन्तु उनकी दृष्टि को विनियोग आज करना सहज नहीं है। वर्तमान समय के श्रेष्ठतम विद्वानों में डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी और डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने जिस पारम्परिक सामर्थ्य के साथ शास्त्रों का आधुनिक विनियोग भी किया है।राधावल्लभ त्रिपाठी वैश्विक वर्तमान बौद्धिक परिवेश एवं निकष को भी सामने रख कर प्राचीन समीक्षा सिद्धान्तों और कवियों को समझने के लिये अनेक मानकों को उपस्थित किया है। कई बार तो आधुनिक मनोभूमि एवं परिवीक्षण विधि के प्रभाव में अतिरेक जैसा कुछ हुआ है ऐसा भी लगता है उनसे कोई भी व्यक्ति शास्त्रीय पीढ़ि का अथवा अपने निष्कर्षों के कारण सहमत हो या न हो पर उनकी कही गई बात की उपेक्षा करना संभव नही है। उन्होंने संस्कृत के पुराने काव्य–शास्त्र का पुनपरीक्षण कर नया काव्य शास्त्र भी प्रस्तुत किया है जिस की आत्मा पुरातन होते हुये भी वर्तमान काव्य समीक्षा के तत्वों का आश्रय भी लिया है। अतः न केवल दृष्टि, न केवल समीक्षा संबंधी नये वक्तव्य अपितु नयी समीक्षा के मार्ग को प्रशस्त करते हुये अनेकों को उस मार्ग पर चलने को प्रेरित किया है। परिणामतः धीरे–धीरे

संस्कृत की समीक्षा के नये मापदंड विकसित और स्थापित होते जा रहे हैं। नये तकनीकी साधनों, नये सामाजिक और अवबोध की विशेषताओं के चलते हुए यह क्रम आगे गति पकड़ेगा और हम जैसे लोग आशान्वित हैं कि पारम्परिक–नित्य–चेतन सम्पन्न–पीठिका पर नये विश्लेषण तत्त्व उभरेंगे।

जहाँ तक कवि और कवि–समीक्षा का संबंध है उन्होंने प्रबन्ध के स्थान पर लघु रचनाओं, काव्य के साथ विशेष रूप से नाट्य, अनुभूति के धरातल पर अभिनय की विश्वसनीय प्रतिष्ठा की है। संस्कृत साहित्य के उपेक्षित व्यक्ति, ग्रन्थ और वर्ग को शास्त्रीय स्वर देने का प्रयत्न किया है। यह उनके समीक्षक व्यक्तित्व की नई पहचान के रूप में उभरा है। ऐसा नहीं है कि यह सब करते हुये उन्होंने परम्परा से, शास्त्र से, शास्त्रीय अनुशासन पद्धति की उन्होंने उपेक्षा की हो या नकारा हो। उन्होंने उसी में से मार्ग बनाया है। अपने समीक्षण उपकरण ग्रहण किये हैं। और उनकी जाँच परख और उनसे संवाद आज के भाव जगत और मानकों से की है जो स्पृद्दणीय है।

प्रायः संस्कृतविद् अपने वर्तमान के पीछे रहने वाले, अपनी सीमा रेखा न लाँघने वाले व्यक्ति माने जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उनके पास प्रतिभा और सामर्थ्य का अभाव है। वे अपनी पारम्परिक साहित्य–दर्शन, व्याकरण, आगम्, निगम आदि क्षेत्रों में अद्‌भुत हैं। इतनी समझ ऐसा अवबोध और तपस्या की दृढ़ता तथा गहनता असाधारण है। कदाचित् उसके ही कारण अथवा वर्तमान के अल्पस्थायित्व के कारण इस क्षेत्र की सहज उपेक्षा करते रहे हैं। हमारी पीढ़ी के पहले और समवयस्क तथा बाद की कुछ समय की पीढ़ी ने इस दृष्टि से पर्याप्त विचार और कार्य किये हैं। उसे एक स्थायी आश्रय एवं व्यापक फलश्रुति देने का कार्य प्रो. त्रिपाठी ने किया है जो सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

विभिन्न सन्दर्भों उद्‌धरणों तथा वक्तव्यों से इस बात को सिद्ध किया जा सकता है परन्तु वर्तमान यह छोटा सानिबन्ध इसके लिये नहीं है। हाँ यह रेखांकित करना अत्यन्त आवश्यक है कि समीक्षक, कवि, और विविध रूपों में प्रशासक आदि रूपों में उनके कल्पक और गतिशील व्यक्तित्व का परिचय इंगित पाया जा सकता है।

मैं उनके दीर्घ सक्रिय–जीवन और उनके योगदान की निरन्तरता के लिये अपनी मङ्‌गलकामना प्रदान करता हूँ।

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
रानी दुर्गा वती विश्वविद्यालय जबलपुर

आचार्य राधावल्लभ के जीवन –प्रस्थानत्रय

डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्रः

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के जीवन के जिन तीन प्रस्थानों को मैने समीप से देखा है उन्हें ही स्वतः प्रामाण्य से प्रस्तुत करता हूँ। पहला प्रस्थान तो सर्वसुलभ, सर्वानुभूत तथा सुविख्यात है। दूसरा प्रस्थान उनकी आचार्यता तथा तीसरा कवित्व से सम्बद्ध है।

विप्र का लक्षण सुन रखा है– 'यावज्जीवमधीते विप्रः'। अर्थात् जब तक शरीर में श्वास रहे, तब तक पढ़ता रहने वाला विप्र है। निश्चय ही यह विप्र का जातीय लक्षण नहीं है, स्वरूप लक्षण भी नहीं। यह विप्र का तटस्थ लक्षण हैं। इसकी परिधि में वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं जो नित्याध्ययनशील है, स्वाध्यायी हैं। आचार्य राधावल्लभ जन्मदाता तो विप्र हैं ही। परन्तु उनकी विप्रता का मूलहेतु उनकी नित्याध्ययनशीलता ही है।

व्यक्तिगत सम्पर्क से भी मैं जानता हूँ कि जब वह अपने पूज्य पिता डॉ. गोकुलप्रसाद त्रिपाठी के सान्निध्य में, छतरपुर (म.प्र.) महाविद्यालय में अध्ययनरत थे तभी उन्होंने पुस्तकालय के समस्त हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी ग्रंथ पढ़ डाले थे। स्वाध्याय की यह प्रवृत्ति प्रो. त्रिपाठी में आज तक यथावत् विद्यमान है। कुछ दिन पहले लिपिजिग (जर्मनी) की यात्रा करते समय संयोगवश मैं और डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी जी वायुयान में एकत्र थे। प्रो. त्रिपाठी समानन्तर बायें किनारे बैठे थे। हमने देखा कि वह कोई ग्रंथ पढ़ने में तल्लीन हैं। यह उनका स्वभाव है। वह संकल्प के साथ प्रस्थान करते हैं कि इस यात्रा में मुझे यह ग्रन्थ समाप्त कर देना है। और प्रायः वह ऐसा कर डालते हैं।

आचार्य राधावल्लभ न ही पंक्तिपाण्डित्य के हिमायती है न ही उसके लिये प्रयत्नशील। उनका अध्ययन विपुल एवं विविध है। वह समूची परम्परा का गम्भीर ज्ञान रखते हैं। इस विवेक के साथ कि एक ही प्रस्थान में आचार्यो में किन बिन्दुओं पर भेद है ? साक्षात्कारों में उनके द्वारा पूछे गये आशय के

प्रश्न उनके अध्ययन के इस वैशिष्ट्य को उजागर करते है, कुलपतिपदासीन होने पर भी उनकी अध्ययन प्रवणता में कोई अन्तर नहीं आया। अभी पिछले ही महीने की बात है। मैं संस्थान में कार्यरत था। एक दिन यूँ ही, उन्हें अकेला बैठा जान कर मिलने चला गया। वह संगणक का दत्तचित थे। मैं प्रायः दश मिनट तक बैठकर बाहर चला आया। उन्हें पता तक नहीं लगा। कोशगत द्विरेफ जैसी उनकी एकतानता, तन्मयता निश्चय प्रेरित करती है।

राधावल्लभ का लेखन विशद है। प्रकृतिचित्रण में वह मध्यमवर्गीय हैं, अर्थात् कालिदास एवं भवभूति के बीच के। सद्यः स्नाता दरिद्र युवती का सौन्दर्य भी उन्हें बाँधता है और छोटे–बड़े गड्ढों को पूर्ण करती छत्तीसगढ़ के जंगलो की धारासार सान्द्रवर्षा भी। यदि उनके कवि की 'एकप्रख्यता' को उदाहृत किया जाए तो उनका 'जनवाद' उनकी पृथक् पहचान कराता है। इस जनवादी सैलाब में शामिल है। दिहाड़ी मजदूर, खेत जोतते किसान, पत्थर की गिट्टी तोड़ती गाँव की गबरू औरतें। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि राधावल्लभ में रूमानियत नहीं है। रूमानियत है और बेषुमार है। खास बात तो यह है कि रूमानियत तो प्रायः सभी कवियों में होती है। परन्तु ढलती उम्र का रूमानीपन ही वास्तविक है जब आँखें गृहिणी का अंगसौष्ठव निहारने के बजाय उसके हृदय के झरोखों में झाँकने लगती हैं।

राधावल्लभ की कविता में रूमानियत का शुक्लपक्ष भी है और कृष्णपक्ष भी। शुक्लपक्ष में वह देखते हैं रसवती में अन्नब्रह्म को साकार करती प्रेममयी गृहिणी को! वह अपलक देखते हैं भरम–भटक कर सँझलौंके घर पहुँचे दयित को उपेक्षा का (रूसवाई) वेतन वितरित करती कोपना भार्या को! वह देखते हैं प्रियतमा के कपोल पर उभरे, निमज्जनक्षम कूपक को! 'अद्यापिलहरी' स्मृतिमुखेन अभिव्यक्त, राधावल्लभ की रूमानियत का विलक्षण दस्तावेज है, जो इक्कीसवीं षती की संस्कृत कविता को स्थान प्रदान करती हैं।

परन्तु राधावल्लभ की रूमानियत का कृष्णपक्ष भी है। जबकि मैं इसे पारमार्थिक नहीं मानता। कवि को कभी–कभी स्वयं को विरक्त, वृद्ध निवृत्त अथवा स्थविर समझने का भ्रम हो जाता है। यह एक आरोपित धर्म है। मैं इसे भी कविसमय ही मानता हूँ। सत्तर वर्ष के कवि का, युवामानसिकता के साथ रूमानी गीत लिखना और युवा कवि का वृद्धों की शैली में विराग व्यक्त करना दोनों ही कविसमय मात्र हैं।

राधावल्लभ निश्यच ही बूढ़े नहीं हैं। भले ही उन्होंने अपने अदृष्टरूपी पुरू से उधार लिया हो, वह पूर्ण युवा है– शरीर से भी, मन से भी। फिर वह

कभी–कभी वार्धक्य–संकेतों की बात करते हैं आत्माश्रय–शैली में। परन्तु ऐसा करते हुए भी उनका मंदिर–यौवन स्फार हो उठता है। भरतपुर (राजस्थान) के कवि सम्पूर्णदत्त मिश्र ने तो मेरे लिखने पर भी अपना तात्कालिक चित्र नहीं भेजा। उन्होंने युवावस्था का ही चित्र भेजा और वही छपा भी। उनका कहना था कि कवि कभी बूढ़ा होता ही नहीं। वह नित्ययुवा होता है।

कथाबन्ध के क्षेत्र में प्रो. त्रिपाठी–प्रणीत 'अन्यच्च' एक विशिष्ट उपलब्धि है। इस उपन्यास में यद्यपि दशकुमारचरित की सगन्धता के दर्शन होते हैं तथापि यह कोई कोरा यायावरवृत्त भर नहीं है। इस उपन्यास में प्रो. त्रिपाठी का परिपक्व इतिहासबोध प्रकट हुआ है। साहित्यिक दस्तावेजों के सहारे निबद्ध यह उपन्यास औपन्यासिक संभावनाओं के नये द्वार खोलता है।

'अन्यच्च' के ही समानान्तर प्रणीत प्रो. त्रिपाठी की अन्य गद्यकृतियाँ (उपाख्यानमालिका, अभिनवशुकशारिका तथा विक्रमचरितम्) भी राधावल्लभ के 'नवाभिप्राय' का निकष प्रतीत होती है। विक्रमचरितम् का ताना–बाना पंचतंत्र के आदर्श पर बुना गया है तथापि उसमें आधुनिक भारतीय–संवेदना तथा सामाजिक परिस्थितियों का जुड़ाव, उसे पारम्परिक रचनाधर्मिता से अलग करता है।

आचार्य राधावल्लभ का कर्तृत्व बहुरंगी है। एक ओर वह रूमीरहस्यम् के माध्यम से फारसी काव्यानन्द भी देववाणी में उतार रहे हैं तो दूसरी ओर मुगलकालीन आत्मकथाकार बनारसीदास का आत्मवृत्त भी, उसके ठेठ परिवेश के साथ, संस्कृत में प्रस्तुत कर रहे हैं। तीसरी ओर वह कपिल सिब्बल की अंग्रेजी कविताएँ भी संस्कृत छन्दों में अनूदित कर चुके हैं।

द्वितीय प्रस्थान

आचार्य राधावल्लभ का काव्यशास्त्रीय चिन्तन

संस्कृत–साहित्य की यह विशेषता रही है कि वह निरन्तर गतिमान, प्रवर्धमान एवं विकासोन्मुख रहा है। वेदसंहिताओं में भी यद्यपि उद्‌गीथ–सम्पद् में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, उसकी अपौरुषेय–प्रकृति के कारण–तथापि मंत्रो की अनुपूर्वी, उच्चारण, द्विपदा–चतुष्पदा ऋचाओं के निर्धारण, कुन्ताप एवं बालखिल्य सूक्तों के अन्तर्भाव–अनन्तर्भाव को लेकर निरन्तर संशोधनात्मक चिन्तन चलता रहा। एक ही वेदसंहिता की इक्कीस,सों, सहस्र अथवा नौ शाखा होने का वस्तुतः कारण भी यही था। स्मृतियाँ, पुराण, शास्त्र एवं दर्शन भी उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हैं। तथा मानवीय–मेधा के शाश्वतोन्मेषों का परिचय

कराते रहे। आज स्मृतियों, शास्त्रों एवं दर्शनों का जो आकाश–विस्तृत वाङ्मय उपलब्ध हो रहा है वह इस बात का साधक है कि संस्कृत रचनाध ार्मिता में कभी स्थगन–दोष आया ही नहीं। वस्तुतः संस्कृत रचनाधर्मिता अत्यन्त उदार, संशोधनात्मक, युगापेक्षिणी तथा संस्कारानुप्राणिता रही।

संस्कृत काव्यशास्त्रीय–चिन्तन में तो यह प्रवृत्ति और अधिक षक्तिमत्ता के साथ अवतीर्ण हुई। नाट्यशास्त्रकार भरत से लेकर आचार्य विश्वेश्वर तक तथा विश्वेश्वर से लेकर आज तक काव्यशस्त्रीय चिन्तन निरन्तर विकसित, संशोधित परिमार्जित, पुनर्निर्मित एवं भूयः प्रतिष्ठापित होता रहा है। रस, रीति, वृत्ति,अलंकार एवं लक्षणादि आदि की अवधारणाओं में सामान्य होता रहा है। रस,रीति,वृत्ति, अलंकार एवं लक्षणादि की अवधारणाओं में सामान्य से लेकर आमूलचूड स्तर तक परिवर्तन हुआ। प्रत्येक प्रमेय के दो ध्रुव दिखते हैं। स्वीकृति तथा अस्वीकृति के, शरीरत्व तथा आत्मत्व के, विधि एवं निषेध के। यदि किसी ने कहा कि 'अनलङ्कृति पुनः क्वापि' तो दूसरे ने यह भी कहा–

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।।

यदि किसी ने कहा–'रीतिरात्मा काव्यस्य' तो किसी ने ठीक इसके विपरीत कहा– तस्मान्नत्मत्वं रीतीनाम्।

वस्तुतः ये सारे तथ्य भारतीय–चिन्तन सरणि की उदारता एवं मतस्वातन्त्र्य के प्रमाण हैं। जिस रचनाधर्मिता में ये गुण नहीं होते वह निर्जीव हो जाती, स्मृतिशेष हो जाती है।

एवंगुणविशिष्ट स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिन्तन के ही हस्ताक्षरों में अग्रगण्य हैं आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, जिन्होंने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् के माध्यम से चिरकालावरूद्ध काव्यशास्त्रीय प्रतिभोन्मेष को गति प्रदान की है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा आचार्य बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते–ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित प्रो. त्रिपाठी का यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से विद्वत्समाज में चर्चित हो रहा है। चर्चा का प्रथम कारण है, अनेक सन्दर्भों में आचार्य की स्वोपज्ञ प्रमाणपुष्ट सोच। ये सन्दर्भ लोक, मुक्ति,अलंकार, संकेत, वृत्ति एवं व्यापार आदि के हैं। इन पारिभाषिक पदों को पूर्वपरम्परा के परिपेक्ष्य में ही देखने एवं समझने की प्रवृत्ति पाठकों में रही है। परन्तु प्रो. त्रिपाठी ने चिन्तन के वैष्विक–क्षितिज को ध्यान में रखकर नई जमीन तलाशी है तथा इन पदों को

उनके अभिनव आलोकवृत्त में समझाने का सार्थक प्रयत्न किया है जिसे पूर्वाग्रहमुक्त सहृदय अधीती सहजभाव से समझता भी है।

चर्चा का दूसरा कारण है, प्रो. त्रिपाठी की अनेक सन्दर्भो में पुनारचना अथवा उनका परिष्कृत–प्रस्थान। अलंकारों की अवधारणा के साथ, उनका बाह्य एवं आभ्यन्तर के रूप में विभाजन इस तथ्य का निदर्शन है। अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् की स्थापनाओं, उद्भावनाओं तथा पुनर्व्याख्याओं से कुछ लोग असहमत भले हों परन्तु उनकी 'युक्तियुक्तता' को नकार पाना अत्यन्त कठिन है। त्रिपाठी जी के चिन्तनों की पृष्ठभूमि में उनका पुष्कल, गहन एवं शास्त्रान्तरान्तः प्रविष्ट विस्तृत अध्ययन है जो उन्हें 'स्वीकरणीय' बनाता है।

अभिनवकाव्यलङ्कारसूत्र के यशस्वी कर्ता आचार्य राधावल्लभ के काव्यशास्त्रीय चिन्तन का प्राञ्जलतम रूप उनके अलम्भावनिरूपण–सन्दर्भ में देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ में आचार्य ने न केवल भामह,दण्डी, रूद्रट तथा जयदेवादि के प्रायशोऽभ्यस्त मार्ग से अलग हट कर अपनी बात कही है प्रत्युत उन्होंने अलङ्कारसम्प्रदाय के समूचे संविधानक को ही परिवर्तित एवं संशोधित कर दिया है– सर्वथा ग्राह्य एवं अभिमत दिशा में, आश्चर्य है कि कालयात्रा की दो सहस्त्राब्दी में भी जो दुर्वार गहन अनुभूतियाँ तथा कथञ्चित् प्रसुप्त पड़ी रह गई, वे तब सहसा अंकुरित हुई जब उनके उत्तरोत्तर वर्धिष्णु मन्थन का युग नहीं रहा। वृद्धदम्पती के पुत्रसुख की ही भाँति हम इस क्रान्तिकारी सैद्धान्तिक उन्मेष का यथोचित आनन्द नहीं ले पा रहे हैं। संस्कृत एवं संस्कृतज्ञ–दोनों ही आज संकटग्रस्त है।

आचार्य राधावल्लभ अलङ्कार को न ही व्यज्जनावादी आचार्यो के समान काव्य का षोभाधायक तत्त्व मात्र मानते है और नहीं आचार्य वामन की तरह 'सौन्दर्यमलङ्कारः' जैसी प्रशस्ति लिख कर अलंकार को अनितर साध ारण प्रतिष्ठा देते हैं। वस्तुतः वह अलंकार–तत्त्व की सर्वथा अभिनव प्रतिष्ठा करते हैं– अर्थात् आमूलचूड नवनिर्माण। जीर्णशीर्ण भवन को गिरा कर, उसी भूमिका का उठाये गये नूतन सौध के समान आचार्य के अलङ्कार का एक नूतन संविधान, के एक प्रत्यग्र प्रस्थान खड़ा किया है।

राधावल्लभ प्रमाता के हृदय में समुच्छ्वसित पूर्णता को अलम्भाव मानते हैं जो अनुभवरूप होता है परन्तु वह प्रमातृनिष्ठ होने के साथ ही साथ प्रमेय (काव्य) निष्ठ भी होता है। वस्तुतः अलम्भाव की प्रमेयनिष्ठता ही उसकी

काव्यालंकार रूपता भी है जिसका कथमपि अपलाप नहीं किया जा सकता है। राधावल्लभ अलङ्कारजन्य इस अनुभव को ही 'अलम्भाव' मानते हुए उसके बृहत्ता की व्याख्या करते हैं। इस बृहत्ता– प्रतिपादन के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. यह आलम्भाविक अनुभव कवि, नट एवं सामाजिक में समान होता है। अपनी स्थापना के पक्ष में वह आचार्य भट्टतौत (काव्यनिर्णय) तथा धन०जय को उदधृत करते हैं।
2. यह अलम्भाव चेतना की तीनों अवस्थाओं – आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक में परिव्याप्त होता है फलतः अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पाँचों कोशों को परिपूर्ण कर लेता है।
3. इस अलम्भाव अधिष्ठान जैसे कवि प्रतिभा होती है ठीक उसी प्रकार काव्य एवं मानव–चैतन्य भी। राधावल्लभ अपना मन्तव्य स्फुटतर बनाते हुए कहते हैं अस्मिन् वा चैतन्यं प्रतिष्ठितमित्यपि वक्तुं युज्यते। (अभिनव. पृ. 56)
4. इस अलम्भाव में विविध चित्तवृत्तियाँ सङ्गुम्फित होती हैं नदी के प्रवाह में विलीन अनन्त स्रोतों की तरह ! इस सन्दर्भ में भी आचार्य प्रवर आत्मानुमोदनार्थ महाभाष्यकार पतञ्जलि, धनञ्जय एवं शङ्कुक को उद्धृत करते हैं।

अलम्भाव का व्यापकीयभाव के साथ क्या साम्य अथवा समीकरण हो सकता हैं? इस सूत्रवाक्य की विधिवत् व्याख्या करके ही राधावल्लभ ने अलङ्कार विषयक वह युक्ति प्रस्तुत कर दी हैं जो विगत दो सहस्राब्दी में कोई अन्य आचार्य नहीं कह सका। वस्तुतः अलम्भाव की व्यापकीय भवन–पर्यायता ही उसकी महाविराटता पर मुहर लगाती है।

राधावल्लभ कहते हैं कि लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार में भी चेतना का व्यापकीय भवन ही तो होता है। यदि चेतना का व्यापकीयभाव न हो तो क्या हमें किसी भी वस्तु का (सूक्ष्म अथवा विशाल) ज्ञान (साक्षात्कार) हो सकता है? कथमपि नहीं। चेतना का व्यापकीयभाव ही हमें एक छोटी चींटी से लेकर गज तक का साक्षात्कार यथार्थरूप से कराता है। जो चेतना चींटी को देखते समय पिपीलिकामात्र में व्याप्त होती है वहीं चेतना गज या पर्वत के साक्षात्कार में गज अथवा पर्वत के बराबर विशाल बन जाती है। आचार्य

प्रमाण देते हैं भास्कर कण्ठ का –

ग्रहणसमये भावस्य मायया भावत्वेन भासितं निजं सहजशुद्धप्रकाशाख्यं स्वरूपमेव प्रमातारं प्रति स्फुटीभवति यतः तदा प्रमाता तद्वस्तु प्रति दिदृक्षासमये व्यापकीभवति। (अभिनव. पृष्ठ 56)

राधावल्लभ की वह अलम्भाव–व्याख्या अलङ्कार–तत्त्व की सर्वथा नई व्याख्या करती है तथा उसकी व्यापकता एवं विराटता की नई संभावनायें तलाशती है। वे नई संभावनायें क्या हो सकती है?

1. यह कि अलङ्कार द्विविध होते हैं – आभ्यन्तर एवं बाह्य।
2. यह कि अलङ्कार की मुख्यतः तीन भूमिकायें है – पर्याप्ति, वारण एवं भूषण! (स्मरण रहे कि पूर्ववर्ती आचार्य अलङ्कार के आभूषण–गुण से परिचित रहे हैं। पर्याप्ति एवं वारण गुण से नहीं)।
3. यह कि अलङ्कार त्रिविध होते हैं अधिभूत, अधिदेव तथा अध यात्म (विषयों की दृष्टि से इसकी समधिकतर व्याख्या अभी अपेक्षित है।
4. यह कि अलङ्कार प०चविध होते हैं – पद, पदार्थ, वाक्य, प्रकरण एवं प्रबन्धदृष्ट्या।
5. यह कि अलङ्कार त्रिविध भी होते हैं शब्दव्यापार की दृष्टि से (वाच्यार्थगत, लक्ष्यार्थगत एवं व्यङ्ग्यार्थगत)

अलम्भाव विषयक ये सारी नई संभावनायें राधावल्लभ बड़ी निर्भयता एवं गहराई के साथ प्रतिपादित करते हैं। निर्भयता आचार्योचित गुण है तथा गहराई उसका अन्तर्वैशिष्ट्य है। निर्भयता एवं गाम्भीर्य (प्रमेय) के अभाव में कोई आचार्य बन ही नहीं सकता।

जिनकी उपस्थिति में ही काव्य जन्म लेता है और जिनके अभाव में वह प्रसृत नहीं हो पाता– उन्हीं को राधावल्लभ आभ्यन्तर अलङ्कार मानते हैं। काव्य रचना में आभ्यन्तर अलंकार कभी तो अप्रकटीभूत अथवा अनभिव्यक्त दशा में विद्यमान रहते हैं, परन्तु विद्यमान तो रहते ही हैं। यदि काव्य में नहीं तो कम से कम कवि के मानस में तो रहते ही हैं – परन्तु सर्वत्र काव्यरचनाया कवेर्मानसे अन्तस्तिमिता भवन्ति।

(अभिनव. पृ. – 58)

अलङ्कारों की बाह्यता अपेक्षबुद्धिजन्य है, यह भी राधावल्लभ कहते हैं। वस्तुतः आभ्यन्तर एवं बाह्य अलङ्कारों को तिलतण्डुलवत् पृथक् करके नहीं दिखाया (या बताया) जा सकता। ऐसा कोई स्थूल भेद इन दोनों में है भी नहीं। इस भेद को तो बस यूँ ही समझा जा सकता है कि आभ्यन्तर काव्यालङ्कारता तो अग्नि की उष्णता के समान काव्य से समवेत हैं परन्तु बाह्य काव्यालङ्कार अग्नि से उसकी कान्तिमत्ता तथा ज्वालावच्छिन्नता के समान समवेत हैं, परन्तु आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों ही अलंकार हैं। काव्य से समवेत ही! वे कथमपि काव्य से विभाज्य अथवा पृथग्वर्ती नहीं हैं।

राधावल्लभ द्वारा प्रतिपादित अलङ्कार विषयक अन्य संम्भावनायें प्रायः स्पष्ट हैं, मात्र एक बिन्दु के। वह यह कि पर्याप्त्याधायक अलङ्कार प्रायः आध्यात्मिक होते हैं, वारणजन्य आधिदैविक तथा भूषण जन्य प्रायः आधिभौतिक! वस्तुतः यह स्थापना दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित है अतः इसे दर्शन से ही समझा जा सकता है। पर्याप्ति आत्मा (अथवा चैतन्य) का, वारण अधिदेव का तथा भूषण अधिभूत का धर्म है। संभवतः इसीलिये आचार्यप्रवर उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करते हैं।

आभ्यन्तर अलंकार, आचार्य राधावल्लभ की दृष्टि से ग्यारह हैं – प्रेमा, आह्लाद, विषादन, विभीषिका, व्यङ्ग्य, कौतुक, जिजीविषा, अहंकार, स्मृति, साक्ष्य तथा उदात्त।

बाह्य अलंकार, अपनी चतुर्विधता के साथ, साकल्येन अठारह हैं– अन्यथाकरण, छाया, जाति, अतिशय, अपह्नुति, विरोध, असंगति, विषम, द्वन्द्व, तनाव, उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, नाद – अनुवृत्ति, यमक, श्लेष, तथा लय।

इन अठारह बाह्यालङ्कारों में भी प्रथम चार अर्थात् अन्यथाकरण, छाया, स्वभावोक्ति (जाति) तथा अतिशयोक्ति तो संघनाश्रित होते हैं। विरोध मूलक बाह्यालङ्कार छः हैं – अपह्नुति, विरोध, असंगति, विषम, द्वन्द्व तथा तनाव औपम्यफलक भी छा रही हैं – उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक। अन्ततः आते हैं वृत्तिफलक चार अलंकारनादानुवृत्ति यमक श्लेष तथा लय।

आभ्यन्तर एवं बाह्य (11+18=29) अलङ्कारों के व्याख्यान में, उर्वर प्रतिभा के स्वामी, आचार्य राधावल्लभ ने अद्भुत नवीनता, प्रतिभा–परिपाक तथा गहनचिन्तनजन्य नैपुणी प्रदर्शित की है। इन अलङ्कारों का लक्षण, उदाहरण तथा बृहद् विवेचन मूलग्रन्थ में ही द्रष्टव्य हैं।

परम्परानुपालन को यदि युगस्रष्टा आचार्य की अवश्यग्राह्यता अथवा प्रसह्यकरणीयता न मान लिया जाय तो राधावल्लभ यह कृत अलङ्कार–निरूपण सुकुमारमति छात्रों से कहीं अधिक सुधी अध्यापकों एवं विद्वज्जनों के लिए पठनीय तथा मननीय है।

तृतीय प्रस्थान

वाग्वल्लभता राधावल्लभ की

उत्तर में शिवदास नामक एक कवि दक्षिण में हुए, जिनकी मनोमुग्ध ाकारी ललित उत्प्रेक्षाओं से विस्मित सहृदय समाज ने इन्हें उत्प्रेक्षावल्लभम् सहृदय समज्या में वमों .... के विरूद से अलङ्कृत किया। लोग कवि का मूल नाम भूल गये, परन्तु उत्प्रेक्षावल्लभ संज्ञा के साथ आज भी उनकी कीर्ति अजर–अमर है। 46 भागों में विभक्त उत्प्रेक्षावल्लभ का भिक्षाटनकाव्य अलंकारमार्गी संस्कृत काव्यधारा का एक विलक्षण निदर्शन है।

उत्प्रेक्षावल्लभ से भी पूर्व, मुज्जमहीश– गोष्ठी के अलंकरणस्वरूप महाकवि धनपाल की प्रसिद्धि 'सरस्वतीवल्लभ' के रूप में थी। पण्डितराज जगन्नाथ को भी हम दिल्लीवल्लभ–वल्लभ मान सकते हैं उन्हीं के प्रामाण्य से। अर्वाचीन संस्कृत कविता को भी सौभाग्य से उसी वल्लभ परम्परा का अनुस्मारक एक सारस्वत–विग्रह प्राप्त हुआ है जिसे हम राधावल्लभ के नाम से जानते, पहचानते हैं। मेरी अपनी काव्यसाधना में राधावल्लभ के अनेकश उल्लेख हैं जो निश्चय ही व्याख्या–सापेक्ष हैं। उन उल्लेखों से जहाँ एक ओर राधावल्लभ की साहित्यिक गरिमा का बोध होता है वहीं दो समसामयिक साहित्यकारों की वैचारिक तथा भावनात्मक समरसता भी प्रमाणित होती है।

अर्वाचीन संस्कृत कविता के क्षितिज पर राधावल्लभ का उदय इस बालरवि की तरह हुआ है जो प्रारम्भिक चरण में तो अपनी ललछौंह आभा एवं वर्तुलता के कारण नयनाभिराम प्रतीत होता है, परन्तु मध्याह्नान्मुख होते–होते दुर्निरीक्ष्य बन जाता है –अपनी सान्द्रज्योतिष्पिण्डता के कारण। सन्धानम् एवं लहरीदशकम् का भावुक कवि सम्प्लवः तथा गीतधीवरम् तक आते–आते काव्यप्रौढ़ि, सौशब्द्य एवं काव्यभाषा का प्रतिमान बन जाता है। इस काव्यमात्रा का सांगोपांग मूल्यांकन तो संभव नहीं है प्रस्तुत लघु आलेख में, फिर भी मैं यत्न करूँगा कि राधावल्लभ की काव्यसाधना के कुछ गौरवबिन्दुओं को अवश्य ही रेखांकित किया जाए।

युवावस्था में कलम उठाने वाला कोई भी कवि स्वयं को रूमानियत से

बचा नहीं सकता। उसकी चेतना रूपसौन्दर्य, मांसलता तथा भोगाकांक्षा के साथ एक सीमा तक समरस होती है। यदि वह विवाहित है तो समग्र भूमण्डलीय यथार्थ एवं काल्पनिक सौन्दर्य–प्रतिमानों के साथ पत्नी को साधारणीकृत करता है और यदि यथाकथञ्चित् एकाकी है तो अभिलषित रूपाकृति (प्रियतमा) के साथ समूचे ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य को साधारणीकृत करता है। वस्तुतः सौन्दर्य–तृषा की यह अन्वेषण–क्रीडा बड़ी जटिल एवं गूढ़ होती है जिसमें यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कहाँ कवि ठोस जमीन पर खड़ा है और कहाँ व्योमविहार में लीन है।

उस दृष्टि से देखा जाये तो राधावल्लभ, निष्प्रयास पकड़ वाले प्रणयी कवि सिद्ध होते हैं। सौन्दर्यचेतना से जुड़ी उनकी अभिव्यक्तियों में प्रायः द्वैधा नहीं है, छलावा नहीं है। उनकी प्रणयगीतियों में तुल्ययोगिता भी नहीं है कि उन्हें पत्नी एवं प्रणयिनी–दोनों पर चरितार्थ किया जा सके। बड़ी स्पष्टता, ईमानदारी एवं साफगोई है उनकी पदशय्या में। यदि सन्दर्भ पत्नी का है तो पूरी की पूरी कविता एक ऐसे रूढ़ एवं प्रत्यभिज्ञात बिम्ब के रूप में उभरती है, जिसे अर्धाङ्गिनी से कथमपि पृथक् नहीं किया जा सकता। रसवती में अन्नब्रह्म को साकार करती गृहिणी का यह बिम्ब, मेरे कथन की पुष्टि करता है–

पलाण्डुच्छेदने निर्गतं
नयनयोर्लावण्यमयं बाष्पजलं
सहैव चैव विच्छुरितं मधुरमधुरं स्मितं तथोष्ठयोः
एतद् द्वयमपि सम्मेल्य कटाहे
घृतेन भर्ज्यते यदा
उत्तिष्ठति धूमस्तदा कषायमधुरो रसवत्यां
देवानामावाहनं विधत्ते
अथ हरिद्रासदृशमुज्ज्वलं रूपं धृत्वा
सौगन्ध्यकं वितन्वाना कुस्तुम्बर्याः
अवतरत्यन्नपूर्णा साक्षाद्रसवत्यामस्याम्
अन्नब्रह्म साकारयन्ती।।

अर्वाचीन संस्कृत कविता में राधावल्लभ एक विशुद्ध जनवादी कवि के

रूप में प्रतिष्ठित हैं। परन्तु उनका जनवादी दृष्टिकोण न तो कार्लमार्क्स के द्वन्द्ववाद की उपज है, न ही लोकतंत्र–प्रतियोगी साम्यवादी विचारधारा का अन्धानुयायी।

राधावल्लभ की जनवादी दृष्टि अपनी ही माटी की उपज है, जो उन्हें योगेश्वर, छित्तप, मधु एवं कमलायुध जैसे पूर्व–मध्यकालीन कवियों से मिली है। ये वे कवि हैं जो राजसुखभोगी नहीं हैं, तूलतल्पशायी नहीं हैं। ये वे कवि हैं जो जीवन भर सर्वहारा–वर्ग के प्रतिनिधि रहे हैं, जिन्होंने जिन्दगी के घात–प्रतिघात भरे ठेठ रूप को खुली आँखों से देखा है।

दाम्पत्य–जीवन में भी नित्यसुख, नित्यानन्द, नित्यपरितोष ही नहीं। उस दाम्पत्य में यदि 'जल्पतोरक्रमेण अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्' का पर्याय है तो 'तामेवोष्णैर्विरहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्' तथा संक्षिप्येत क्षणमिव कथं दीर्घयामा त्रियामा' का भी पर्याय है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक इतरविलक्षण दाम्पत्य भोग रहा दृष्टिगोचर होता है। इस भोग में समरस होते हैं– शंका, सन्देह, भ्रम, निष्ठा–अनिष्ठा, विश्वास–अविश्वास, प्रीति–द्वेष, सन्तोष–असन्तोष, तृप्ति–उद्वेग तथा आसक्ति–अनासक्ति के हजारों रंग। इन्हें या तो भोक्ता अनुभव करता है अपनी उत्तमपुरूषता के कारण, अथवा कवि अनुभव करता है अपनी आत्मारामता के कारण।

अन्नब्रह्म को रसवती में साकार करती पत्नी के 'अन्नपूर्णात्व' को निरखने वाला ही कवि, कभी उसके दूसरे रूप को भी देखता है–

क्रान्त्वा दूरं पुनरपि मृत्योरायातः
स्वकुलायवेश्मकम्
जीवनरसमयि! यत्राऽसीना कुरूषे स्नेहनिवेशनम्
भ्रान्त्वा क्लान्तः खिन्नमनाः सम्प्राप्तः
सायं पुनरिह स्वं निकेतनम्
दृष्ट्वा त्वया सखेदं दयिते।
दीयते खेदस्य वेतनम्।।

मेरी दृष्टि में, राधावल्लभ के काव्यात्मक जनवाद का अर्थ है जीवन को, उसकी सांगोपांग वैवर्तिक भूमिका में देखना।

अन्य कवि, जहाँ जीवन को उसके ठेठ रूप में, उसकी मूल भूमिका में

देखते हुए भी, अपनी नाट्यधर्मी अभिरूचि अथवा पक्षधरता के कारण, यथार्थ रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाते, राधावल्लभ अपनी लोकधर्मी–प्रतिबद्धता के कारण बिना किसी लाग–लपेट के, बिना किसी गोपन के, जिन्दगी को उसके प्रकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं। ऊपर के दोनों उद्धरणों में सन्दर्भ समान हैं। फिर भी कवि का जीवन–अनुभव पृथक् है। एक सन्दर्भ में वह 'पत्नी के नेत्रों में लावण्यमय जल' देखता है तो दूसरे सन्दर्भ में वह 'उन्हीं नेत्रों में खेद' को निहारता है।

यह एक–दो अन्विष्ट उदाहरण है। राधावल्लभ की एक अत्यन्त भावुक कविता 'अद्यापिलहरी' में तो दाम्पत्य–तरंगों के इतने उन्मेष हैं। इतनी घमछाँही (शवलता) है भावों की, कि दाम्पत्य मूर्तिमान् हो उठता है।

राजनीति से आयातित जनवाद प्रायः रूढ़ हो जाता है झुग्गी झोपड़ियों, दिहाड़ी मजदूरों तथा सर्वहारावर्ग के लोगों में। यदि उस दृष्टि से देखा जाये तो भी राधावल्लभ, अपने समसामयिकों में, उस धारा के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार सिद्ध होते हैं। यह काव्यधारा राधावल्लभ की स्वतंत्र कृतियों–रोटिकालहारी, निदाघलहरी तथा जनतालहरी आदि में तो भूयोभूयः परिपुष्ट हुई ही है, उनकी अन्यान्य प्रबन्धात्मक/प्रबन्धेतर रचनाओं में भी वह दृष्टान्तमुखेन अभिव्यक्त हुई है। चाहे सन्दर्भ जनता, निदाघ अथवा रोटी का न भी हो, सन्दर्भ चाहे छत्तीसगढ़ के जंगलों में उतरी पुरजोर बारिश का ही हो, कवि अपनी जनवादी पक्षधरता ही कर देता है –

अवतीर्णा इमा वर्षाश्छत्तीसगढजङ्गले।
सहते निशितं धारासम्पातं वृक्षसन्ततिः।।
रून्धत्येते द्रुमास्तूष्णीं पूगस्थूलास्तु विप्रुषः।
जनता सहते मूकं प्रहारानिव दुष्कृतान्।।
कलमानामिमा राज्य उत्खातप्रतिरोपिताः।
निर्वाचने जनैः सद्यः शासने ऽधिकृता यथा।
गर्ताम्भस्यददुर्डिम्भा नौकां कर्गजनिर्मिताम्।
प्रजातन्त्रोदधौ मुग्धैर्दत्तं मतं जनैर्यथा।।
दूर्वा चतुर्दशोऽङ्कः, पृ. 28

इन प्रकीर्ण कविताओं से अलग हट कर लिखी गई राधावल्लभ की

अनेक लहरियाँ आद्यन्त जनवाद (Mass Feeling) के रंग में रंगी है। उर्दू के अवामी शायर मजाज को पूनम का दागदार चाँद, किसी विधवा की अधजली रोटी सा दीखता है। मैं नहीं जानता कि राधावल्लभ ने मजाज को पढ़ने के बाद रोटिकालहरी लिखी है या नहीं, परन्तु उनकी रोटियाँ समाज का स्मरण अवश्य कराती है। बस, दोनों कवियों की दृष्टि में फर्क है और वह फर्क भी परिस्थिति–जन्य।

विधवा का जीवन निराशा, कुण्ठा, विवशता एवं कृच्छ्रता से ओतप्रोत है। उसे रोटियों में कोई अभिरूचि नहीं, स्पृहा नहीं। वह मात्र जीवित रहने के लिये रोटियाँ बना–खा रही है। ऐसी वितृष्णा, उपेक्षा एवं अनवधानता में रोटियों का अधजली बनना ही उनकी नियति है। शायर उस विधवा की ही आँखों से पूनम के चाँद को देखता है।

राधावल्लभ की दृष्टि में सौभाग्यवती प्रियतमा है। फलतः उन्हें दागों भरी (अधजली) रोटी भी प्रिया के उस कपोलमण्डल सी दीखती है जिसमें स्थान–स्थान पर विच्छित्तिवर्धक (Beauty Spots) काले तिल उभरे हैं–

रम्यरामाऽऽननेऽकृत्रिमा राजते
भ्राजमाना कपोले तिलस्यच्छविः।
भक्तिरेखा सुरम्या हनौ वा यथा
बभ्रवो बिन्दवो रोटिकायास्तथा।

कवि रोटी को उसकी समग्रता (Totality) में देखता है। फलतः रोटिकालहरी' रोटी कपड़ा और मकान' सरीखे राजनैतिक नारे के लहजे में लिखी गई कोई सस्ती कविता नहीं। वस्तुतः इस कविता में रोटी का एक गूढ़ दर्शन विद्यमान है। रोटी का बनना ही जीवन के सतत संघर्षो की प्रतीकात्मक गाथा है। अपना स्वरूप पाने से पूर्व रोटी, उपादान एवं निमित्त, दोनों ही दृष्टियों से क्या–क्या पीड़ा नहीं भोगती–उपमर्दन, पीड़न, निकृन्तन, उद्वेल्लन, घर्षण, दाहन, विस्फूर्जन, संस्फोटन, विभाजन। जिन्दगी में भी यही सारी परिस्थितियाँ आती हैं –

क्लिन्न–गोधूमचूर्णस्य पिण्डैः समं
वेल्लिता चक्रपट्टे च विस्तारिता।
ऊष्मणा योजिता बाष्पपूरान्विता
बाष्पपूरं हरन्ती शिशोर्नेतजम्।।

क्षेपिता चुल्लके फल्लिता तत्क्षणं
मोदयन्ती जनानां सदा सा गणम्।
त्रोटिता ग्रासकैर्दीयमानाऽनने
प्लावयन्ती च जिह्वामपूर्वं रसैः।।

रोटी के इस दर्शन को कवि 'रसो वै रसः' के धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है यह युक्ति देते हुए कि,

व्यञ्जनानां समस्तोऽपि राशिर्वृथा
शाकसम्भारसंस्कारसज्जा वृथा।
स्थालिकामध्यगा नो भवेद्रोटिका
जीवनं केवलं स्याद् व्यथायाः कथा।।
फुल्लिता तावदास्ते जगद्वाटिका
शोभते सुन्दरीणां तनौ शाटिका।
दीयते लभ्यते गृह्यते भाटिका
यावदास्ते तथा सोदरे रोटिका।।

जैसा मैंने कहा, राधावल्लभ रोटी का 'वर्णन' नहीं करते अपनी कविता में, प्रत्युत उसका अनेकान्त–दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इस दार्शनिक समीक्षा की 'अनेकान्तता' भी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। कवि नैयायिकों की प्रमा, मीमांसकों के अर्थवाद तथा वेदान्तियों के ब्रह्म का भी मूल उत्स रोटी को ही मानता है। यह तो हुआ रोटिकासत्य का एक अन्त (पक्ष) उसका दूसरा अन्त है, उसे प्राप्त कर सकने का विविध स्रोत। रोटी किसी का उपहार' के रूप में (अर्थात् मुत, बिना कोई परिश्रम किये ही) मिलती है तो किसी को 'घूस देकर' अथवा किसी को भिक्षार्थ हाथ फैलाकर। परन्तु निर्गलित सत्य यही है कि सारा संसार यदि जी रहा है तो मात्र रोटी के लिये। रोटी जिजीविषा का पर्याय है –

यत्प्रमां मन्वते साधु नैयायिका
अर्थवादं जगुर्यच्च मीमांसकाः।
ब्रह्म वोपासते यद्धि वेदान्तिन–
स्तस्य सर्वस्य मूलं न्वियं रोटिका।।

केनचित्प्राभृतैः प्राप्यते रोटिका
केन वोत्कोचमादाय सा प्राप्यते।
अग्रहस्तं पुरः सारयित्वा मुहु –
र्दीनदीनैः स्वरैः केनचिद्भिक्ष्यते।।
हालिको मालिको भालदर्शी तथा
कौलिको मौलवी जालजीवी पुनः।
अस्तु वाऽध्यापको वाऽपि नेता तथा
रोटिकायाः कृते ते समे जीविताः।। (रोटिकालहरी)

राधावल्लभ की समस्त लहरियाँ प्रायः अन्तः शृङ्खलित हैं, अतः भावसंवेदन–दृष्ट्या वे एक–दूसरे की पूरक हैं। रोटिकालहरी में उठाये गये अनेक प्रश्नों की पृष्ठभूमि अथवा समाधान, या फिर दोनों ही हम जनतालहरी में पाते हैं। उनके समवेत, सांगोपांग अध्ययन की आवश्यकता है।

'गीतधीवरम्' मुझे राधावल्लभ की लहरीपरम्परा की विश्रामभूमि प्रतीत होता है। विश्रामभूमि ही शिखरभूमि भी होती है। यायावर पथिक अथवा पर्वतारोही विश्राम कब और कहाँ करता है ? जहाँ (या तो) राह खत्म हो जाय पर्वत की ऊँचाई खत्म हो जाय अथवा जहाँ यायावर/आरोही की शक्ति क्षीण हो जाय। क्षीण होने का यहाँ आशय है – पुनर्नवता पाने की अपेक्षा, न कि आत्यन्तिक समाप्ति। यह आशय कवि के सन्दर्भ में है क्योंकि कविप्रतिभा में औपचारिक क्षीणता दीखती भी है तो मात्र पुनर्नवता के लिये।

रोटी से जुड़े सारे विवर्त गीतधीवरम् में अपार्थक अथवा बौने सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि राधावल्लभ का धीवर हालिक, मालिक, नेता, मौलवी, अध्यापक, श्रमिक, श्रेष्ठी– इन सबसे परे है। वस्तुतः वह अशनाया–पिपासा से भी विनिर्मुक्त है। उस धीवर का भौतिकपक्ष, शरीर से–संसार से जुड़ी उसकी समस्याएँ आज भी उसे 'सर्वहारा' ही सिद्ध करती हैं, परन्तु उसने अपनी आत्मशक्ति विकसित कर ली है। वह अब अपनी जीर्ण–शीर्ण नौका तथा पुराने डाँड़–पतवार लेकर, अदम्य साहस एवं अटूट विश्वास के साथ चल पड़ा है अथाह (जीवन–) सागर को पार करने। अब वह पेट भरने के लिये, मात्र रोटी के लिये हाथ फैलाने वाला याचक नहीं रह गया है।

जीवन में प्रायः यही होता भी है। किसी वस्तु को प्राप्त करने की दुर्वार आकांक्षा ही, एक बिन्दु पर पहुँच कर उस वस्तु के प्रति औदासीन्य, अनासक्ति

सिरजने लगती है। रानी पिङ्गला के रूपमोह ने ही तो भोगी भर्तृहरि को योगी बनाया? इस लोकसत्य की सारस्वत अनुवृत्ति हम राधावल्लभ की काव्यसाधना में पाते हैं। गीतधीवरम् का नायक धीवर है तो श्रमिकवर्ग का ही सदस्य, परन्तु उसने रोटी की भूख से मुक्ति पा ली है। अब शरीर की बजाय उसकी ' आत्मा की भूख 'जागृत हो उठी है। भूख सागर–पार पहुँचने पर ही शान्त हो पायेगी।

नौकामिह सारं सारं
गन्तास्मि कदाचित्पारम्।
उत्तीर्णः स्यामपि मन्ये पारावारमपारम्।।
इमा लहर्यो नैव स्युर्नावर्ता इसे भवेयुः
मनः प्रगुणयाम्यग्रे संकल्पं धार धारम्।।
गच्छति पुरः शरीरं ध्यायति चेतस्तीरम्
तीरमुज्झितं पृष्ठे परितः केवलमिह नीरम्
नीरमिदं तारं तारं गन्तास्मि कदाचित्पारम्।।
सरति समस्तः संसारः प्रोद्वेल्लति पारावारः
पारावारे नौका, नौकायां गतिसञ्चारः
नौकामिह सारं सारम्
गन्तास्मि कदाचित्पारम्।।

सम्भव है कि यह मेरे मन का भ्रम ही हो, परन्तु लगता है जैसे राधावल्लभ के गीतधीवरम् का 'निगूहितार्थ' मात्र मैंने ही समझा है।

एक विलक्षण यात्रा है धीवर की, अलातचक्र की नाईं वेगपूर्वक घूमती चाक पर पिपीलिक (चींटा) की यात्रा जैसी। यात्रा सुखद, सुरक्षित तथा सुगम तभी होती है जब यात्रा की आधारभूमि स्थिर हो। परन्तु कल्पना करें कि यात्री एवं यात्रापथ–दोनों पूर्ण गतिमान् हों? तब क्या होगा? जिस जमीन पर पाँव रखकर चलना है, आगे बढ़ना है–वह जमीन स्वयं गतिमती है।

गीतधीवरम् का नायक ऐसी ही संकटापन्न, दुस्साध्य यात्रा पर चल पड़ा है जिसमें सब कुछ गतिमान् है – सब कुछ अस्थिर है।

सरति समस्तः संसारः प्रोद्वेल्लति पारावारः
पारावारे नौका, नौकायां गतिसञ्चारः।।

फिर भी साधक (धीवर) का जीवट तो देखिये–

नौकामिह सारं सारम्

गन्तास्मि कदाचित्पारम्।।

वस्तुतः राधावल्लभ ने धीवर के यात्रापथ में कठोपनिषत्–प्रोक्त 'क्षुरस्यध ारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथः' के बिम्ब को जीवन्त कर दिया है।

यदि राधावल्लभ के कवित्वद्रुम को मुण्डकोपनिषद् का 'पिप्पलतरू' मान लिया जाये तो उसका एक फल लहरीदशकम् है और दूसरा गीतधीवरम्! लहरीदशकम् का पाथेय संसारियों, प्रवृत्तिमार्गियों के लिये है तो गीतधीवरम् का काव्यानन्द मुमुक्षुओं, निवृत्तिमार्गियों के लिये।

गीतधीवरम् की अन्यान्य साहित्यिक विशेषताओं के विषय में मैंने विस्तारपूर्वक अपने 'नान्दीवाक्' में लिखा है जो मूलग्रंथ में अनुस्यूत है। मैं गीतधीवरम् को कवि की सारस्वत–साधना का निकष मानता हूँ।

राधावल्लभ उद्धरणीय, उल्लेखनीय तथा निदर्शनीय कवि हैं। उनकी कविता–यात्रा का यह पक्ष मुझे अभी थोड़े दिन पूर्व ही भासित हुआ, जब मैं अभिराजयशोभूषणम् की पूर्ति में लगा था। इस ग्रंथ में मेरी भी संकल्पना पण्डितराज जगन्नाथ जैसी ही थी–निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्ये मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित्। मेरे संकल्प में थोड़ा संशोधन यह था सारे उदाहरण या तो मेरे अपने हैं या समसामयिकों के (प्राचीन कवियों के नहीं)।

आनन्द की बात तो यह है कि सर्वाधिक उदाहरण–श्लोक मुझे राधावल्लभ में ही मिले। किसी भी कवि के लिये यह गौरव की बात हो सकती है कि उसकी पदशय्या में, उसके भावगुम्फन में उसके बिम्बविधान में परिकर, पर्यायोक्ति, सहोक्ति, विनोक्ति, निदर्शना, तुल्ययोगिता विषम एवं दीपक जैसे अलंकार सहजता से प्रयुक्त मिलें। अलंकारों का, तिल–तण्डुलवत् कविता से अलग–अलग रहना, एक बात है और नीर–क्षीरवत् कविता से एकाकार हो जाना, दूसरी बात है।

अब, यह बात और है कि कोई असहज (यत्नसाध्य) अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति को भी अपनी 'सहज' अभिव्यक्ति घोषित करने का दम भरे। परन्तु पाठकों को तो वह लगता है असहज ही।

वस्तुतः अलंकार राधावल्लभ के काव्य में नहीं, काव्यदृष्टि में हैं। जब अलंकार काव्य में अवतीर्ण होते हैं तो कविता (भावसंवेदना) और अलंकार के

बीच फासला बना रहता है। कवि, दोनों को जैसे–तैसे समानाधिकरण के माध्यम से जोड़ता है – अभिहितान्वयवादी मीमांसकों की तरह। परन्तु जब अलंकार ही काव्य बन कर उतरता है तो वह अन्विताभिधान की तरह, कथ्य तथ्य से सम्पिण्डित होता है, एकाकार होता है।

यूँ भी, सिद्धान्ततः राधावल्लभ अलंकारवादी आचार्य हैं। उनकी दृष्टि में अलंकार ही काव्य है (अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्)।

अलंकार्य एवं अलंकार की यह एकाकारता महाकवित्व–सिद्धि का प्रमाण है। राधावल्लभ वर्णन कर रहे हैं छत्तीसगढ़ के जंगलों की वृष्टि का, परन्तु वह वर्णन स्वभावोक्ति, उदात्त दृष्टान्त, उल्लेख, प्रतिवस्तूपमा आदि जाने कितने अलंकारों को स्वयं में समेटे प्रवृत्त हो रहा है, जिनकी जानकारी स्वयं प्रयोक्ता कवि को भी नहीं होती। राधावल्लभ, ऐसी ही अविचारित रमणीयताओं के यशस्वी कवि हैं। किञ्च,

वन्दे सत्यवतीसूनुं व्यासं, व्यासधियम्पुनः।
कविं सत्यवतीकान्तं राधावल्लभमञ्चितम्।।

पूर्व कुलपती,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी

एक जनोन्मुखी बहुविद्याधर : राधावल्लभ त्रिपाठी

डॉ. विजय बहादुर सिंह

ऐसा बहुत कम होता है जब अचानक आप किसी से प्रभावित और उसके प्रति किसी नये–नये प्रेमी की तरह आकृष्ट हो उठें खासतौर से तब जब आप खुद को कोई कम खुदा न मानते हों। राधावल्लभ जी को लेकर पहली ही मुलाकात में सचमुच ऐसा ही हुआ। हम दोनों संभवतः आगे–पीछे की बेंचों पर बैठे, परम्परा और आधुनिकता पर कवि अशोक वाजपेयी की एक वक्तृता सुन रहे थे। सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी–विभाग द्वारा आयोजित उस राष्ट्रीय संगोष्ठी में पूरे देश से ढेर सारे लोग आए थे। मैं भी एक पूर्व छात्र और युवा लेखक की तरह आमंत्रित था। राधावल्लभ जी को इसी विचार सभा में सुनने का अवसर मुझे पहली बार मिला। अपनी कद–काठी में तो वे मुझे एक छात्र से ज्यादा नहीं लगे। संस्कृत के पारंपरिक पण्डितों जैसा गुरुडम तो एकदम नहीं। सीधे–साधे पैण्ट–कोट में लगभग औसत सी कदकाठी और छवि में न कोई ग्लैमर था, न परंपरावाद की कोई बासी–पुरानी गंध, न अपने अपेक्षाकृत अभिनव और आधुनिक दिखने या दिखाने की कोई भंगिमा। एक दम सामान्य सी उपस्थिति जिसे बस औसत ही कहा जा सकता था चेहरे–मोहरे में भी ऐसा कुछ नही था जिसे देखते ही कोई आकृष्ट हो। तब क्या कुछ ऐसा था, जिसने मुझमें उनके प्रति समीपता का अनुभव कराना शुरू किया–इस सवाल को हल करना मेरे लिए आज भी आसान बात नहीं है। कारण होते भी हैं किन्तु उनकी उपस्थिति इतनी रहस्यात्मक होती है कि उन्हें जान लेना आसान नहीं हुआ करता।

एक बार मैंने अपने एक अर्धतांत्रिक साथी से पूछा–देखते ही कोई व्यक्ति अपनत्व की ऊष्मा से विभोर कर डालता है। इच्छा होती है उसके पास जाया जाय, जाकर देर तक बैठा बतियाया जाय। लेकिन क्यों, किन कारणों से ? जवाब भी उसने अपनी ही विद्या में दिया– 'सारी सृष्टि अपना एक प्रतिसंगी (काउन्टर पार्ट) लेकर पैदा होती है। ऐसा प्रतिसंगी जब भी

कभी कहीं दिख जाता है। उसके साथ होने का भाव विकल करने लगता है। काउन्टर पार्ट के बगैर तो सृष्टि होती ही नहीं। उसका यह उत्तर सुन मैंने झट दूसरा सवाल रख दिया–अगर ऐसा आकर्षण समलिंगी को लेकर हो तब? 'तो क्या हुआ? प्रतिसंगियों का अपना भी तो कोई कुल–परिवार होता ही है। सृष्टि बगैर द्वैत के संभव नहीं। एक हूँ अनेक हो जाऊँ, यही तो 'एकोऽहं बहुस्याम्' है। एकता में अनेकता की खोज और लालसा या कहें समग्रता की चाह। एकाकीपन कोई परिपूर्णता नहीं है' उसका जवाब था।

उसके इस जवाब से मैं कितना संतुष्ट हुआ, कितना फिर भी असंतुष्ट रहा, कहना मुश्किल, फिर भी तात्कालिक तौर पर तो राहत का अनुभव किया ही। उर्दू के किसी शायर की यह सोच भी तभी ख्याल में उभरी–'दिल से दिल को राहत होती है। यही तो प्रेम की भूख है'। एक प्रकार का आत्मविस्तार। पिण्ड का ब्रह्माण्ड की ओर प्रसरण।

राधावल्लभ जी को लेकर उस दिन ऐसा ही कुछ हुआ था कहना बड़ा भारी झूठ होगा। बस वे मेरे लिए एक परिचित उपस्थिति सी जरूर बन चुके थे। यह कब आत्मीयता की दिशा में बढ़ती गई, कब मैं अभिन्नता का अनुभव करने लगा, कब हमारी यह परस्परता एक दूसरे के लिए शक्ति बन गई, और यह सब कितने धीमे–धीमे, एकदम स्वाभाविक और सहज ढंग से होता गया कि बस हमारे विश्वास एक दूसरे को लेकर जमते गए और धीरे–धीरे उनका एक महल सा ही बनता चला गया। फिर तो हम दोनों किसी स्थायी पड़ोसी की तरह उसमें अगल–बगल रहने का सुख लूटते रहे। लेकिन पड़ोसी क्यों? मित्र क्यों नहीं ? आत्मीय भी।

आज सोचता हूँ तो कहने का मन होता है कि पढ़ा–लिखा कथित उच्च विद्याधर समाज लोक का सार ऐश्वर्य रस कबाड़ कर इस तरह इतराने पर आज उतर आया है कि उसकी कोई भी उपस्थिति अब सहज नहीं रही। कहा जरूर जाता है– 'जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख' –पर हो कहाँ रहा है ऐसा? कविवर भवानी भाई की इस पंक्ति के विपरीत उन्हीं के समय के दूसरे साथी कवि ने एक यह पंक्ति भी लिख दी–'तुम होगे सामान्य / यहाँ तो पैदाइशी प्रधान हैं'। कवि मुकुट बिहारी सरोज की इस पंक्ति की सच्चाई पर कौन संदेह करे। फिर भी राधावल्लभ जी को देखा तो भवानी भाई वाली काव्य–पंक्ति भी सच लगने लगी। कविता में आगे और एक पंक्ति है– 'और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख' देखने–सुनने में मामूली–सी लगने वाली इस पंक्ति में गहरी गूढ़ता और तरल व्यंजना है और वह यह कि केवल अच्छी

कविता ही लिखना नहीं, बेहतर मनुष्य और मनुष्यता का खुबसूरत पर्याय हो उठना भी। अच्छी कविता लिख लेना तो शायद संभव हो भी जाए पर अच्छा आदमी होना भी क्या इतना ही सहज संभव है ? अगर इतना सहज संभव होता तो मियाँ गालिब क्यों लिखते– 'आदमी को है मयस्सर नही इन्सां होना। तब भी, दुश्वारी से ही सही संभव होता तो है पर कभी–कभी। राधावल्लभ जी मेरी दृष्टि में इसी कभी–कभी वाले मुहावरें में आते हैं। उनको जान–समझकर इस पर भरोसा किया जा सकता है।

एक ऐसे जमाने में जिसमें आदमी स्वयं को ही ब्रह्माण्ड–नियन्ता मानने के मुगालते से भर उठा हो, कोई इतना अहं मुक्त हो, किसी चमत्कार से कम क्या है? हाँ, यह एक बड़ा सवाल है। मैं खुद ढेर सारे ऐसे मनोरोगों का शिकार हूँ। क्यो न होऊँ। मैं अज्ञेय के जमाने का संस्कार लेकर निकला काव्य–स्नातक हूँ। यह वे ही तो कहते हैं– "आधुनिक कविता पर मनोविज्ञान की गहरी छाप है"। और यह मनोविज्ञान व्यक्ति को कहाँ कहाँ नहीं ले जाता है। उत्तर होगा– व्यक्तित्व की विशिष्टताओं की ओर। उदाहरण से समझना चाहें तो महाभारत के तमाम विलक्षण चरित्रों की तरह किसी से किसी का सहज मेल मिलाप नहीं। सब के सब असहज असामान्य सामान्य की दूर–दूर तक कोई संभावना नहीं। इसी जमाने में राधावल्लभ जी अगर आइसवर्ग की तरह अपनी असाधारणता को छिपाए सहज सामान्यता की गंध बिखेरा करते हैं तो यह असाधारणता में साधारणता का सौन्दर्य ही कहा जाएगा न?

मैं उनके समीप होता गया और आज तक रह पाया, बल्कि उनके व्यक्तित्व के जादू से बँधता ही चला गया तो इसी नाते कि उनकी यह साधारणता और सहजता मुझे निरन्तर बाँधती रही, इससे बँधकर मैं बार–बार इस एहसास से सम्पन्न होता रहा कि साधारण सा दिखने वाला यह शख्स अपने सर्जना–पिण्ड में बेहद असाधारण है। असाधारण इसलिए कि यह वह सब देख और कह पा रहा है जिसे परम्परा हमेशा एक लालसा लिए पालती रहती है और जिसके कहने से आधुनिकता पहचानी जाती है।

कौन नहीं जानता राधावल्लभ जी के लेखन में परम्परा की अद्भुत ताकतों की पुर्नखोज और पुनर्रचना का ऐतिहासिक उद्यम है। निश्चय ही इसमें स्मृति की पूँजी भी लगी है तथापि नए जीवन सपनों का वैभव भी। पुराने को जिस नए ढंग से वे देखते हैं, वही तो उनकी आधुनिकता है। तथापि यह उधार की आधुनिकता नहीं है। सच्चे अर्थों में लोकतांत्रित जनवादिता है। इसे कोई चाहे तो उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'संस्कृत कविता की लोकधर्मी

परंपरा' में देख सकता है। संस्कृत भाषा और साहित्य के पंडित होकर भी वे जैसी लोकतांत्रिकता की माँग और उसके आग्रह से भरे हुए हैं, वह कोई दबी–छिपी राजनीतिक कोशिश नहीं है। बल्कि लोकतांत्रिक सपनों पर छाई हुई अभिजात या कहें सामंती धुंध को छाँटने की एक ताकतवर कोशिश है। कौन नहीं जानता कि भारत के लोकतंत्र को सामंती और पूँजीवादी शक्तियों ने किस चतुराई से अपने स्वार्थों के पक्ष में हड़प रखा है। तब ऐसा लेखक क्या करे? क्या उसका फर्ज तब जन–सामान्य में यह बोध जगाने का नहीं है कि तुम भी तो इसी लोकतंत्र के अधिकृत नागरिक हो। तुम्हारा भी तो कोई हक बनता है। और यह तभी बनेगा और जब तुम सचेत होकर एकत्र और सुसंगठित होओगे। पर इससे पहले आपस में तुम्हारा एक दूसरे से परिचित होना जरूरी है। तुम्हारा आत्म बोध जरूरी है। एक लेखक के रूप में राध ावल्लभ जी पाठकों में यह बोध जगाते हैं। उन्हें पढ़कर जाना जा सकता है कि उनकी मंशाएँ क्या है। समकालीन समाज में रूढ़ और ठस्स चिन्तन में वे कौन सी तब्दीलियाँ चाहते हैं। संस्कृत भाषा–क्षेत्र के पण्डितों के बीच क्या यह सुखद कोशिश नहीं है?

किन्तु यह सब किसी नारे या फतवे की शक्ल में तो यहाँ बिल्कुल नहीं है। इसमें गहरा विचार–विमर्श और लोकचिंतन है। लोक यथार्थ और सामाजिक नवनिर्माण की संयुक्त गुफ़्तगू यहाँ जिस तरह घटित होती है उससे यथार्थ की शक्ल निखार तो पाती ही है, नवनिर्माण के सपनों की कोशिशों की पहल भी अधिक तर्कपूर्ण हो उठती है। इस रूप में राधावल्लभ जी कोरे भाव–विलासी स्रष्टा नहीं हैं। उनकी सर्जना में सांस्कृतिक सपनों की मौजूँ ऐतिहासिक इबारतें हैं और इनकी अन्तर्ध्वनियाँ इतनी सघन अनुगूँज लिए हुए हैं कि वे पाठकों की चेतना की घाटियों में उमड़–घुमड़ कर बरस पड़ती हैं। इस तरह यहाँ एक और लोकतंत्र साकार होता है। अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का लोकतंत्र। अज्ञेय फिर याद हो आते हैं– 'रचना केवल अभिव्यक्ति नहीं है, वह सप्रेषण भी है।' इस रूप में रचनाकार की जिम्मेदारी दुहरी है। वह केवल रचकर बरी नहीं हो सकता उसे अपने सम्प्रेषण–धर्म पर भी सोचना पड़ता है। इसलिये प्रयोग के लिए प्रयोग का कोई अर्थ नहीं और राधावल्लभ जी कोई प्रयोगवादी हैं भी नहीं। सोद्देश्यता और सप्रयोजनता उनके लेखक का परम धर्म है, विचारक और चिन्तक का भी। और इस प्रसंग में उनकी सूक्ष्म और गहरी दृष्टि बराबर काम करती रहती है। किसी धीर–गंभीर अध येता और साधक की तरह। इसीलिए उनके लेखन में असंदिग्ध सुस्पष्टता

और निर्विवाद सुसौम्यता है जैसे कि वे स्वयं हैं। अपने विचारों से वे कभी किसी को उत्तेजित नहीं करते पर आन्दोलित तो करते ही करते हैं। और यह सब भी इतने अनजाने ढंग से होता चलता है जैसे कि रिमझिम बारिश सी हो रही हो। इसका कारण उनका वह शास्त्र और परम्पराबोध है जो उनके अनुभवों के लोकतंत्र में रच–बस कर और नए सिरे से सुसंस्कारित प्रकट होता है। निगाह उनकी हमेशा वर्तमान पर रहती है किन्तु बुद्धि उस मानव–भविष्य को लेकर व्यस्त रहती है जो अतीत के संचित और वर्तमान के क्रियमाण की संयुक्त कोशिशों से बनता है। यही उनके लेखक का वह संतुलन है जो उन्हें तमाम अतिवादों से बचाता है और पाठक को उन वैचारिक मर्यादाओं की तरफ ले जाता है जिनकी इस समाज को जरूरत है। संभवतः यह वही मध्यमार्ग है जहाँ न सब कुछ नया है, न सबका सब पुराना या बासी है। यों भी शब्द तो वातावरण में पहले से ही मौजूद रहता है पर जब कोई उसे अपने अनुभवों की रंगशाला में किसी रँगरेज सा रंग कर प्रस्तुत करता है। उसकी नष्ट हो चुकी अर्थ–कान्ति जीवंत और नई हो उठती है। राधावल्लभ जी से अधिक इसे कौन जानता है। वे ही तो हैं जिनका दायाँ पाँव शास्त्र के आँगन में तो बायाँ लोकानुभवों के कुरुक्षेत्र में विचरण किया करता है।

शास्त्रचर्या और चर्चा यदि उनके जीवन का एक पक्ष है तो सर्जना और अनुसर्जना उसका दूसरा पक्ष। वाङ्मय के अखाड़े में वे जिस तैयारी से उतरते हैं, लगभग उसी शिद्दत से सर्जना की साधना भूमि पर भी वे हमें जब–तब मिल जाते हैं। जब–तब की बात इसलिए कि ऐसा कभी–कभी ही होता है। कविता, नाटक, उपन्यास की भूमियों पर अलग–अलग अनुभवों से संवाद करते हुए वे जब कभी अनुवाद–कर्म की ओर भी जाते हैं। मेघदूत का मेघ संदेश नाम से सानेट की शैली में अनुकथन हमारे लिए एक और कालिदास को प्रत्यक्ष करता है। यह निश्चय ही अनुवादक का अपना जिया और भोगा हुआ कालिदास है। इसमें बहुत कुछ अपना मूल सर्जक के अलावा अनुवादक का भी है। इन तमाम व्यक्तित्वों में उनका एक और व्यक्तित्व तब प्रकट होता है जब वे 'महिषशतकम्' के अनुवाद कर्म में प्रवृत्त होते हैं। प्रश्न यह है कि लेखक या अनुवादक ऐसी कृति के पास क्यों गया ? मेरी अपनी दृष्टि में समूचे भारतीय काव्य साहित्य में यह एक विरल दुर्लभ कृति है। भूमिका के एक पृष्ठ पर डॉ. त्रिपाठी लिखते हैं–"महिषशतकम्" अठारहवीं सदी के एक बड़े पंडित और कवि की आत्मकथा भी है जिसकी रचना गहरी हताशा और अपमान तथा प्रतारणा की पीड़ा के साथ वांछानाथ (कवि) ने अपने लिए

उत्तम पुरूष एक वचन का प्रयोग करते हुए की है। संस्कृत साहित्य में महिषशतकम् व्यक्तिवाद की झलक देने वाली दुर्लभ रचना है जिसमें स्वाभिमान के साथ अकड़ और हेकड़ी का पुट भी कम नहीं है। अपने ऊपर अत्याचार करने वाले राजा के अधिकारियों, बिचौलियों (जिनके लिए सुभेदार हर्कारा आदि शब्द इस काव्य में रखे गए है) से उदग्र प्रतिशोध की भावना को वांछानाथ ने महिष के प्रति लाड़ में ढाल दिया है। एक भैंसे से जैसे हद से ज्यादा अनुराग दिखाकर वे उन सबसे बदला लेना चाह रहे हो, जिन्होंने उन्हें सताया''।

मन में सवाल उठता है कि राधावल्लभ जी इस तरह का भी विचरण कैसे कर लेते हैं? जवाब भी आ ही जाता है कि जनोन्मुख बौद्धिक के लिए तो यह बेहद सहज स्वाभाविक विचरण है, इसमें अस्वाभाविक और असहज कहाँ?

काव्य को अन्योपदेश शैली में प्रतिशोध लेने और अपनी हेकड़ी और स्वाभिमान को लोक में दर्ज करने की इस पहल से कवि की जो अहम् सत्ता दर्ज होती है वह यहाँ अलक्ष्य नहीं है। कविता यहाँ स्वयं जैसे किसी ब्रह्मास्त्र से कम नहीं हो उठी हो। पर किसके विरुद्ध? क्यों ऐसी तमाम सत्ताओं के विरुद्ध नहीं ?

मेरी उनकी बन्धुता को आज तीन से अधिक दशक हो चुके हैं फिर भी हमारी यह रागदारी फीकी नहीं पड़ी है। हमारी स्वाधीनता और हमारी परस्परता का विचरण कुप्रभावित नहीं हुआ है। हमारे लगावों का रंग पहले से अधिक गाढ़ा हुआ है और हमारे विश्वासों की लौ पहले की तुलना में अधिक प्रखर और दीप्त हुई है। मैं तो शायद ही कभी स्वयं को किसी विद्या–विशेष का पंडित मान पाऊं पर वे तो बहुआयामी विद्याधर हैं। अपार क्षमताओं से भरे हुए। उनके काम का वजन और उसका भारी विस्तार देख चकित रह जाना पड़ता है। तब यही मान लेना ठीक जान पड़ता है कि उनमें कोई दैवी सामर्थ्य है। अन्यथा इतना सब उतने विधि–विधान से कैसे संभव होता। वे हमारे समय के विरले शब्द साधक हैं।

शब्द पर किसी का इतना भरोसा शब्द की सत्ता की एक और घोषणा ही है। डॉ. त्रिपाठी ने इसे जिन–जिन तरीकों से किया, जताया और जिन–जिन ठिकानों पर से इसे उठाया है वह आश्वस्त करता है कि जब तक राधावल्लभ जी जैसे आचार्य और कवि हैं, शब्द की यह सत्ता अक्षुण्ण बनी

रहेगी। ऐसे बन्धु, सखा और मित्र, कवि और आचार्य के प्रति मेरी शतशः शुभकामनाएँ।

पुनश्च–अपने बरसों के साहित्य बन्धु पर सोचते और कहते हुए मैं अपने प्रिय पाठकों को यह भी जरूर बताना चाहूँगा कि वे अकेले आदमी हैं जो मान्य संस्कृत होकर भी मुझ जैसे हिन्दी लेखक को अपनी सभाओं में ले जाते हैं। ले क्या जाते हैं बल्कि आग्रह और आदर सहित आमंत्रित किया करते हैं। एक दो बार मैंने पूछा भी कि वे ऐसा साहस क्यों करते है? उनका जवाब तैयार जैसा था–संस्कृतज्ञों को भी नयी सोच की जरूरत है। आप जैसों के आने–जाने से इस सोच में गति आएगी और भाषा का यह संवाद जातीय गतिशीलता के लिए शुभकार्य होगा, मालूम नहीं उनके इस सपने और उनके साथी पंडितों की सोच में सचमुच कितना इजाफा होता होगा पर हमारे बौद्धिक संगमन और साहचर्य में कुछ तो जरूर ऐसा घटित होता होगा। जिसे हमारे पुराने पुरखों ने अपनी कालजयी आकांक्षा के रूप में रेखांकित किया था–हमारे हृदय समान हों, हमारी बुद्धि में सत्संगीपन हो, हमारा जीना और रहना परस्परता के सौन्दर्य से भरपूर हो। हम दोनों पुरखों की इस दिव्य इच्छा के क्या समकालीन लघुसंस्करण नहीं हैं ?

भोपाल मध्यप्रदेश

राधावल्लभ त्रिपाठी और उनका रचना संसार

डॉ. रमाकान्त पाण्डेय

1. जन्म

राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म 15 फरवरी सन् 1949 (फाल्गुन कृष्ण पक्ष तृतीया, संवत् 2005 विक्रमी) को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी तथा श्रीमती गोकुल बाई के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। इनके पितामह का नाम पं. राम प्रसाद त्रिपाठी था। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्, कवि तथा समीक्षक थे। पिता की साहित्यिक अभिरूचि की प्रबल छाप शिशु राधावल्लभ पर पड़ी। डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी मध्यप्रदेश शासन के उच्चतर शिक्षा विभाग में (प्राध्यापक, संस्कृत) के रूप में कार्यरत रहते हुए सन् 1978 में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर से सेवानिवृत्त हुए।

शिशु राधावल्लभ की वय मात्र तीन वर्ष ही थी तभी माता का देहावसान हो गया। माता गोकुल बाई का असामयिक निधन तथा शासकीय सेवा में होने से पिता का बार–बार स्थानान्तरण शिशु राधावल्लभ के लिए कष्टकर थे। पिता के साथ रहते हुए भी बालक राधावल्लभ ने 6–7 साल की आयु से ही लेखन एवं अध्ययन को अपना अवलम्ब बनाया। उनकी वहसाधना विकसित होकर आज विशाल कल्पवृक्ष के रूप में सामने है।

2. शिक्षा

पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने ज्येष्ठ पुत्र हरिवल्लभ के साथ हो राधावल्लभ को भी विज्ञान एवं गणित आदि को शिक्षा की ओर अग्रसर किया। प्राथमिक शिक्षा के समय से ही राधावल्लभ अपनी प्रखर मेधा एवं अध्ययन प्रवणता के लिए विद्यालय एवं आस–पास के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गए थे। उन्होंने सन् 1965 में मध्यप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा (Higher Secondary) परीक्षा में विज्ञान विषय के साथ 82.70 प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रदेश में

प्रथम स्थान प्राप्त किया। विज्ञान एवं गणित में उनकी अप्रतिहत गति एवं अध्ययन के प्रति समर्पण को देखकर सभी लोग उनके वैज्ञानिक होने की कल्पना करते थे। पिता भी उन्हें इस ओर अग्रसर होते देख प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे किन्तु समुद्र की लहरें समुद्र की गोद में ही विश्राम लेती हैं, राजहंस अनन्त आकाश को नापकर ही शान्ति पाता है, चातक की प्यास समुद्र जल नहीं, स्वाति की बूँद ही मिटा पाती है। किशोर राधावल्लभ का मन विज्ञान एवं गणित विषयों के अध्ययन में नहीं रमा। भारतीय परम्परा की अनन्त एवं ममतामयी गोद के लिए आतुर उनका मन विज्ञान से विमुख हो कर संस्कृत अध्ययन के लिए उन्मुख हो उठा।

भारतीय विचार धारा विद्या का पूर्व जन्म का अर्जित आत्मस्थ कोश मानती है। राधावल्लभ त्रिपाठी इसके साक्षात् उदाहरण हैं। विज्ञान विषय का इतना उत्कृट ज्ञान उन्हें कालान्तर में महान् चिकित्सक या अभियन्ता बना सकता था। उनके बड़े भाई श्री हरिवल्लभ त्रिपाठी विज्ञान का अध्ययन कर प्रसिद्ध अभियन्ता बने तथा अनुज श्री ओम्प्रकाश त्रिपाठी विज्ञान विषय की पढ़ाई कर चिकित्सक के रूप में विख्यात हुए किन्तु राधावल्लभ को तब तक संस्कृत भाषा और उसके निहितार्थ का ज्ञान हो चुका था। उन्होंने बहुत छोटी उम्र में शाकुन्तल और कादम्बरी जैसे ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था, उनके रसपाक से पूर्णतः परिचित हो चुके थे, अतः स्नातक कक्षा में संस्कृत विषय लेकर महाराज महाविद्यालय, छतरपुर में अध्ययन प्रारम्भ किया और 1968 में 67.80 प्रतिशत अंक अर्जित कर विश्वविद्यालय की वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर उच्चातर एवं उच्चतम शिक्षा की लालसा से राधावल्लभ सागर आ गये। उस समय मध्यप्रदेश में सागर विश्वविद्यालय उच्चशिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। प्रो. रामजी उपाध्याय, डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य जैसे तत्कालीन विद्वानों के कारण अध्ययन एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा छात्रों के आकर्षण का केन्द्र थी। राधावल्लभ ने यहाँ एम.ए. (संस्कृत) में प्रवेश लेकर अध्ययन प्रारम्भ किया और 1970 में 82 प्रतिशत अंक अर्जित कर कला संकाय में प्रथम रहें उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से ही योगविज्ञान में डिप्लोमा (1970), जर्मन भाषा में प्रमाणपत्रोपाधि (1971) तथा सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से (1971) भाषाविज्ञान में प्रमाणपत्रोपधि प्राप्त की। उनका शैक्षिक विवरण निम्नवत् है –

1. माध्यमिकशिक्षा (higher Secondary) म.प्र. बोर्ड, 1965, (गणित, भौतिकशास्त्र एवं रसायन शास्त्र) 82.70 प्रतिशत अंकों के साथ वरीवता सूची में प्रथम स्थान।
2. उच्चमाध्यमिक (बी.ए. पूर्वार्द्ध), महराज महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय) 1966, 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान।
3. स्नातक (बी.ए.), महाराज महाविद्यालय, छतरपुर (सागर विश्वविद्यालय), 1968, 67.80 प्रतिशत अंकों के साथ विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान।
4. एम.ए. (संस्कृत), सागर विश्वविद्यालय, 1970,82 प्रतिशत अंको के साथ कला संकाय की वरीयता सूची में प्रथम स्थान।
5. योगविज्ञान (डिप्लोमा) सागर विश्वविद्यालय, 1970 प्रथम स्थान।
6. जर्मनभाषा (प्रमाणपत्र), सागर विश्वविद्यालय, 1971, प्रथम स्थान।
7. भाषा विज्ञान (प्रमाणपत्र), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1971।
8. पीएच.डी. (संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास), सागर विश्वविद्यालय, 1972 (निर्देशक–प्रो. रामजी उपाध्याय, शोधप्रबंध प्रकाशित एवं पुरस्कृत)
9. डी.लिट्. (Origin and Development of Theatre in Aneient Indi), सागर विश्वविद्यालय, 1981

इनके अतिरिक्त उन्होंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा तथा पूर्वमध्यमा (प्रथमखण्ड) परीक्षाएं भी उत्तीर्ण की।

3. गुरुपरम्परा

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की शिक्षा–दीक्षा का मुख्य श्रेय उनके पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी को ही है। उन्होंने शैशवकाल में ही इन्हें अमरकोश, तर्कसंग्रह आदि के साथ सम्पूर्ण गीता और अयोध्या काण्ड तक रामचरित मानस कण्ठस्थ करा दिया था। विभिन्न विद्यालयों के कार्यक्रमों में इन ग्रन्थों का पाठ सुना कर बालक राधावल्लभ ने अध्यापकों एवं श्रोताओं को आश्चर्यचकित किया। बड़े होने पर भी इन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा पिता के

संरक्षण एवं मार्गदर्शन में ही प्राप्त की। इस प्रकार इनके प्रमुख गुरू पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ही हैं। सागर आने पर डॉ. वनमाला भवालकर आदि अनेक विद्वानों से इन्होंने शिक्षा प्राप्त की और प्रो. राम जी उपाध्याय के निर्देशन में शोधकार्य सम्पन्न किया। प्रो. त्रिपाठी किसी भी पारम्परिक विद्यालय में नियमित रूप से छात्र नहीं रहे। पिता जी द्वारा छतरपुर में स्थापित संस्कृत विद्यालय में प्रथमा और पूर्वमध्यमा (प्रथमखण्ड) की पढ़ाई इन्होंने अवश्य की किन्तु विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान इन्होने सागर विश्वविद्यालय में कार्यरत रहते हुए 'आचार्य बच्चूलाल अवस्थी' से 'ज्ञान' प्राप्त किया।

प्रो. त्रिपाठी की ज्ञान पिपासा पहले से ही अनन्त रही है। इन्होंने काशी के शीर्षस्थ आचार्यो पं. बदरीनाथ शुक्ल, पं. रामप्रसाद त्रिपाठी तथा प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि को अपने विभाग में आमन्त्रित कर उनसे भी न्याय, व्याकरण, साहित्य और वेदान्त आदि के कुछ ग्रन्थों का अध्ययन किया। सागर के न्यायाचार्य पं. लक्ष्मीनारायण दुबे जी (काशी के सुप्रसिद्ध विरला संस्कृत महाविद्यालय के न्याय प्राध्यापक) से रामरूद्री और दिनकरी के साथ न्यायसिद्धान्त मुक्तावली आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। वास्तव में स्वाध्याय ही प्रो. त्रिपाठी की सबसे बड़ी गुरू परम्परा है।

4. पुस्तकों से प्रेम

प्रो. त्रिपाठी अपने व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे बड़ा योगदान पुस्तकों का मानते हैं। किसी भी नगर में रहते हुए उन्होंने वहाँ के पुस्तकालयों का भरपूर उपयोग किया। पिता जी के साथ रहते हुए कक्षा 6 में ही उन्होंने छतरपुर, जिला पुस्तकालय की सदस्यता ग्रहण की और वहाँ से लेकर हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। दृक् (11) में प्रकाशित साक्षात्कार में उन्होंने अपने व्यक्तित्व के निर्माण में पुस्तकों और छतरपुर जिला पुस्तकालय का सबसे बड़ा योगदान स्वीकार किया है। महाराज महाविद्यालय, छतरपुर के पुस्तकालय का सर्वाधिक उपयोग करने पर उन्हें उस महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य द्वारा पुस्तकृत किया गया। प्रो. त्रिपाठी जी इस पुरस्कार को अपने गौरवप्रसङ्गों में सबसे अधिक मूल्यवान् मानते हैं। (दृक् – 1 पृ. 7)।

प्रो. त्रिपाठी जी सन् 2002 में भारत सरकार द्वारा शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक में अतिथि– आचार्य नियुक्त किये गये थे। चर्चा के दौरान कभी उन्होंने बताया कि शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में

रखी संस्कृत पुस्तकों को देख कर मुझे ऐसा लगा मानी सभी पुस्तकें मुझे बुला रही हैं। उनका यह भाव वृक्षों के प्रति भी है। पुस्तकों का आमन्त्रण कोई तभी सुन सकता है, जब उनसे उसका तादात्म्य हो। प्रो. त्रिपाठी जी का निजी पुस्तकालय किसी सामान्य विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से अधिक समृद्ध है। आज भी त्रिपाठी जी जहाँ जाते है, वहाँ के पुस्तकालय को देखने अवश्य जाते हैं।

5. लेखन का प्रारम्भ

प्रो. त्रिपाठी जी का लेखन के प्रति समर्पण कक्षा दो से ही था। तब उनकी उम्र 6–7 साल ही रही होगी। अपनी लेखन प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए प्रो. त्रिपाठी जी स्वयं कहते हैं–

कक्षा दो में जब था, छह साल की उम्र रही होगी, तब हिन्दी में अपने बारे में संस्मरण जैसा कुछ लिखना शुरू किया.. अपने अकेलेपन को तोड़ने के लिये नितान्त अकेले हो कर लिखी हुई चीज.. जिसे मैं बहुत प्रयास करके सबसे छिपा कर रखता। याद आता है कि कक्षा छह में आने पर हिन्दी में एक पूरी कहानी लिखी थी... और जब बाण की कादम्बरी पढ़ी, तो कक्षा नौ में आते–आते 'कादम्बरी' की शैली में संस्कृत में गद्य लिखने का प्रयास किया, मुझे यह बात बड़ी रोचक लगती थी कि संस्कृत में कई–कई पंक्तियों का एक शब्द आप बना सकते है, भले ही समास बनाना मुझे आता न हो....। 1964 ई. के आसपास महामहोपाध्याय दामोदर सातवलेकर ने 'अमृतलता' त्रैमासिक पत्रिका शुरू की, वह घर में आती थी। मेरी जानकारी के अनुसार उस दशक में इतनी साफ सुथरी सुरूचिपूर्ण संस्कृत – पत्रिका और नहीं थी। पिताजी भी उसमें लिखते थे, मैंने उसमें '66 के आसपास अपनी दो रचनाएँ छपवाईं थी – एक कहानी' अविस्मरणीया स्मृतिः और दूसरी 'अभिनवा कादम्बरी'। दोनों गद्य–रचनाएं। दूसरी रचना अभी भी उल्लेखनीय लगती है, जिसमें बाण की कादम्बरी की पैरोडी करते हुए अपने समय की एक नवशिक्षिता युवती को नायिका बनाया गया था। इससे पन्द्रह सोलह की आयु में मैं जो लिख रहा था, उसका अनुमान हो सकता है। संस्कृत और हिन्दी दोनों में एक साथ मैं उस समय कहानियाँ लिख रहा था, हालाँकि हिन्दी में पहली कहानी काफी बाद में इलाहाबाद की 'नई कहानियाँ' पत्रिका में मार्च 1971 के अंक में छपी। लिखते समय यह बात कहीं मन की तह में अवश्य रहती थी कि जो लिख रहा हूँ, और जो लिख गया, उससे मैं अपने भीतर अपने आप को कुछ और

व्यवस्थित... पहले से कुछ और अच्छा, क्या बना पा रहा हूँ या बना पाया। अपने आप को समझने, सबल बनाने और अधिक माँजते जाने के लिये शब्द को साधने या रचने के अलावा और कोई तरीका उस समय भी मेरे पास नहीं था, अब भी नहीं है। रचना मुक्ति देती है। योगसाधना, ईश्वराराधन से मुक्ति होती है या नहीं, या मुझे विदित नहीं। पर रचना से होती है जिसे उपनिषदों में क्रममुक्ति कहा गया है। एक रचना जो पूरी हुई, वह मुक्ति के एक स्तर तक ले जाती है। फिर मुक्ति के अगले सोपान के लिये एक और रचना। हो सकता है कोई रचना नीचे लुढ़काने वाला सोपान भी बन जाये, पर मेरी समझ में मुक्ति वस्तुतः यही है, यह वास्तविकता है, बाकि जो ब्रह्मानन्द, कैवल्य आदि की बातें की जाती हैं, वह इसके सामने कपोलकल्पना लगता है। यह बात मैंने अपने 'अभिवन – काव्यालङ्कारसूत्रम्' में कहीं भी है। तो छह–सात साल की उम्र से लेकर अब तक पढ़ना और लिखना जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बना रहा है।

जब एम.ए. करने सागर आया, तो यहाँ के पुस्तकालय में 'संस्कृतप्रतिभा' देखने को मिली। उस समय मैंने संस्कृत–प्रतिभा में अभीप्सा शीर्षक पारम्परिक छन्द की कविता, 'अयि ग्रावन्' शीर्षक से मुक्त छन्द में लम्बी कविता और 'महाकविः कण्टकः शीर्षक से एक लम्बी हास्यकथा छपवाई थी। (दृक् – 11. पृ. 9–10)।

लेखन प्रो. त्रिपाठी जी का स्वभाव है। वे कहते हैं – 'न लिखता, यदि अपने बस की बात होती। साँस लेना तो नहीं रोका जा सकता, जीना बन्द नहीं किया जा सकता, यद्यपि जीवन जीना कष्टप्रद भी है। उसी तरह लिखना भी नहीं रोका गया, अतः लिखता गया (दृक् – 11, पृ. 13)।

प्रो. त्रिपाठी जी की यह लेखन प्रवृत्ति गद्य, पद्य, नाटक कथा उपाख्यान, उपन्यास, रागकाव्य, अलंकारशास्त्र आदि के रूप में तो प्रतिफलित हुई ही, समीक्षा और अनुसन्धान के क्षेत्र में भी उन्होंने विपुल लेखन किया। उनके ग्रन्थों की विशद सूची ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप में संलग्न है।

6. विवाह एवं सन्तति

राधावल्लभ त्रिपाठी का विवाह 27 मई सन् 1974 को सत्यवती जी के साथ सम्पन्न हुआ। सत्यवती का जन्म 04.08.1955 को राजगढ़ मध्यप्रदेश में हुआ था। इनके परिवार में माता–पिता, दो बहनें एवं भाई अरविन्द हैं। पिता श्री शिवदत्त भारद्वाज सेवा निवृत्त प्राचार्य हैं। जो वर्तमान में 'विश्वप्रेममंदिर'

आश्रम में अपनी आध्यात्मिक साधना में संलग्न हैं। आप अरविन्द व विवेकानन्द दर्शन के विख्यात विद्वान् हैं। माता श्रीमती गीता देवी का देहावसान हो चुका है। भाई डॉ. अरविन्द भारद्वाज ब्यावरा महाविद्यालय में फिजिक्स के प्रोफेसर हैं। सत्यवती के पिता एवं श्वशुर परस्पर गुरू भाई थे। इनका पूर्व परिचय ही इस विवाह सम्बन्ध का आधार बना। विवाह के समय सत्यवती की आयु 19 वर्ष थी। विवाह बन्धन में बंधकर वह सागर आ गईं, जहाँ आचार्य पण्डित बच्चूलाल अवस्थी, पं. भगीरथ प्रसाद मिश्र, प्रो. कान्ति कुमार जैन तथा त्रिलोचन जैसे विद्वानों से शिक्षा प्राप्त करने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ। सत्यवती ने विवाह के अनन्तर स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया तथा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं। तदनन्तर सागर विश्वविद्यालय से ही उन्होंने शोध ोपाधि अर्जित की।

डॉ. सत्यवती त्रिपाठी ने लगभग बीस वर्षों तक डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य किया। उन्होंने हिन्दी काव्यशास्त्र तथा काव्यों का विशेष अध्ययन कर अनेक पुस्तकों एवं शोधपत्रों का प्रकाशन कराया। वर्तमान में श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में हिन्दी का अध्यापन कर रही हैं। डॉ. सत्यवती त्रिपाठी ने पत्नी के रूप में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को सारस्वत साधना के उच्च शिखर तक पहुँचाने में भरपूर सहयोग किया।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी तथा डॉ. सत्यवती त्रिपाठी सागर विश्वविद्यालय परिसर में आदर्श दम्पती के रूप में जाने जाते हैं। समवयस्क मित्रों, गुरूजनों तथा प्रतिवेशियों के साथ उनके सम्बन्ध अतिमधुर रहे हैं।

आचार्य त्रिपाठी की ज्येष्ठ पुत्री प्रियंवदा का जन्म 1977 में हुआ। प्रियंवदा ने सागर से उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर इन्दौर से एम.बी.बी.एस उपाधि तथा लन्दन से एम.डी उपाधि प्राप्त की। प्रियंवदा का विवाह उज्जैन विश्वविद्यालय के आचार्य पुरूषोत्तम वशिष्ठ एवं आचार्य निषा वशिष्ठ के सुपुत्र प्रियंक से सम्पन्न हुआ। यह वर्तमान में अपने चिकित्सक पति डॉ. प्रियंक (एम.बी.बी.एस.एम्.डी) के साथ लन्दन में चिकित्सक हैं। प्रियंवदा के एक पुत्र है जिसका राम 'राधाव' (जन्म–30.04.2011) है।

द्वितीय पुत्री मालविका का जन्म 1980 में हुआ। मालविका ने भी प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा सागर से प्राप्त कर अहमदाबाद से बी.टेक्. उपाधि अर्जित की। इसका विवाह देश के सुप्रसिद्ध वालरोग विषेषज्ञ

डॉ. निखिल भट्टाचार्य तथा मनश्चिकित्सक डॉ. प्रतिभा भट्टाचार्य के सुपुत्र श्री सौरभ भट्टाचार्य (अमदावाद) से सम्पन्न हुआ श्री सौरभ भट्टाचार्य भी वहीं अभियंता के रूप में कार्यरत है।

तृतीय पुत्री चिन्मयी का जन्म 1985 में हुआ। चिन्नयी की प्राथमिक शिक्षा सागर में ही सम्पन्न हुई किन्तु सन् 2002 में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक, थाइलैंड में अतिथि–आचार्य के रूप में नियुक्त हो जाने के कारण चिन्मयी की कुछ शिक्षा बैंकाक में सम्पन्न हुई। इन्दौर से बी.कॉम.उपाधि प्राप्त करने के बाद चिन्मयी अमिटी विश्वविद्यालय से एम.बी.ए. उपाधि अर्जित की। यह वर्तमान में प्रबन्धक के रूप में कार्यरत हैं। चिन्मयी प्रबंधक विद्या में निपुण होने के साथ ही गायन में भी दक्ष हैं। उसके अनेक संगीत एलबम बन चुके हैं तथा अमेजोन इंटरनेशनल बुक्स से अंग्रेजी में एक मौलिक कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुकी है।

7. परिवार

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म साहित्यिक समृद्धि से ओतप्रोत परिवार में हुआ। इनके पितामह पं. रामप्रसाद त्रिपाठी जी राजगढ़ के राजदरबार में लेखपाल थे। पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी (फरवरी 1921–अप्रैल 1990) अपने समय के विख्यात विद्वान् एवं समीक्षक थे। संस्कृत में एम.ए. पीएच.डी. होने के साथ ही उन्होंने साहित्यरत्न एवं गीताविशारद उपाधियाँ भी प्राप्त की। उनके द्वारा लिखित संस्कृतसुबोधिनी, गोकुलगीताञ्जलि, श्रीहर्ष के रूपक तथा अभिनव सतसई जैसे ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

बाल्यकाल से, ही डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी जी की साहित्यिक अभिरूचि रचनात्मक रूप में प्रतिफलित हुई। हिन्दी तथा संस्कृत में कहानियाँ, कविताएँ तथा गद्यलेखन में निरंतर रहे। हिन्दी में इनकी पहली कहानी अपने समय की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका 'माधुरी' (1933) में प्रकाषित हुई तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान मध्य–भारत सन्देष आदि पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाषित होती रही। संस्कृत में अनेक कविताएँ अमृतलता तथा दूर्वा आदि अन्य पत्रिकाओं में प्रकाषित हुईं।

गीता, श्रीमद्भागवत तथा रामरक्षा और अरविन्ददर्शन से ये विषेष प्रभावित रहे और इसके आदर्शों को स्वयं चरितार्थ करते रहे। नरसिंहगढ़ में वर्षों तक गायत्री परिवार के कुशल संचालन तथा गायत्री मंदिर के निर्माण में अग्रणी भूमिका रही। छतरपुर में मानससम्मेलन, राजगढ़, में

गीतामानसपारायण समिति की स्थापना तथा संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन, कविगोष्ठियों तथा अन्यान्य सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के सूत्रधार रहे। गीता और रामचरितमानस पर मर्मज्ञ प्रवचनकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। स्वामी हरिओम् जी महाराज के शिष्यों में अग्रगण्य रहे। छतरपुर में संस्कृत परिषद् की संस्थापना और उसके तत्त्वाधान में संस्कृत पाठशाला का संचालन किया। नरसिंहपुर में संस्कृतप्रचारसमिति का गठन तथा संस्कृत परीक्षाओं का संचालन किया। संस्कृत कक्षाओं तथा संस्कृत शाला का निःशुल्क संचालन करते रहे।

पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी जी की संगीत, नाटक तथा विभिन्न ललित कलाओं में सक्रिय अभिरूचि रही। 1986 में इनका साहित्यक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में योगदान नरसिंहगढ़ में नागरिक अभिनन्दन किया गया।

डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन के साथ प्रयत्नों से स्वाध्यायी छात्र के रूप में इंटर, बी.ए. तथा एम. ए. सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और बी.ए. में आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। 1956 में शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर में प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा वही संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। शासकीय महाविद्यालय रीवा में रहते हुए 1978 में सेवानिवृत्त रहे।

पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी अपने तीनों पुत्रों हरिवल्लभ, राधावल्लभ, ओमप्रकाश एवं पुत्री रूक्मिणी के साथ प्रसन्न पूर्वक गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर रहे थे कि अकस्मात् पत्नी गोकुल बाई का निधन हो गया। शासकीय सेवा में बार–बार स्थानान्तरण के कारण अकेले गृहस्थ जीवन का निर्वाह न कर पाने तथा तीनों पुत्रों एवं पुत्री के लालन–पालन में अपने में असमर्थ पाकर उन्होंने श्रीमति शकुन्तला देवी से विवाह किया। श्रीमति शकुन्तला देवी से उन्हें 5 पुत्र प्राप्त हुए। जिनके नाम 1. श्री सत्यप्रकाश त्रिपाठी 2. श्री आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 3. श्री महेश त्रिपाठी 4. श्री प्रदीप त्रिपाठी 5. श्री बालकृष्ण त्रिपाठी है।

आचार्य हरिवल्लभ त्रिपाठी आचार्य राधावल्ल्भ त्रिपाठी के अग्रज हैं। आप मध्यप्रदेश में अभियन्ता के रूप में कार्य सम्पादन कर सेवा निवृत्त हैं। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुज श्री ओमप्रकाश त्रिपाठी मध्य प्रदेश के चिकित्सा विभाग से मुख्य चिकित्सक के रूप में सेवा निवृत्त है। इनके छोटे

भाई श्री आनन्द प्रकाश त्रिपाठी रेलवे विभाग में कार्यरत हैं। अन्य अनुज श्री सत्यप्रकाश त्रिपाठी, श्री महेश त्रिपाठी, श्री प्रदीप त्रिपाठी, एवं श्री बालकृष्ण त्रिपाठी पिता पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी के पदचिन्हों पर चलते हुए मध्यप्रदेश सरकार में अध्यापक की भूमिका निभा रहे हैं।

8. शिष्यसम्पत्

भारतीय परम्परा में द्विविध संततियों का उल्लेख है– रक्तसन्तति तथा विद्यासन्तति। प्रो. त्रिपाठी जी दोनों ही प्रकार की संततियों से परिपूर्ण हैं, उनके दोनों ही वंश पराकाष्ठा पर हैं। वैसे प्रो. त्रिपाठी शिष्यव्यक्ति पर विश्वास नहीं करते, उनके अनुसार समस्त अध्येता, जिनमें शिष्यत्व है, शिष्य हैं तथापि इस सीमा को अगर सागर और उदयपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागों तक सीमित करें तो अपने 40 वर्षों के सुदीर्घ अध्यापक साधना से उन्होंने कम से कम 50 ऐसे शिष्य दिए हैं, जो देववाणी की सेवा में संलग्न हैं। प्रो. हेमलता बोलिया तथा प्रो. हेमलता शाह (उदयपुर), प्रो. श्यामलाल (भरतपुर), प्रो, कुसुम भूरिया (सागर), प्रो. रामलखनपाण्डेय (लखनऊ), डॉ. गायत्री देव (टीकमगढ़, लखनऊ), प्रो. कृष्णा जैन (ग्वालियर), स्व. आशा. सर्वटे (सागर), डॉ. परमानन्द मिश्र (गुना), डॉ, ओम्प्रकाश राजपाली (अम्बाह), प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा (भोपाल), डॉ. रामरतन पाण्डेय (सेवानिृत्त बैंक मैनेजर, सागर) डॉ. वन्दना त्रिपाठी (उज्जैन), डॉ. नमिता अग्रवाल (अतर्रा), डॉ.देवेन्द्र गुरू (सागर), डॉ. रमाकान्तपाण्डेय, डॉ. भागिरथिनन्द (दिल्ली), डॉ. पूर्णचन्द उपाध्याय (भवानी मंडी) डॉ. कल्पना द्विवेदी (मैनपुरी), डॉ. वृजेन्द्र कुमार सिंहदेव (हरिद्वार), डॉ. अंजना पाठक (सागर), डॉ. धर्मेन्द्र सिंहदेव (भोपाल), डॉ. शर्मिला बागची (बड़ौदा), डॉ. नारायण दाश (कलकत्ता) आदि उनकी शिष्य परम्परा में है। ये सभी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर प्रतिष्ठित है। प्रो. त्रिपाठी जी के मार्गदर्शन में प्रायः 40 छात्रों ने शोधोपाधि (पीएच.डी.) प्राप्त की है। कुछ छात्र अभी शोधकार्य में संलग्न है। लगभग 25 छात्रों ने उनके मार्गदर्शन में एम.फिल. उपाधि प्राप्त की है। प्रो. त्रिपाठी ने अनेक विदेशी विश्वविद्यालय में भी अध्यापन किया है। विश्व में अनेक देशों में उनकी शिष्यसम्पत् विद्यमान है और संस्कृत विद्या के उत्थान में संलग्न हैं।

9. पदस्थापनाएँ एवं विदेश यात्राएँ

यू.जी.सी रिसर्च फैलो–संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 7.1.1970 से 17.07.1971

व्याख्याता– संस्कृत विभाग, श्री मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर 18.07.1971 से 03.12.1973

सहायक–आचार्य– संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 01.05.1973 से 31.12.1978

उपाचार्य– संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय (पूर्व नाम सागर विश्वविद्यालय), 01.01.1979 से 21.01.1983

आचार्य– संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय (पूर्वनाम सागर विश्वविद्याल), 22.04.1983 से 28–2–2014

प्रथमतः आचार्य की नियुक्ति उदयपुर विश्वविद्यालय में हुई किन्तु संस्कृत विभाग, सागर विश्वद्यिालय के तत्कालीन अध्यक्ष प्रो. राम जी उपाध्याय के आग्रह पर वह पुनः सागर चले आये। सागर विश्वद्यिालय की समग्र शैक्षणिक एवं प्राशसनिक व्यवस्था की संकल्पना में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। अपनी अभिनव संकल्पनाओं तथा देश विदेश से प्राप्त अनुभवों के आधार पर प्रो. त्रिपाठी ने सागर विश्वद्यालय को नई दिशा दी। उन्हें अनेक बार विदेशी विश्वविद्यालय में भी जाने का अवसर मिला। उनकी कतिपय विदेश यात्राएं अधोनिर्दिष्ट हैं–

(1) भारत–जर्मनी सांस्कृतिक योजना के तहत (अप्रैल से जून 1978) बर्लिन हुम्बोल्स विश्वविद्यालय (जर्मनी) के भारतीय विद्या विभाग में व्याख्यान।

(2) लीडेन में आयोजित सप्तम विश्वसंस्कृत सम्मेलन में शोधपत्र प्रस्तुति, 1987

(3) दक्षिण पूर्व ऐशियाई देशों द्वारा आयोजित अर्न्तराष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन में शोधपत्र प्रस्तुति एवं एक सत्र की अध्यक्षता, 2001

(4) संस्कृत अध्ययन केन्द्र, शिल्पकॉर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक में भारत सरकार द्वारा अतिथि–आचार्य के रूप में नियुक्ति 17.01. 2002 से 17.01.2005

(5) दक्षिण पूर्व एशियाई देशों द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के प्रतिनाध के रूप में शोधपत्र प्रस्तुति तथा एक सत्र की अध्यक्षता, 2005

(6) एटिनबर्ग में आयोजित विश्व संस्कृत सम्मेलन में 'संस्कृत कवि सम्मेलन' के अध्यक्ष एवं संयोजक मनोनीत किए गए। इस सम्मेलन में शोधपत्र भी प्रस्तुत किए, 2006

(7) महिडोल विश्वविद्यालय, बैंकाक में बौद्ध धर्म पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एक सत्र की अध्यक्षता तथा शोध पत्र प्रस्तुति नई, मई 2007

(8) क्योटो, जापान में आयोजित चौदविं विश्वसंस्कृत सम्मेलन में शोधपत्र प्रस्तुति एवं एक सत्र की अध्यक्षता।

(9) जर्मनी के हम्बर्ग नगर में आयोजित ई.सी.ए.एफ.ई. (Europea Conssocium of Asian Education Federation) के वार्षिक सम्मेलन में सहभागिता, 2011

(10) नेपाल संस्कृत विश्वद्यिालय में दीक्षान्तभाषण, 2011

(11) एस.एस.ई.ए.एस.आर सम्मेलन, भूटान में सहभागिता, शोधपत्र प्रस्तुति तथा एक सत्र की अध्यक्षता

(12) कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अतिथि–आचार्य के रूप में एक माह तक व्याख्यान, 2011

(13) भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) द्वारा जर्मनी के लीपजिंग में 27 से 29 सितम्बर, 2012 तक पंचतन्त्र पर आयोजित अन्ताराष्ट्रीय सम्मेलन के शैक्षणिक समन्वयक मनोनीत हुए। इस सम्मेलन में शोधपत्र भी प्रस्तुत किए।

10. प्रशासनिक पदों पर कार्य

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी लम्बे समय तक डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के वरिष्ठतम आचार्य रहे, अतः उन्हें अनेक बार विभिन्न प्रशासनिक एवं दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने का अवसर मिला। उनकी सक्रियता एवं वैदुष्य के कारण भी अनेक ऐसे दायित्व सौंपे गये जिससे विश्वद्यिालय लाभान्वित हुआ। उनके द्वारा निर्व्यूढ कतिपय महत्वपूर्ण शैक्षणिक एवं प्रशासनिक दाायित्व निम्न हैं–

अधिष्ठता– कलासंकाय, डॉ. हरीसिंहगौर विश्वद्यिालय, सागर, 1985–1987 तथा 1996–1998

अध्यक्ष– संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 01. 07.1980 से 15.01.2002 तथा जनवरी 2005 से जुलाई 2008, आचार्य त्रिपाठी को संस्कृत विभाग के अतिरिक्त पत्रकारिता, विभाग भाषाविज्ञान विभाग, दृश्य श्रव्य एवं प्रदर्शनकारी कला विभाग आदि का भी समय समय पर अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

कार्यपरिषद् की सदस्यता– डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय की कार्यपरिषद् की सदस्यता, 1985–1987 तथा 1995–1998

मध्यप्रदेश केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड की अध्यक्षता– मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड की लगभग 20 वर्षो तक अध्यक्षता।

अध्यक्ष– डॉ. हरीसिंह गौर विश्वद्यिालय के आन्तरिक गुणवत्ता एवं प्रत्यायन प्रकोष्ठ के अध्यक्ष। प्रो. त्रिपाठी के नेतृत्व में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय का राष्ट्रिय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद्, बैंगलौर द्वारा सफल मूल्यांकन एवं प्रत्यायन तथा उच्च ग्रेड की प्राप्ति।

कुलपति (प्रभारी)– डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के कुलपति पद का विभिन्न अवसरों पर प्रभार (लगभग 6 माह)

कुलपति– कुलपति राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली, 14.08.2008 से अगस्त 2013

कुलपति (अतिरिक्त प्रभार)– श्रीलाल बहादुर शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, 08.08.2012 से 07.01.2013

प्रो. त्रिपाठी की अध्यक्षता में संस्कृत विभाग की उपलब्धियाँ

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की अध्यक्षता में संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वद्यिालय, सागर, नाट्यशास्त्र एवं आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रमुख अध्ययन केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इस विभाग को इन दोनों विषयों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से विभिन्न शोधयोजनाएं प्राप्त हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विभागीय सहायता योजना (DRS) तथा विशेष सहायता योजना (SAP) के लिए इस विभाग को चुना गया। इस योजना के तहत संस्कृत विभाग के अन्तर्गत विशिष्ट नाट्यशास्त्र अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गई तथा उसके अन्तर्गत स्वतन्त्र पुस्तकालय की स्थापना की गई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा इस विभाग को अनेक शोध योजनाएं दी गयी जिन्हें प्रो. त्रिपाठी जी ने पूर्ण कर प्रकाशित

कराया। संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन की संगणीय प्रक्रिया में भी इस विभाग का अप्रतिम योगदान हे। प्रो. त्रिपाठी के निर्देशन में अनेक ग्रन्थों के डिजिटल संस्करण तैयार किये गये। इस विभाग से शताधिक छात्रों ने शोधोपाधि अर्जित की।

11.1 पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान

प्रो. त्रिपाठी जी संस्कृत, संस्कृतविभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से प्रकाशित 'सागरिका' संस्कृत की त्रैमासिक शोधपत्रिका के सम्पादन में सन् 1980 से अविरत रूप से संलग्न है। इनकी सम्पादन कुशलता को देखते हुए इन्हें विश्वविद्यालय की शोधपत्रिका 'मध्यभारती' का मुख्य सम्पादक (1994–2002) नियुक्त किया गया। अपने मुख्य सम्पादकत्व में प्रो. त्रिपाठी जी ने 'मध्यभारती' के अनेक अंकों का संपादन किया। दर्शन तथा विज्ञान एवं साहित्य तथा सौन्दर्य शास्त्र की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्पराओं के मध्य अन्तः संबंध को रेखांकित करने के लिए प्रो. त्रिपाठी जी ने पारम्परिक तथा आधुनिक विद्वानों के मध्य संवाद की योजना स्थापित कर इस पत्रिका में प्रकाशित किया जिससे अनुसंन्धान के नए क्षेत्रों का विकास हुआ।

इसी क्रम में प्रो.त्रिपाठी जी को मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी की सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'दूर्वा' के सम्पादन का भी दायित्व दिया गया। इस पत्रिका में उन्होंने समकालीन संस्कृत के साथ ही हिन्दी, अंग्रेजी आदि कवियों की रचनाओं को संस्कृत में प्रकाशित किया। दूर्वा के अनेक विशेषांक प्रकाशित कराये जिनमें विश्वकथा विशेष उल्लेखनीय है। सागरिका और दूर्वा दोनों ही पत्रिकाओं में सद्यः प्रकाशित ग्रन्थों पर प्रतिक्रिया प्रकाशित होती रहीं। प्रो. त्रिपाठी जी ने 1982 में नाटय्म पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जो उनके सम्पादन में अद्यावधि सतत प्रकाशित हो रही है। इस प्रक्रिया में भी उत्तररामचरित, अभिज्ञानशाकुन्तल, कुन्दमाला आदि विभिन्न नाटकों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

12. पुरस्कार एवं सम्मान

प्रो. त्रिपाठी जी को उनकी सारस्वतसाधना के लिये अनेक राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रिय पुरस्कारों से सभाजित किया जाता रहा है। जिनमें जनवरी 2013 तक प्राप्त कतिपय प्रमुख पुरस्कार निम्नलिखित है।

(1) 'संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास' नामक ग्रन्थ पर उ.प्र. संस्कृत अकादमी का पुरस्कार 1976।

(2) अखिलभारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन द्वारा उत्कृष्ट शोधपत्र लेखन हेतु पुरस्कार, 1978।

(3) 'वाल्मीकिविमर्शः'पर संस्कृत अकादमी पुरस्कार, 1979।

(4) कुन्दमाला संस्कृत नाटक के अनुवाद पर म.प्र. सांस्कृतिक परिषद राजषेखर पुरस्कार 1982।

(5) 'दमयन्ती' हिन्दी नाटक पर साहित्य कला परिषद् का पुरस्कार, 1989।

(6) 'कालिदास की समीक्षा परम्परा' पर अखिल भारतीय प्राच्य परिषद्, पूना द्वारा 1988–89 की सर्वश्रेष्ठ शोधकृति का पुरस्कार (हरिद्वार सत्र में सन् 1990 में प्रदत्त)

(7) भरटकद्वात्रिंशिका पर मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी का व्यास पुरस्कार, 1987।

(8) प्रो. पी.वी. काणे स्मृति स्वर्ण पदक, 1989।

(9) म.प्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'दमयन्ती' हिन्दी नाटक के लिये 'वागीश्वरी' पुरस्कार, 1990।

(10) 'लहरीदशकम्' पर उ.प्र. का कालिदास पुरस्कार, 1991।

(11) म.प्र. संस्कृत अकादमी का भोज पुरस्कार–1992।

(12) कलकत्ता हिन्दी अकादमी का 'कम्बन्' सम्मान।

(13) 'सन्धानम्' काव्यसंग्रह के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1994।

(14) कनाडा का रामकृष्ण संस्कृत पुरस्कार, 1998।

(15) म.प्र. कालिदास पुरस्कार,1999।

(16) नाट्यशास्त्र-विश्वकोश पर शंकर पुरस्कार, 2000।

(17) म.प्र. कालिदास पुरस्कार, 2002।

(18) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'महामहोपाध्याय'सम्मान, 2006।

(19) नाट्यायन, ग्वालियर का 'भवभूति'सम्मान, 2006।

(20) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अखिलभारतीय

'वेदव्यास'सम्मान, 2006 (सम्मान पत्र 2009 में प्रदत्त)।

(21) 'नारायण शास्त्री कांकर' सम्मान, जयपुर, 2007।

(22) मध्यप्रदेश संस्कृत बोर्ड का 'संस्कृत गौरव' सम्मान, 2007।

(23) दिल्ली शिक्षा ग्राम खेल विकास संघ एवं हल्थ युनिवर्स फाउण्डेशन द्वारा 'राधाकृष्ण स्मृति' सम्मान 2008।

(24) पूर्वांचल संस्कृत प्रचार परिषद्, कलकत्ता का 'विद्यालंकार' सम्मान।

(25) लोकसभा प्रचार समिति का 'जयदेव सरस्वती'सम्मान, 2009।

(26) कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, नागपुर का 'कालिदास जीवन व्रती' राष्ट्रीय सम्मान, 2009।

(27) कांची शंकराचार्य द्वारा 'संस्कृत शिरोमणि' सम्मान, 2009।

(28) हेल्पफुल सोसायटी द्वारा 'राजीव गान्धी सद्भावना' सम्मान, 2009।

(29) स्वामी जयेन्द्र सरस्वती द्वारा 'विशेष अवतार महोत्सव' सम्मान।

(30) डेक्कन कॉलेज, पूना द्वारा मानद 'डी.लिट.' उपाधि, 2010।

(31) महाराष्ट्र सरकार का 'जीवन व्रती' संस्कृत सम्मान,2010।

(32) कुज्जनी राजा ट्रस्ट का 'राजप्रभा' पुरस्कार, 2010।

(33) देववाणी परिषद्, नई दिल्ली का 'पण्डितराज जगन्नाथ' सम्मान, 2011।

(34) 'आचार्य श्री सुमति सागर सुत संवर्धन पुरस्कार',सुतसंवर्धन समिति,2011

(35) 'मीरा' सम्मान, मीरा फाउन्डेशन, इलाहाबाद, 2012

(36) 'कुन्दकुद' सम्मान, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, 2012

13. प्रो. त्रिपाठी जी द्वारा पूर्ण की गयी शोधयोजनाएं

प्रो. त्रिपाठी जी ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विभिन्न शोधयोजनाओं को पूर्ण किया। इनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित नाट्यशास्त्रविश्वकोश का चार भागों में प्रकाशन हो चुका है। नाट्यशास्त्रीय विषयों की वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जानकारी देने वाला यह एकमात्र कोश है। प्रो. त्रिपाठी जी ने इस कोश में विश्व के अनेक देशों की नाट्यपरम्पराओं,

नाट्यसिद्धान्तों और रंगमंचों का विस्तृत विवेचन किया है। अनेक पाश्चात्य नाट्यसिद्धान्तों से भारतीय नाट्यसिद्धान्तों का तुलनात्मक परिशीलन इस कोश की अपनी विशेषता है। भरत से लगाकर परवर्ती आचार्यों तक के विभिन्न विषयों में मत मतान्तर यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। अकरादि क्रम से नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों से सम्बद्ध शोधयोजना को पूर्ण कर प्रो. त्रिपाठी जी ने इसे भी प्रकाशित कराया है। 'संस्कृत नाटक और लोकरंगमंच' शोधयोजना भी पूरी की जा चुकी है तथा इसका भी प्रकाशन हो चुका है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक में थाई–संस्कृत कोश योजना का श्रीगणेश किया। इस कोश में लगभग 3000 थाई शब्दों का थाई लिपि में अर्थ देने तथा उनकी संस्कृत मूलकता दिखाने की योजना है। यह कोश संस्कृत विद्वानों को थाई भाषा समझने में सहयोगी सिद्ध होगा। इससे भाषा वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक अन्तःसम्बन्ध समझने में भी सहायता मिलेगी।

प्रो. त्रिपाठी जी ने बैंकाक में रहते हुए अन्य अनेक शोधयोजनाओं को भी प्रारम्भ किया है जिन पर कार्य चल रहा है।

14. प्रो. त्रिपाठी के साहित्यिक अवदान पर प्रकाशित पत्रिकाओं के विशेषांक

आचार्च राधावल्लभ के व्यक्तित्व एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य की समीक्षा हेतु ज्ञानायनी (5.2–3 जुलाई–दिसम्बर, 2007) का विशेषांक प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक में प्रो. त्रिपाठी की साहित्यिक उपलब्धियों पर देश के अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित है। प्राच्यभारती (जनवरी–मार्च, 2009) पत्रिका का विशेषांक भी प्रो. त्रिपाठी जी की साहित्यिक सेवा के लिए समर्पित किया गया। सरस्वती प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर की 'सरस्वतीसौरभम्' नामक पत्रिका का (अगस्त, 2011) अंक भी प्रो. त्रिपाठी की समीक्षा में निकाला गया। इस संस्थान ने प्रो. त्रिपाठी जी के 'अन्यच्च' उपन्यास पर परिसंवाद का आयोजन कर उसमें प्रस्तुत लेखों का प्रकाशन किया।

15. पत्रिकाओं में प्रकाशित साक्षात्कार

बैंकाक से प्रकाशित 'समर' पत्रिका में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का साक्षात्कार (अंक 34, 2003) प्रकाशित हुआ। इसमें प्रो. त्रिपाठी जी द्वारा संस्कृत अध्ययन केन्द्र, शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकॉक में किये गये कार्यों तथा उनकी योजनओं का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।

प्रसिद्ध हिन्दी समीक्षा पत्रिका दृक् (11) में भी प्रो. त्रिपाठी जी का विस्तृत साक्षात्कार प्रकाशित हुआ जिसे डॉ. हर्षदेव माधव ने 'हस्ताक्षर और साक्षात्कार' नाम से पुनः प्रस्तुत किया।

16. प्रख्या ग्रन्थमाला

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अप्रकाशित एवं दुर्लभ लघुग्रन्थों के प्रकाशनार्थ प्रख्या ग्रन्थमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस ग्रन्थमाला मे घटकर्परकाव्य, प्रेमसम्पुटम्, मदनप्रबोधिनी, रप्रत्याहारखण्डन, प्रत्याहारमण्डन, शास्त्रार्थविचार–पद्धति, निरंकुशतानिराकृति, मदनसंजीवन भाण आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये गये। 'मञ्जुनाथगद्यगौरवम्' नाम से प्रख्या का विशेष अंक प्रकाशित किया गया जिसमें भट्ट मथुरानाथशास्त्री की दुर्लभ गद्यकृतियों का प्रकाशन हुआ। इस अंक में भट्ट जी की कतिपय ऐसी कथाओं का प्रकाशन हुआ जो साहित्यिक दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण थीं किन्तु उनका प्रकाशन पहले नहीं हो पाया था। भक्तिभावनो भगवान्, आदर्शरमणी, मोगलसाम्राज्यसूत्रधारो महाराजो मानसिंहः, शास्त्रपाणिः क्षत्रियाणी आदि रचनाएं इस अंक में प्रकाशित हुई।

17. प्रो. त्रिपाठी जी द्वारा संस्कृत में अनूदित कृतियाँ

प्रो. त्रिपाठी जी ने मैथिलीशरण गुप्त के पंचवटी काव्य का संस्कृत में समच्छन्दोऽनुवाद प्रस्तुत किया है। उन्होंने रुमी कवि के कतिपय पद्यों एवं कथाओं का रूमीरहस्यम् तथा रुमीञ्चदशी नाम से अनुवाद प्रकाशित कराया, त्रिपाठी जी द्वारा कपिलसिब्बल (पूर्व मानव संसाधन विका मंत्री, भारतसरकार) के अंग्रेजी काव्यसंग्रह, "I witness partial observations" का 'अहम् ईक्षे आंशिकानि पर्यवेक्षितानि' नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया गया। इस ग्रन्थ का लोकार्पण अक्टूबर, 2012 में स्वयं कपिलसिब्बल जी के द्वारा किया गया। कपिल सिब्बल जी की मूल कविता बिल्कुल नये परिप्रेक्ष्य में रची गयी है। इस काव्यसंग्रह की भावभूमि भारतीयभावभूमि से एकदम अलग है। काव्यविषय भी पूर्णतः नया और पाश्चात्य संस्कृति से ओत–प्रोत है, तथापि त्रिपाठी जी ने अतिनिपुणता के साथ इसका अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस अनुवाद के लिए अनुवादक ने जो शब्दराशि गढ़ी है वह संस्कृत भाषा के सामर्थ्य और संस्कृत शब्दों की अर्थ सम्प्रेषणीयता का निदर्शन है। त्रिपाठी जी का अनुवाद मूल कथ्य के सम्प्रेषण में पूर्णतः समर्थ और सफल है। अनुवादक की भूमिका के त्रिस्तरीय परिवेश को आत्मात् कर त्रिपाठी जी उसे उचित भावबोध के साथ प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं।

प्रो. त्रिपाठी द्वारा बनारसीदास की आत्मकथा का 'अर्धकथानकम्' नाम से अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत भारती, नई दिल्ली (2013) से प्रकाशित है। बच्चन जी की मधुशाला का भी समच्छन्दोऽअुवाद' उनके द्वारा किया गया हैं।

प्रो. त्रिपाठी जी ने डॉ. गोविन्द द्विवेदी आदि कवियों की कतिपय रचनाओं का भी संस्कृत में अनुवाद किया है। इनका प्रकाशन दूर्वा के 'वातायन' स्तम्भ के अन्तर्गत अनेक अंकों में किया गया। उनके द्वारा किए गये कुछ कथाओं के अनुवाद भी प्रकाशित है।

18. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की कृतियों पर शोधकार्य

प्रो. त्रिपाठी जी की अनेक कृतियों पर विश्वविद्यालयों में शोधकार्य प्रगति पर है। हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला से प्रो. राजेन्द्र मिश्र के निर्देशन में उनके 'तण्डुलप्रस्थीयम्' प्रकरण पर डॉ. बलवन्त कुमार शर्मा ने शोधोपाधि (पी.एच.डी.) प्राप्त की है। यह शोधकार्य ग्रन्थरूप में अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद से (2012) प्रकाशित भी हो चुका है।

संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविधालय, सागर से श्री विष्णु प्रसाद मीणा ने 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र' पर प्रो. कुसुम भूरिया के निर्देशन में शोधोपाधि (पीएच.डी.) अर्जित की है। काषी हिन्दु विष्वविद्यालय, वाराणसी राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, सरदार वल्लभभाई पटेल विश्वविद्यालय, वल्लनगर, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, गढ़वाल विश्वविद्यालय, नैनीताल तथा महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक आदि में अनेक शोधच्छात्र पी.एच.डी. उपाधि हेतु उनके साहित्य पर कार्य कर रहे हैं।

प्रो. त्रिपाठी जी के काव्यग्रन्थों, अनूदित ग्रन्थों तथा शास्त्रीय ग्रन्थों की समीक्षा प्रो. नामवरसिंह, श्री अशोक वाजपेयी, प्रो. विजयबहादुर सिंह, प्रो. राजेन्द्रमिश्र, श्री अष्टभुजा शुक्ल, डॉ. बजरंग विहारी तिवारी, प्रो. पुष्पा दीक्षित आदि जैसे मूर्धन्य विचारकों द्वारा की गयी है। 'राधावल्लभ की समीक्षा परम्परा' शीर्षक से इनकी समीक्षाओं का संकलन ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली से प्रकाशित है।

19. विभिन्न संस्थाओं की स्थापना

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास एवं सातत्य के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने इन गतिविधिओं के विकास हेतु विभिन्न संस्थाओं, अध्ययन केन्द्रों एवं परिषदों की स्थापना की। उनके द्वारा

स्थापित कतिपय प्रमुख संस्थाओं का परिचय इस प्रकार है–

1. नाट्यपरिषद् – संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 1982 में उक्त परिषद् की स्थापना की गयी। इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य पारम्परिक संस्कृत रंगमंच का विकास रहा है। इस परिषद् से प्रो. त्रिपाठी के सम्पादकत्व में 'नाट्यम्' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है।

2. नाट्यशास्त्र अध्ययनकेन्द्र – प्रो. त्रिपाठी ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विभागीय सहायता योजना (DRS) तथा विशेष सहायता योजना (SAP) के अन्तर्गत संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र अध्ययन केन्द्र की स्थापना की। इस केन्द्र का पृथक् भवन निर्माण करा कर उन्होंने इसके अन्तर्गत स्वतन्त्र पुस्तकालय की भी स्थापना की।

3. पाण्डुलिपिसंग्रहालय – डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अन्तर्गत पाण्डुलिपि संग्रहालय की स्थापना कर त्रिपाठी जी ने इसमें हजारों दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रह कराया।

4. इलेक्ट्रानिक पुस्तकालय – डॉ. हरीसिंह गौर इलेक्ट्रानिक संस्कृत पुस्तकालय प्रो. त्रिपाठी जी की दूरदर्शिता का परिणय है। इस पुस्तकालय में भी शताधिक ग्रन्थ सन्निविष्ट किये जा चुके हैं।

5. मुक्तस्वाध्यायपीठ – संस्कृत में दूरस्थ शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार हेतु नई दिल्ली स्थित राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान् मुख्यालय में मुक्तस्वाध्यायपीठ की स्थापना की गई। संस्थान् के समस्त परिसरों में मुक्तस्वाध्यायपीठ के स्वाध्याय केन्द्र हैं। इस पीठ द्वारा व्याकरण, साहित्य एवं ज्योतिष् विषय में प्राक्शास्त्री से आचार्य तक के पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। समस्त कक्षाओं में सेतु पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था है जिससे चिकित्सा, अभियान्त्रिकी तथ वाणिज्य आदि विषयों का अध्ययन कर के आये छात्र भी संस्कृत अध्ययन से लाभान्वित हो रहे हैं।

6. पालि–प्राकृत अनुसंधान केन्द्र– पालि एवं प्राकृत वाङ्मय के अनुशीलन एवं अनुसंधान हेतु संस्थान मुख्यालय में पालि–प्राकृत अनुसंधान केन्द्र स्वतंत्र रूप से स्थापित हैं। इन केन्दों द्वारा अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन तथ विभिन्न विषयों पर राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर विद्वत्संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है।

7. नाट्यशास्त्रानुसंधानकेन्द्र – नाट्य परम्परा हेतु तथा नाट्यशास्त्र में निहित विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसन्धानार्थ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर में नाट्यशास्त्रानुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गई है। उक्त केन्द्र द्वारा उत्तररामचरित आदि नाटकों की राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुति की गई है।

8. महिला अध्ययन केन्द्र – राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान के वेदव्यास परिसर में महिला अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गयी गई है।

9. व्यावसायिक अध्ययन केन्द्र – राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान के मुम्बई परिसर में व्यावसायिक अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गई है।

10. शास्त्रानुशीलनकेन्द्र – राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान के शृंगेरी स्थित राजीव गांधी परिसर में शास्त्रानुशीलन केन्द्र की स्थापना की गयी है।

प्रो. त्रिपाठी जी विभिन्न प्रदेशों में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के अनेक परिसरों के उद्‌घाटन के लिए भी प्रयत्नशील हैं। अगरतला और तंजौर में दो परिसरों के शीघ्र खुलने की संभावना है।

प्रो. त्रिपाठी जी द्वारा प्रवर्तित महोत्सव एवं सम्मेलन

1. युवमहोत्सव – प्रो. त्रिपाठी ने राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान् के कुलपति का पदभार ग्रहण करने के बाद संस्कृत छात्रों के सर्वतो मुखी विकास के लिए युवमहोत्सव का प्रारम्भ किया। जिसका आयोजन प्रतिवर्ष राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के किसी न किसी परिसर में किया जाता है।

2. अखिलभारतीय नाट्यमहोत्सव – त्रिपाठी जी ने 'अखिल भारतीय नाट्यमहोत्सव' का आयोजन भी प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत नाट्यशास्त्र पर अधिकारी विद्वानों के व्याख्यान कराए जाते हैं तथा सुप्रसिद्ध निर्देशकों एवं अभिनेताओं की नाट्य प्रस्तुतियाँ करायी जाती हैं। अखिल भारतीय नाट्यमहोत्सव के लगभग पाँच सत्रों का आयोजन हो चुका है।इसके अन्तर्गत कवल्लं नारायण पणिकर जैसे ऊँचे दर्जे के नाट्य निर्देशकों की प्रस्तुतियाँ करायी गयी हैं।

3. कौमुदी महोत्सव का परिष्कार – राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में वसन्तोत्सव या कौमुदीमहोत्सव नाम से अन्तः परिसरीय नाट्यस्पर्धात्मक महोत्सव का आयोजन त्रिपाठी जी के आने के पहले से ही चल रहा था। उन्होंने अपने कार्यकाल में इस उत्सव को परिष्कृत कर नाटकों की विभिन्न

श्रृंखलाओं में प्रस्तुति का निर्देश दिया जिससे भास के समग्र नाटकों की श्रृंखला प्रस्तुत हो सकी। इसी प्रकार रामकथाश्रितनाटक, तथा सामाजिक नाटकों की श्रृंखला भी प्रस्तुत की गयी। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के विक्रय विभाग में इन सभी नाटकों की सी.डी. विक्रय हेतु उपलब्ध है।

4. पूर्वोत्तर राज्यों में संस्कृत सम्मेलन – प्रो. त्रिपाठी जी ने देश की एकता और अखण्डता में संस्कृत की भूमिका को रेखांकित करने के लिए पूर्वोत्तर राज्यों में संस्कृत सम्मेलनों का आयोजन प्रारम्भ कराया। गंगटोक (सिक्किम), सिलचर (आसाम), दीमापुर (नागालैंड), शिलांग (मेघालय) तथा गुवाहाटी (आसाम) आदि में इन सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है। पूर्वोत्तर राज्यों में आयोजित इन सम्मेलनों में प्रस्तुत शोधपत्रों का एक संग्रह भी संस्थान द्वारा प्रकाशित किया गया है।

प्रो. त्रिपाठी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान को 'ए' ग्रेड प्रदान किया। उन्होंने जनवरी, 2012 में नई दिल्ली में विश्व संस्कृत सम्मेलन का आयोजन किया जिसका उद्घाटन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने किया।

20. प्रो. त्रिपाठी द्वारा स्थापित व्याख्यानमालाएं

प्रो. त्रिपाठी जी ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में विभिन्न व्याख्यान मालाओं का शुभारम्भ किया। इस व्याख्यान माला के अन्तर्गत डॉ. राध ाकृष्णन् स्मृति व्याख्यान, पं. मण्डन मिश्र स्मृति व्याख्यान, म.प्र. पं. गोपीनाथ कविराज स्मृति व्याख्यान, पं. गौरीनाथ शास्त्री स्मृति व्याख्यान, प्रो.वी. राघवन् स्मृति व्याख्यान, पं. कुरियाक्कोस् स्मृति व्याख्यान, डॉ. भीमराव अम्बेडकर स्मृति व्याख्यान, पं. हीरा लाल जैन स्मृति व्याख्यान तथा श्री राजीव गाधी अन्तर्राष्ट्रीय स्मृति व्याख्यान प्रमुख हैं। प्रतिवर्ष इन व्याख्यान मालाओं का आयोजन संस्थान के किसी परिसर अथवा अन्य संस्था में किया जाता है।

श्री राजीव गांधी अन्तर्राष्ट्रीय स्मृति व्याख्यान राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के श्री राजीव गांधी परिसर, श्रृंगेरी में किया जाता है।

21. राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठियों एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का आयोजन

प्रो. त्रिपाठी जी ने सागर एवं दिल्ली में रहते हुए अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्सम्मेलनों का आयोजन कराया। जिनमें कुछ प्रमुख हैं–

1. न्यादर्शन पर अखिल भारतीय कार्यशाला, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 24.09.1982 से 24.10.1982 (परिसंवाद पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
2. संस्कृत साहित्य के विकास में इस्लाम परम्परा का योगदान (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 20.09.1984 से 22.09.1984 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र पर अखिल भारतीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, 16.09.1986 से 19.09. 1986 (शोध पत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
4. पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के संस्कृत शिक्षकों हेतु) 11.07.1987 से 31.07.1987।
5. राष्ट्रीय एकता में संस्कृत का अवदान (अखिलभारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 18.01. 1988 से 21.01.1988 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
6. आधुनिक संस्कृत साहित्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 05.12.1981 से 07.12. 1981।
7. संस्कृत में भाषा विज्ञान परम्परा, अखिल भारतीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 08.10. 1990 से 10.10.1990 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
8. संस्कृत शास्त्र परम्परा का पुनर्व्यवस्थापन, अखिल भारतीय संगोष्ठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 09.01.1994 से 11.01.1994 (शोध पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
9. बीसवीं शताब्दी का संस्कृत रंगमंच (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 23.02. 1996 से 24.02.1996 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।
10. संस्कृत काव्यशास्त्र में अभिनव चिन्तन, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 25.03. 1996 से 27.03.1996।

11. भारतीय शास्त्र परम्परा के वैदिक मूलाधार, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 06.09.1996 से 08.09.1996 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।

12. भारतीय शास्त्र परम्परा में पथ परिर्वतन, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 19.03.1997 से 21.03.1997 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।

13. संस्कृत साहित्य में वैदिक प्रभाव, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, दिसम्बर, 1997।

14. वेद एवं इतिहास पुराण का अन्तः सम्बन्ध, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1999।

15. नाट्यशास्त्र, संस्कृत नाटक और विश्व रंगमंच, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 05.01.2000 से 06.01.2000 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।

16. आत्मतत्त्व विवेक सत्र (कार्यशाला), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 06.02.2000 से 29.02.2000।

17. आधुनिक संस्कृत साहित्य, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 25.07.2000 से 27.07.2000 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।

18. वैदिक विश्व और आधुनिक विज्ञान, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 17.10.2000 से 18.10.2000।

19. बीसवीं शताब्दी की शास्त्र परम्परा, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 01.03.2001 से 02.03.2001।

20. भारतीय रंगमंच की संस्कृत नाटक और लोक नाट्य परम्पराएं, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर

विश्वविद्यालय, सागर, 02.01.2005 से 03.01.2005।

21. भारतीय परम्परा में निगम और आगम का अन्तःसम्बन्ध, (अखिल भारतीय संगोष्ठी), संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 01.02.2007 से 03.02.2007 (शोधपत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित)।

22. पालि साहित्य में प्रतिबिम्बित बौद्ध परम्परा के वैश्विक संदेश, (अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी) राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2008।

23. भारतीय परम्परा में बहुलता और विविधता – प्राकृत साहित्य के संदर्भ में, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, 2009।

22. विश्वसंस्कृतसम्मेलन

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने जनवरी, 2012 में पन्द्रहवें विश्वसंस्कृत सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने किया। इसमें भारत के अतिरिक्त विश्व के 32 देशों से आये विदेशी विद्वानों ने भाग लिया। सम्मेलन में प्रस्तुत शोधपत्रों का प्रकाशन कार्य प्रगति पर है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी को देश एवं विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनेक शास्त्रीय एवं आधुनिक विषयों पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया जाता रहा है। प्रो. त्रिपाठी जी ने अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में उद्घाटन भाषण भी दिए। अनेक विश्वविद्यालयों में उनके द्वारा दिये गए व्याख्यानों का ग्रन्थ रूप में प्रकाशन भी हुआ है। पूना विश्वविद्यालय में नाट्यशास्त्र पर उनके द्वारा दिये गये व्याख्यान का संग्रह लेक्चर्स ऑन नाट्यशास्त्र (1991) प्रकाशित है। उन्होंने शिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय, बैंकाक में तीन वर्षों तक अतिथि प्राध्यापक के रूप में कार्य किया तथा विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिए। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भी उन्हें अतिथि प्राध्यापक के रूप में आमन्त्रित किया गया जहाँ उन्होंने एक माह तक व्याख्यान दिया। जर्मनी के हुम्बोलस विश्वविद्यालय में भी वे अतिथि – आचार्य रहे और व्याख्यान दिए।

जवाहलाल नेहरू विश्वविद्यालय, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, पाण्डुलिपि मिशन तथा अन्य प्रमुख संस्थाओ में समय–समय पर उनके व्याख्यान आयोजित किये जाते रहे हैं।

23. प्रकाशन योजना का प्रवर्तन

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला का प्रवर्तन किया जिसमें मञ्जुनाथ ग्रन्थावली, रतिनाथ झा ग्रन्थावली, गजाननशास्त्री करमलकर ग्रन्थावली जैसे ग्रन्थों के साथ अनेक आधुनिक कवियों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। अनेक ग्रन्थावलियाँ और रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

उनके द्वारा प्रवर्तित शास्त्रीय ग्रन्थमाला के अन्तर्गत व्युत्पत्तिवाद (आदर्श टीका सहित), परिभाषेन्दुशेखर (हर्षनाथ मिश्र की टीका के साथ) इत्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों की प्रकाशन प्रक्रिया प्रगति पर है।

प्रो. त्रिपाठी जी ने अतिविशिष्ट ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ 'गौरव ग्रन्थमाला' का प्रवर्तन किया जिसमें म.प्र. गंगाधर शास्त्री के अलिविलासिसंलाप (विद्यावतीसुत रमाकान्त की गङ्गा टीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ) का नास्तिकदर्शनात्मक प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है। द्वितीय भाग शीघ्र प्रकाश्य है।

प्रो. त्रिपाठी जी ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में ई–टेक्स्ट योजना का भी शुभारम्भ किया। इस योजना के अन्तर्गत लगभग 300 संस्कृत ग्रन्थों को ई–टेक्स्ट के रूप में संस्थान की वेबसाईट पर प्रकाशन किया गया है। इसी क्रम में प्रो. त्रिपाठी जी ने 'आधुनिकसंस्कृतसाहित्य' योजना का शुभारम्भ किया इस योजना के अन्तर्गत सन् 1850 से अब तक की संस्कृत रचनाओं का ई–संस्करण संस्थान की वेबसाईट में उपलब्ध कराने हेतु प्रयास चल रहा है। लगभग 50 ग्रंथों का सन्निवेश किया जा चुका है।

24. प्रो. त्रिपाठी जी के निर्देशन में सम्पन्न शोध कार्य

प्रो. त्रिपाठी जी के निर्देशन में अब तक लगभग 40 छात्रों को शोधोपाधि प्राप्त हो चुकी है। इसकी यथोपलब्ध सूची इस ग्रन्थ में संलग्न है। वर्तमान में भी कतिपय शोधच्छात्र उनके निर्देशन में शोधकार्य कर रहे हैं। लगभग 25 छात्रों ने उनके निर्देशन में एम.फिल. उपाधि प्राप्त की है।

25. प्रो. त्रिपाठी के निर्देशन मे नाट्य प्रस्तुतियाँ

प्रो. त्रिपाठी जी की अभिरुचि केवल अध्ययन एवं अध्यापन में नहीं रही। उन्होंने नाटक एवं संगीत के क्षेत्र में भी उत्कृष्ट योगदान दिया।

नाट्यपरिषद्, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत अनेक नाटकों का निर्देशन करने के साथ ही उन्होंने कतिपय नाटकों में अभिनय भी किया। उनके द्वारा निर्देशित वेणी संहार नाटक का आकाशवाणी छतरपुर से प्रसारण हुआ। उनके निर्देशन में राजशेखर समारोह, जबलपुर में राजशेखर के 'बालभारतम्' की प्रस्तुति हुई। उनके द्वारा निर्देशित भगवदज्जुकम्, मध्यमव्यायोग, प्रबुद्धरौहिणेय, अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र आदि नाटक विद्वानों द्वारा सराहे गये।

प्रो. त्रिपाठी जी ने संस्कृत नाटकों एवं लोकनाट्यों के अन्तःसम्बन्धों को परिभाषित किया तथा इस क्षेत्र में विभिन्न शोधयोजनाओं को पूर्ण किया। नाट्यशास्त्र, लोकनाट्य तथा नाटकों पर अनेक राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन किया।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
नई दिल्ली

तोते के मुख से नारी–संघर्ष की कथा–अभिनवशुकसारिका

प्रो. कुसुम भूरिया दत्ता

तोता–मैना के माध्यम से कथा कहने की परम्परा में एक नवीन कड़ी को जोड़ने वाले आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित अभिनवशुकसारिका में प्राचीनता के साथ नवीन सन्दर्भों को आधार बनाया गया है। इस कथा–संग्रह में छह कहानियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक को कथारम्भ, कथा–प्रत्याख्यान, पुनः कथारम्भ, कथान्तर तथा कथासंहार इस प्रकार सुनियोजित किया गया है। कथा का मुख्य नायक प्रोफेसर इन्द्रमौलि का बेटा शशिधर है तथा नायिका है – उद्योगपति घूरामल अग्रवाल और शीलवती की बेटी शम्पा। दोनों बालकाल से ही आपस में मित्र थे और बाद में माता–पिता के प्रयास से विवाह–बंधन में बँध गए थे। विवाह के पश्चात् शशिधर उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका जाना चाहता है, किन्तु शम्पा भारत में ही रहकर समाजशास्त्र में 'मादक पदार्थों के सेवन का युवा पीढ़ी पर प्रभाव' नामक विषय पर पीएच. डी. पूर्ण करना चाहती है। अमेरिका जाते समय शशिधर ने शम्पा को शीलभद्र नामक तोता और मेधाविनी नामक मैना की जोड़ी यह कहकर प्रदान की कि मनुष्य की बोली बोलने वाले ये दोनों तुम्हें सन्मार्ग पर चलने के लिए आवश्यकतानुसार अच्छा परामर्श देते रहेंगे। इनमें से तोता कम तथा मैना अधिक बोलती है। शम्पा ने भी शशिधर को एक सुगंध भेंट की यह कहते हुए कि विदेश में यदि तुम्हारा चरित्र भ्रष्ट नहीं हुआ तो इसकी विलक्षण सुगंध बरकरार रहेगी अन्यथा नष्ट हो जाएगी। (वास्तव में वे दोनों एक–दूसरे पर निगरानी रखने के लिए आपस में भेंट का आदान–प्रदान कर रहे थे।)

शशिधर के विदेश चले जाने के कुछ माह बाद पिता के द्वारा दी गई कोठी में रहती हुई शम्पा अपने शोध–कार्य के दौरान मादक पदार्थों के सेवन से होने वाले दुष्प्रभाव की सत्यता परखने के लिए तथाकथित उन अड्डों पर

जाकर चुटकी भर हेरोइन खा लेती है, जिससे असामान्य अवस्था में जब वह कोठी पहुँची तो मेधाविनी उसे डांटने लगी कि तुझे अपना चरित्र ऐसे नष्ट नहीं करना चाहिए। उसकी कैं कैं सुनकर क्रोध में आकर शम्पा ने उसका पिंजरा खोल दिया और वह उड़कर एक वृक्ष पर बैठ गई। तब शीलभद्र ने शम्पा को सम्भालने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और उसे एक कथा सुनाते हुए कहने लगा कि यदि तुझमें ललिता जैसी शुभबुद्धि हो तो तू पुनः अड्डे पर अवश्य चली जाना। तब शम्पा की जिज्ञासा पर वह ललिता की कथा सुनाता है।

प्रथम कथा

गंगा के किनारे शंकरगढ़ नामक गाँव में विविध गुणों का विधान, ध ार्मिक प्रवृत्ति का, गाँव का मुखिया, लक्ष्मी जैसी सुशील और सुन्दर अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ सुख से रहता था। बड़ी मन्नतों के बाद उनकी एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम उन्होंने ललिता रखा। घर में समृद्धि और माता–पिता के लाड़–प्यार से ललिता दिन–दूनी रात–चौगुनी गति से भारी भरकम शरीर वाली हो गई। माता–पिता उसके विवाह के लिए चिंतित हो गए। यद्यपि वह घर के कामकाज, गाय–भैंसों का दूध दुहना, कढ़ाई, बुनाई, रसोई आदि सभी कार्यों में तथा पढ़ाई में भी कुशल थी, तथापि उसके शारीरिक विकास ने माता–पिता को चिंता में डाल दिया था। एक बार संयोग से जगदीश प्रसाद को प्रयाग नगरी में अपने गाँव का सहपाठी दशरथ प्रसाद मिल गया, जो अब एक बड़ा उद्योगपति बन गया था। उसके चार बेटे रामप्रसाद, लक्ष्मणप्रसाद, भरतप्रसाद और शत्रुघ्नप्रसाद थे। छोटा पुत्र अविवाहित शत्रुघ्नप्रसाद एक कॉलेज में पढ़ाता था, परन्तु वह दुबला–पतला था। दशरथप्रसाद ने स्वयं ललिता का हाथ अपने इस छोटे बेटे शत्रुघ्नप्रसाद के लिए माँग लिया। वर–वधू दोनों ने विवाह के समय एक–दूसरे को पहली बार देखा तो असमान जोड़ी होने के कारण दोनों खून का घूँट पीकर रह गए। नववधू जब अपनी ससुराल पहुँची, तो अपने श्वसुर से गृह–प्रवेश के नेंग के रूप में उसने चार भैंसे माँग लीं। बहुत कुछ सम्पत्ति देने का प्रलोभन देने पर भी जब वह अपनी माँग से नहीं डिगी, तब श्वसुर ने हारकर उसके लिए चार भैंसे घर में मंगवा दीं। अब ललिता सबेरे से भैंसों का दूध दुह कर घर के सभी सदस्यों को शुद्ध दूध, दही, घी आदि खिलाकर प्रसन्न करने लगी। धीरे–ध ीरे शत्रुघ्नप्रसाद का शरीर बलवान हो गया और परिश्रम करती हुई ललिता दुबली हो गई। अब दोनों की जोड़ी बड़ी सुदर्शन हो गई। भैंसों के गोबर से

निकम्मे भरतप्रसाद ने खाद का धंधा प्रारम्भ किया और घर में बगिया और सब्जियों की लहलहाती हुई क्यारियों से उसे "राष्ट्रीय पर्यावरण पुरस्कार" से सम्मानित किया गया। उस कुल में साक्षात् लक्ष्मी का अवतार ललिता के रूप में हुआ। शीलभद्र ने यह भी बताया कि ललिता ही शम्पा के पितामह की माता है। इस बात को शम्पा ने अपने पिता से फोन करके पूछा और तोते की बात पर विश्वास किया।

द्वितीय कथा

दूसरे दिन अपने एक मित्र के कहने पर शम्पा डिस्कोथेक जाने के लिए तैयार हुई तो तोते ने कपूरथला के निहालसिंह की कथा सुनाना प्रारम्भ किया। कृषि कार्य करते हुए वे निहाल सिंह बहुत समृद्ध हुए। उन्होंने अपनी दो बेटियों का विवाह कर दिया और बेटे इन्द्रसिंह को इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए अमेरिका भेजा। वहाँ से साफ्टवेयर इंजीनियर की डिग्री लेकर जब वह कपूरथला पहुँचा उस समय आतंकवादियों ने उसके माता–पिता की हत्या कर दी थी तथा उनकी सारी सम्पत्ति में आग लगा दी थी। माता–पिता का और्ध्वदेहिक कार्य करके गाँव में मन न लगने पर इन्द्रसिंह पुनः अमेरिका लौट गया और अपनी सहपाठिनी जूली से विवाह कर लिया। उनका एक बेटा हुआ, जिसका नाम इन्द्रसिंह ने अपने पिता के नाम पर निहालसिंह रखा। कुछ समय बाद जूली अपने प्रेमी मैक्स के घर चली गई और इन्द्रसिंह ने निहाल सिंह के पालन–पोषण में अपना मन लगाया। दस वर्ष का निहालसिंह कुशाग्रबुद्धि था। एक बार निहालसिंह ने अपने पिता को अनपढ़ भारतवासी कह दिया और दूसरी तथा तीसरी बार भी जब ऐसा कहा तो इन्द्रसिंह ने उसे एक चाँटा मार दिया। चाँटा खाकर बालक निहाल ने पुलिस को फ़ोन करके बुला लिया और किशोर के प्रति दुर्व्यवहार करने के कारण इन्द्रसिंह को एक मास का कारावास हो गया। कारावास से छूटने पर बेटे से पहले जैसा प्यार करने वाले इन्द्रसिंह ने परीक्षा के बाद अवकाश के दिनों में बेटे निहाल सिंह और उसकी सम्पूर्ण पढ़ाई की व्यवस्था दिल्ली में ही कर दी, जो बाद में संस्कृत का यशस्वी विद्वान् बना। उसका व्याख्यान सुनने शम्पा भी गई और भारतीय संस्कृति में पगे हुए उस नवयुवक विद्वान् का भाषण सुनकर वह उसे अपने घर भोजन पर निमंत्रित करती है। प्रो. निहालसिंह ने उसका निमंत्रण स्वीकार किया और सपत्नीक शम्पा के घर पहुँचे। उनकी पत्नी मेघा थी जिसका उल्लेख तृतीय कथा में है।

तृतीय कथा

आज शिवाजी जयन्ती पर विश्वविद्यालय में अवकाश के कारण शम्पा अपने मित्र विलियम के साथ अंग्रेजी फिल्म देखने के लिए विलियम को फोन करने को उद्यत् होती है। उसी समय तोता उसे रोकते हुए कहता है कि विवाहेतर मैत्री अच्छी नहीं होती है। किन्तु शम्पा स्वयं को, विलियम को और शशिधर को आधुनिक समझते हुए उस विवाहेतर मैत्री को अनुचित नहीं मानती। तब शीलभद्र उससे कहता है कि तुम लोक–व्यवहार तथा धर्म की गति नहीं समझती हो। यदि तुम्हें लीला की तरह लीला का विस्तार करना आता हो, तो तुम अवश्य जाओ। तब शम्पा के पूछने पर वह लीला की कथा कहता है कि पूना नगरी में सर्वेश्वर शर्मा नामक युवक ने रतिपति की लीला के समान सुन्दरी लीला नामक एक युवती से प्रेम विवाह किया। उनकी दो बेटियाँ हुईं, जिनके नाम मेघा और प्रज्ञा थे। लीला एक विद्यालय में शिक्षिका थी, किन्तु सर्वेश्वर शर्मा कई दफ्तरों में विभिन्न प्रकार की सामग्री सप्लाई करता था, जिसमें उसे कभी बड़ी आमदनी हो जाती थी तो कभी कई महीने अकाल के समान गुज़रते थे, अतः घर की व्यवस्था लीला के ही वेतन पर निर्भर थी। कभी–कभी पति–पत्नी में बहुत झगड़ा भी इसी कारण से हो जाता था।

एक बार सर्वेश्वर बहुत परेशानी में पूना के गणेशखिण्ड नामक बाजार में घूम रहा था। वहाँ उसे दसवीं तक पढ़ा अपने बचपन का मित्र सलीम अहमद मिला, जो अब लन्दन में भारतीय अचार, बड़ी, पापड़ का व्यापार करके धनवान हो गया था। उसने सर्वेश्वर को भी लन्दन चलकर उसके व्यापार में हाथ बँटाने का आग्रह किया। भारत में अपनी असफलता पर विचार करके सर्वेश्वर किसी प्रकार लीला की अनुमति लेकर सलीम के साथ लन्दन चला गया और उन दोनों ने वहाँ 'न्यू पिकल्स कम्पनी' नामक व्यावसायिक प्रतिष्ठान का विस्तार कर लिया। लन्दन से छह माह पश्चात् भारत आकर अपने परिवार को भी सर्वेश्वर वहाँ ले गया। यहाँ लन्दन में सलीम की पत्नी रज़िया सर्वेश्वर को अपनी ओर आकृष्ट करने में लग गई थी और एक दुर्घटना में सलीम की मृत्यु हो जाने पर सर्वेश्वर ने इस्लाम ध र्म स्वीकार करके रज़िया से निकाह कर लिया। अब लीला के समक्ष भीषण स्थिति उत्पन्न हो गई। निर्धनता के कारण बेटियों के पालन–पोषण के लिए वह लन्दन में ही भीख मांगने लगी। तब एक बार 'प्रताड़ित नारी संघ' की सेक्रेटरी जैनी से उसका परिचय रिया नामक धनाढ्य युवती ने करवाया।

जैनी के द्वारा सहायतार्थ दिए गए एक हज़ार पौण्ड में से पांच सौ पौण्ड से लीला ने अपनी बेटियों की स्कूल की फीस चुकाई और पांच सौ से एक सिलाई की मशीन खरीदी। वस्त्रों के व्यवसाय से दस वर्षों में लीला सिले हुए कपड़ों की एक विशाल दूकान की मालकिन बन गई। बड़ी बेटी मेधा का विवाह उसने प्रोफ़ेसर निहाल सिंह से कर दिया, जिसका परिचय शम्पा से उसके घर पर ही प्रो. निहालसिंह ने करवाया था। इधर रज़िया ने सर्वेश्वर को धोखा दिया और वह लन्दन में भीख मांगने लगा।

चतुर्थ कथा

शम्पा आज सबेरे से ही घमण्डी, कटुभाषिणी और दुर्व्यवहार करने वाली, परित्यक्ता अपनी शोध निर्देशिका डॉ. रमादेवी से अपने शोध प्रबंध के वे चार अध्याय मांगने ,जा रही थी जो उसने छह माह पहले उन्हें जाँचने को दिए थे। वहाँ जाने पर चेप्टर न देने के कारण उन दोनों में झगड़ा होने लगा, तब नेता टाईप कुछ शोध छात्रों के उकसाने पर वह भी अपनी शोध –निर्देशिका डॉ. रमादेवी के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए तैयार होने लगी। यह देखकर शीलभद्र (जो पूर्व जन्म में वैशम्पायन नामक तोता था) उसे रमेश की कथा सुनाने लगा। प्रयाग नगरी के एलनगंज में रमेश कुमार रहता था। पिता एक कार्यालय में चपरासी थे। कुशाग्रबुद्धि रमेश प्रत्येक कक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होता हुआ एक दिन आई.ए.एस. के पद पर नियुक्त हो गया और मिर्जापुर मण्डल में पिता के साथ रहते हुए कमिश्नर विमल कुमार दयाल के कहने पर उसने उनकी बड़ी बेटी सरला से विवाह कर लिया। अपने माता–पिता के सख्त मना करने पर भी विवाह की प्रथम रात्रि में ही सरला ने रमेश को बतला दिया कि विवाह से पहले एक युवक से उसके सम्बन्ध थे जिससे उसका एक बेटा भी पैदा हुआ था, जो अब दार्जिलिंग में सेंट जोसेफ कान्वेण्ट में एडमीशन ले चुका है। अब किंकर्त्तव्यविमूढ़ रमेश अपने ससुर के पास गया। तब वहाँ से उसे पता चला कि सरला का प्रेमी फरीदखान एक मुसलमान था, जिसका घर सरला को तभी स्वीकार करना चाहता था जब वह इस्लाम स्वीकार कर ले। अब रमेश फरीदखान का पता लगाते–लगाते जबलपुर में उससे मिला। फिर रमेश ने सरला को तलाक देकर उसकी छोटी बहन से विवाह कर लिया और वहाँ फरीदखान और सरला का विवाह हो गया, किन्तु कुछ समय पश्चात् फरीदखान ने दोनों में कलह होने से सरला को तलाक दे दिया। यह सरला ही अब डॉ. रमा देवी है, जो शम्पा की निर्देशिका है। शम्पा ने अपनी निर्देशिका को धमकी दी कि यदि वह

उसके चेप्टर नहीं लौटाती और उसका काम नहीं करती है तो वह उनके बेटे को (जिसका पिता मुसलमान है और जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सदस्य है) उनका सारा रहस्य बतला देगी। यह सुनते ही हक्की–बक्की रमा देवी ने उसके सारे कागज निकालकर दे दिए।

पञ्चम कथा

शोध प्रबंध पूर्ण हो जाने से शम्पा प्रसन्न है। कुछ सामाजिक कार्य कर रही है। प्रौढ़ साक्षरता केन्द्र में भी वह जाती है, किन्तु एक दिन पाँच में से एक भी महिला साक्षरता केन्द्र में नहीं आई इसलिए शम्पा का चेहरा मुरझाया था जिससे शीलभद्र ने उसका कारण पूछ लिया। तब शम्पा ने कहा कि ये महिलाएँ अपने शराबी पतियों से मार खाने के बाद भी सब कुछ सहती रहती हैं वह आश्चर्य की बात है। तब शीलभद्र ने समाज सेवा का कार्य अच्छी तरह से करने के लिए शम्पा को मोहिनी की कथा सुनाई। राजाखेड़ी गांव में चमार के परिवार का सुबोध कुमार नामक एक बालक पढ़ाई में सदैव प्रथम आता था। शहर में अध्ययन करने के लिए जाने से पहिले उसके परिवार ने उसका विवाह गांव की एक सजातीय किशोरी से कर दिया– यह सोच कर कि विवाह हो जाने से सुबोध कुमार गाँव आता रहेगा। सुबोध ने पढ़ाई पूरी कर आई.ए.एस. बन गया और उसे भोपाल में बढ़िया बंगला, कार, चपरासी आदि की सुविधा प्राप्त हो गई। राजाखेड़ी गांव के विद्यालय में (जहाँ पर सुबोध ने शिक्षा पाई थी) विद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में विद्यालय के शिक्षकों ने सुबोध को मुख्य अतिथि के रूप में निमंत्रित किया। भव्य समारोह में उसका सम्मान किया गया। दूसरे दिन सुबोध के जाते समय उसकी माँ ने उसकी पत्नी मोहिनी को जबरदस्ती सुबोध के साथ भेज दिया। भोपाल शहर के वातावरण में अनपढ़ मोहिनी हीनभावना से कुण्ठाग्रस्त हो गई। एक बार सुबोध जब दौरे पर गया था तब एक चपरासी एक लिफाफा लेकर मोहिनी के पास आया और अनपढ़ मोहिनी उस पर दस्तखत नहीं कर पाई यह बात सुबोध को असह्य हो गई। पति से प्रताड़ित होने पर मोहिनी अपने गांव वापस आ गई और गांव में ही पढ़ाई में लग गई और पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की। इस बीच भोपाल में सुबोध कुमार पर एक नौकरानी द्वारा बलात्कार का आरोप लोगों ने लगा दिया। अखबार में यह समाचार पढ़कर मोहिनी भोपाल पहुँच गई और अपने पति को सान्त्वना देते हुए कचहरी में साथ में गई और कटघरे में खड़ी होकर कहा कि जिस नौकरानी ने मेरे पति पर जो आरोप लगाया है वह गलत है। असल में कल्याणी नारी नहीं हिजड़ा है। इसकी

मेडिकल जांच कराई जाए। तब कल्याणी ने रोते हुए उससे कहा कि लोगों ने उसे यह केस करने के लिए उकसाया था क्योंकि वे एक अनुसूचित जाति के अधिकारी को सहन नहीं कर पा रहे थे। सुबोध निर्दोष साबित हुआ और पति–पत्नी सुख से रहने लगे। समाज शिक्षा का कार्य करते रहने पर एक दिन मोहिनी बम्बई के एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र में अपने पति सुबोध कुमार के साथ पहुँची जहाँ शम्पा तथा अन्य सदस्यों ने उसका जोरदार स्वागत किया।

षष्ठ कथा

शशिधर अमेरिका से अगले सप्ताह भारत लौट रहा है। शशिधर का यह संदेश पाकर शम्पा मेधाविनी के सम्बन्ध में चिंतित हो गई, जो अब पिंजरे में नहीं थी। तब शीलभद्र ने उससे कहा कि यदि तुममें स्वर्णलता जैसी मेधा हो तो मेधाविनी तुम्हें मिल सकती है। फिर उसने स्वर्णलता की कथा सुनाई। कोलकाता में एक अध्यापक की पुत्री स्वर्णलता थी जो बचपन से ही संगीत, नृत्य, पढ़ाई आदि सभी में निपुण थी। उसका कण्ठ बहुत अच्छा था, अतः लोग उसे कोकिलकण्ठी कहते थे। माता–पिता ने मुद्रणालय के प्रबंधक सम्पन्नकुमार से उसका विवाह कर दिया, जो गांव में रहा था तथा उसका बचपन निर्धनता में बीता था। वह एक प्रेस में प्रूफ संशोधन करता हुआ अपने परिश्रम से प्रेस मैनेजर बन गया था। सुहागरात में सम्पन्नकुमार पत्नी के पास गया तो स्वर्णलता न शय्या से उठी और न ही पति को अभिवादन किया। इस पर सिनेमा से प्रभावित सम्पन्न कुमार ने उससे कहा कि तुमने मेरे जूते क्यों नहीं उतारे। इस पर शब्द–बाणों से आहत होकर स्वर्णलता दूसरे दिन सबेरे ही अपने मायके चली गई और अपने माता–पिता से कहा कि वह किसी भी पुरुष की धौंस बिना कारण नहीं सह सकती। फिर उसे एक वर्ष में एक विद्यालय में अध्यापिका और फिर प्रधान अध्यापिका का दायित्व मिल गया। एक बार परीक्षा के समय सातवीं कक्षा का प्रश्नपत्र सम्पन्न कुमार की प्रेस में एक क्लर्क की गलती से छूट गया। परीक्षार्थी परीक्षा के लिए बैठ चुके थे और प्रश्नपत्र का बंडल गायब था। शाला में मची इस हड़बड़ी के समय सम्पन्न कुमार स्वयं वह बंडल लेकर आए और वहाँ स्वर्णलता को देख फिर वे दोनों आपसी वार्तालाप करके साथ में रहने को तैयार हो गए।

यह कथा समाप्त होने पर शीलभद्र के कहने पर शम्पा उसे बगीचे में ले गई जहाँ उसे वृक्ष पर बैठी हुई मेधाविनी मिल गई। इसी समय उस सुगन्ध के साथ शशिधर शम्पा के सामने खड़ा था और तोता मैना दोनों उड़ गए। शशिधर ने कहा कि इस कथा का लेखक राधावल्लभ हम लोगों को यहाँ से

वहाँ घुमा रहा था। ये तोता–मैना भी उसी कथाकार की कल्पना थे। अब हम दोनों उस कथालोक से बाहर आकर अपना जीवन अपने बूते पर सफल करेंगे।

उपर्युक्त कथाओं के सभी स्त्रीपात्र संघर्षशील, स्वाभिमानी और पुरुष वर्चस्व का विरोध करने वाले हैं। प्रथम कथा की नायिका ललिता स्थूलकाय है, उसे देखकर सब उसकी हँसी उड़ाते हैं। ससुराल में भी जब वह गृहप्रवेश के नेंग के रूप में चार भैंसों की मांग करती है तब वहाँ पर उपस्थित सभी लोग उसकी बात पर हँसते हैं। वर शत्रुघ्न भी मन में कहता है "न केवलं देहेन दानवीयम्, अपितु बुद्धयाऽपि तथैव।" किन्तु भैंसों के आ जाने पर ललिता ने सम्पूर्ण गृहभार सम्भाला। सभी सदस्यों को शुद्ध दूध, दही, घी खिला–पिलाकर स्वस्थ बनाया। सींकिया पहलवान शत्रुघ्न भी हृष्टपुष्ट हो गया। ये सब बातें ललिता के संघर्ष का चित्रण करती हैं। उस घर में तो वह साक्षात् लक्ष्मी की तरह सम्माननीय बन गई थी।

तृतीय कथा की नायिका लीला स्वदेश में अपने बल पर अपनी दो बेटियों और पति की गृहस्थी सम्हाल रही थी, क्योंकि उसके पति की आमदनी बहुत निश्चित नहीं थी। पति के साथ लन्दन चली जाने पर वह वहाँ भी नौकरी करना चाहती है, किन्तु पति ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। फिर पति ने जब रज़िया से विवाह कर लिया तब तो लीला के पास घर चलाने के लिए कुछ भी नहीं था। वह पैसों के अभाव में न तो भारत जा सकती थी और प्रेम विवाह करने के कारण अपने किसी रिश्तेदार से बात भी नहीं कर सकती थी। फिर धीरे–धीरे उसकी स्थिति में परिवर्तन आया और भीख मांगना छोड़कर उसने प्रताड़ित नारी मंच की सदस्यता स्वीकार करके उस मंच के द्वारा दिये गये एक हजार पौण्ड से अपनी बेटियों के स्कूल की फीस भरकर एक सिलाई मशीन खरीदी और धीरे–धीरे प्रगति करती हुई एक वस्त्र–प्रतिष्ठान की स्वामिनी हो गई। उसका पति कालान्तर में रजिया से तिरस्कृत होकर भीख मांगने लगा।

चतुर्थ कथा की प्रमुख स्त्रीपात्र सरला जो अब शम्पा की शोध निर्देशिका डॉ. रमादेवी है, स्वाभिमान से भरी है। पति, फरीदखान से वह इसलिए अलग रहने लगती है कि उन दोनों का जो बेटा है उसे फरीद खान संदेह की दृष्टि से देखता है, क्योंकि वह उन दोनों के विवाह के पहले पैदा हुआ था। अपने पुत्र को हॉस्टल में रखकर सरला उसका भलीभाँति पोषण कर रही है। हालाँकि ऐसी स्थिति में वह थोड़ी कटुभाषिणी और झगड़ालू बन गई है।

पांचवी कथा की अनुसूचितजाति की नायिका मोहिनी यद्यपि प्रारम्भ में अनपढ़ दिखायी गई है, किन्तु बाद में पति से अपमानित होने पर वह अपने गांव जाकर पुनः अध्ययन प्रारम्भ करके प्रौढ़ साक्षरता केंद्र में एक सम्माननीय स्थान को प्राप्त करती है। दुष्ट लोगों द्वारा अपने पति को बलात्कार के आरोप में फँसाये जाने पर मोहिनी शहर पहुंचकर अपनी बुद्धि से उन आरोपों से उसे मुक्त करवाती है।

छठवीं कथा की मुख्य स्त्री पात्र स्वर्णलता का पति पुरुषदर्प का शिकार है, वह उसे दबाकर रखना चाहता है किन्तु स्वाभिमानिनी स्वर्णलता पति के इस दर्प को सहन करने की अपेक्षा अपने पिता के घर में लौट आना अधिक अच्छा समझती है और अपने अथक परिश्रम से प्रधानाध्यापिका के पद पर पहुँचती है।

कथाओं में निबद्ध उपर्युक्त स्त्रीपात्रों के अतिरिक्त कथासंग्रह की मुख्य नायिका शम्पा स्वयं भी स्वाभिमानिनी स्त्री है। कथाओं के बीच–बीच में तोते को उत्तर देते समय उसके स्वाभिमान, विद्वत्ता आदि का पता चलता रहता है। ललिता की हँसी उड़ाने वालों को वह एक सबक इस प्रकार देती है कि अपनी हँसी उड़ाये जाने से तो ललिता के लिए यह सुखद बात होती कि वह पति की उपेक्षा न झेल पाने से खण्डित हुई आशाओं वाली भग्न मनोरथा नायिका जैसी संगम में डूब मरती। (पृ. 42)

तृतीय कथा में लीला को धोखा देने वाले पति सर्वेश्वर और उसे अपनी ओर आकृष्ट करने वाली रज़िया के विषय में वह कहती है–"यद्यहं लीलायाः स्थाने स्यां तर्हि गत्वा उभौ तौ रजियासर्वेश्वरौ गुलिकया हन्याम्।" (पृ. 86)

शीलभद्र के द्वारा लन्दन शहर का सुंदर वर्णन सुनकर वह उसे झूठा समझकर कहती है कि यदि तुम्हारे द्वारा बतलाये गये स्थान लन्दन में नहीं हुए, तो तुझे गर्दन मरोड़कर मार डालूँगी। (पृ. 95)

चतुर्थ कथा में सरला अपने पति फरीदखान से इसलिए अलग हो जाती है कि उसने उसके चरित्र पर संदेह किया। अपने परिश्रम से वह विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका बनी। शम्पा उसके निर्देशन में शोधकार्य कर रही थी। अपने शोध कार्य के दौरान शम्पा मादक पदार्थों का प्रभाव जानने के लिए स्वयं हेरोइन खा लेती है ताकि उसका रिजल्ट सही निकले। शम्पा डॉ. रमादेवी (सरला) के नैतिक साहस से प्रभावित है। (पृ.108)

इस प्रकार अभिनवशुकसारिका की भाषा सहज, प्रांजल है। इसमें

शास्त्र, लोक, प्राचीनता, आधुनिकता तथा देश–परदेश सभी की संस्कृतियों का अच्छा उल्लेख है। कहावतें, मुहावरे, लोकभाषा तथा अंग्रेजी आदि का भी प्रयोग अच्छा है।

अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.)

लहरीदशकम् में लोकचेतना के प्रसंग

डॉ. ओम्प्रकाश राजपाली

विश्वविख्यात संस्कृतविद्वान् आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने अनेक विधाओं में शताधिक ग्रन्थों की रचना करके संस्कृत–वाङ्मय को समृद्ध किया है। उनकी रचनाधर्मिता के अनेक पक्ष और अनेक आयाम हैं। संस्कृत की जिस विधा में भी उन्होंने लिखा, नई सोच के साथ लिखा। इस सहस्राब्दी में संस्कृत के माध्यम से आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा किया गया साहित्यिक योगदान निश्चित रूप से श्लाघनीय है। लहरीकाव्यों के परम्परागत कथानकों की लीक से हटकर वे अपने लहरीदशकम् में परम्परागत समकालीन सन्दर्भों के साथ एक अभिनव सोच और एक अभिनव दृष्टि लेकर उपस्थित हुए हैं। इसमें वे अपने देश और अपनी धरती, यहाँ के पर्वतों, नदियों, तीर्थस्थलों, प्रकृति, खेतों, किसानों, श्रमिकों एवं दबे–कुचले जनसामान्य के प्रति अपना हार्दिक अनुराग ही प्रकट नहीं करते, बल्कि अपने समय के सत्य को भी निर्भीकतापूर्वक उद्घाटित करके सामाजिक चेतना जगाने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध करते हैं। अभिजात और लोकधर्मी– इन दोनों काव्यपरम्पराओं का सुन्दर समागम उनकी कविता में देखा जा सकता है। उनकी कविता के केन्द्र में लोक सदैव उपस्थित रहा है। पर्यावरण के विनाश और प्रदूषण की समस्या, जलाभाव की समस्या, भ्रष्टतन्त्र, निर्धनता और संकीर्ण धार्मिकता जैसे विषयों पर आचार्यजी का चिन्तन कैसा है? यहाँ, इस पर किञ्चित् प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है

जो वृक्ष हमें मीठे फल, आक्सीजन, ईंधन और पथिकों को तपती धूप में सुस्ताने की ठौर देते हैं, उन्हें विकास के नाम पर काट दिया गया। अमराइयाँ हटाकर महल खड़े कर दिए गए। समस्या उत्पन्न करो, फिर उसके समाधान में जुट जाओ। वृक्षारोपण अभियान चलाओ। यह तो वही बात हुई कि "यह खल रीति सदा संसारा। दै विष धाय करत उपचारा।।" इस तरह के पर्यावरणविनाश को लेकर कविवर त्रिपाठीजी के चिन्तन को रेखांकित

करने वाला एक उदाहरण देखिए–

विस्थाप्य पूर्वलसितं सहकारकुञ्जं
स्वैरं प्रसर्पतितरां गुरुसौधपुञ्जः।
अन्तर्निगीर्य स परः प्रकृतं समस्तं
कामं विजृम्भत इवातिशयोक्तिकाव्ये।। (वसन्तलहरी, 6)

आम्रकुंज लसते जहाँ, पहले तिन्हें हटाय।
धवल धाम हैं अब वहाँ, दीन्हि प्रकृति नशाय।।
इस विकास के काल में, अमराई भइ लुप्त।
अतिशयोक्ति में ज्यों कहीं, कवित भाव हो गुप्त।।

वाहनों से निकलने वाला धुआँ नगरीयप्रदूषण में वृद्धि करता हुआ जनजीवन को कैसे हानि पहुँचा रहा है ? इसका जीवन्त चित्रण वसन्तलहरी में आचार्य त्रिपाठीजी ने दो पद्यों में इस प्रकार किया है–

यानागमव्यतिकराकुलिताश्च मार्गाः
पित्रोलगन्धपरिपूरितदिङ्मुखास्ते।
धूमः प्रसर्पति च राजपथे पुरेऽस्मिन्
धूलिं बिभर्ति वसुधाऽसितडामराङ्का।।

वाहन आवागमन से, व्याकुल पथ पित्रोल।
गन्ध भरी सब दिशनि में, करता धूम किलोल।।
फैल रहा सब राजपथ, दूषित करता वात।
डामर किट्ट जे थल रहे, सने धूल दिन रात।।
धूमावृतानि वदनानि तथाध्वगानां
वायुं प्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूयः।
धूल्याकुलानि विविधानि च वाहनानि
निष्पिष्य गाढमिह यान्ति वसन्तशोभाम्।। (वही, 17–18)

पथिक सानि मुख धूम मग, वायु प्रदूषित कीन।
धूल धूसरित यान बहु, छवि वसन्त की छीन।।

जीव–जन्तु और पशु–पक्षी के जीवनसंघर्ष का जीवन्त वर्णन संस्कृत कविता की लोकधर्मीपरम्परा में दुर्गत, दिविरकिशोरक आदि कवियों की कविता में मिलता है। निदाघलहरी में आचार्य त्रिपाठी ने भी एक स्थान पर बहुत संवेदनशील दृष्टि के साथ एक निरीह प्यासे पक्षी का वर्णन करते हुए भयावह होती आज की जलसमस्या को उजागर किया है। वह पक्षी जो बोल नहीं सकता कि मैं प्यासा हूँ, मुझे पानी दो। उसकी पीड़ा को कवि ने महसूस किया है। कवि की संवेदनशीलता की गहराई यहाँ उदाहरणीय है–

प्रदत्तमञ्जलिप्रायं जलं तूर्णं प्रशुष्यति।
आलवालमथ प्राप्य पक्षी पश्यति कर्दमम्।।

(निदाघलहरी, 15)

खग प्यासा इक तकि रहा, पीने पहुँचा नीर।
पंक बचा नहिं जल तहाँ, पक्षी हुआ अधीर।।

यहाँ दृश्य समाप्त हुआ है। पूरा दृश्य, जिसमें कवि ने जलाभाव की समस्या पर हमारा ध्यान खींचा है, इस प्रकार है– गर्मी का समय है, सुबह–सुबह गृहिणी यथा–तथा अपनी बगिया को बचाने की चिन्ता में डूबी हुई है, उसके पास जल बहुत कम है, सोच रही है कि उसे पादप की जड़ में दूँ या स्नान करने और वस्त्रप्रक्षालन के लिए सुरक्षित रख लूँ। चिन्तातुर अवस्था में वह चुल्लू भर जल पादप की जड़ में डाल देती है, जिसे पीने उक्त प्यासा पक्षी पहुँचा था–

यथा तथैव सायासं रक्ष्यते गृहवाटिका।
गृहिण्याऽलाबुकूष्माण्ड्यौ फलिष्यत इतीप्सया।।
जतन बहुत गृहिणी किए, गृहवाटिका बचान।
लौकी कुम्हड़े कीं लता, फूलि फलें ललचान।।
कुत्र कस्मिन् प्रदेयं स्याज्जलं स्वल्पं तु पादपे।
रक्षणीयं गृहे वा स्यात् स्नानाय क्षालनाय वा।।
थोड़े जल का क्या करूँ,? मन में रही विचारि।

सींचू पादप न्हाँउ या, लेऊँ वसन पखारि।।

इति चिन्तातुरा म्लाना गृहिणी वाटिकास्थिता।

सेचनं कुरुते प्रातर्जलैश्चुलुकमात्रकैः।। (वही, 11–13)

व्याकुल मुरझाई खड़ी, गृहिणी बगिया बीच।

चुल्लू भर जल से दई, उसने तरु जड़ सींच।।

जलसमस्या का एक और कारुणिक चित्र त्रिपाठी जी ने यहाँ प्रस्तुत किया है–प्यासे लोग स्टेशन पर, बाजार में, नल खोजते भटक रहे हैं, पब्लिक नल पर नारियों की कतार लगी हुई है, मारुति में बैठकर जलसमस्या के निदान करने का झूठा दिखावा करने महापौर वहाँ आ पहुँचा है। भ्रष्ट तन्त्र के प्रति कवि का आक्रोश देखिए–

अवस्थानेषु हट्टेषु पिपासापीडिता नराः।

बभ्रमन्ति जलं पातुमन्विष्यन्तः प्रणालकम्।

जलमादातुमुत्कानां प्रतीक्षाकुलितात्मनाम्।

लोकप्रणालके पंक्तिः स्त्रीणां दीर्घा प्रजायते।।

सद्यो जलव्यवस्था स्यादित्याश्वासयति प्रजाम्।

मारुतिं च समारुह्य महापौरः समागतः।। (वही, 16–18)

टेशन अरु बाजार में, प्यासे लोग विहाल।

नल खोजत भटकत फिरें, व्याकुल ग्रीषम काल।।

पबलिक नल पर नारियाँ, लम्बी लगी कतार।

उत्कण्ठित व्याकुल सभी, तकतीं अपनी बार।।

महापौर चढ़ि मारुति, जन आश्वासन देत।

जल मिलिहैं जल्दी सबनि, क्यों चिन्ता चित लेत।।

आचार्य त्रिपाठी जी ने अपनी कविता में निर्धनता विषय का उपयोग कविता की सजावट के लिए नहीं किया। वे यथार्थ की भूमि पर निर्धनता की ठोस सच्चाई को साफ–साफ उजागर करते हैं। इस विषय पर, अद्यापिलहरी

का एक श्लोक यहाँ दृष्टव्य है–

अद्यापि निर्धनगृहे शिशवस्तथार्ता
अन्नस्य नैव कणिकामपि ते लभन्ते।
दीना मृता कति जनास्तु बुभुक्षयैव
स्वप्नेऽपि ये न ददृशुर्घृतदिग्धमन्नम्।। (अद्यापिलहरी, 34)

भूखे बिलखत आज भी, निर्धन के घर बाल।
नहीं सुलभ कण एक भी, जिनको बड़ा मलाल।।
रोटी चुपड़ी ना चखी, जीवन दिया गँवाय।
मरे भूख से बिलखते, किते दीन जन हाय।।

निर्धनता एक ऐसी समस्या है, जो निर्धन के साथ ही जन्म लेती है और उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त होती है। प्रसंगवश यहाँ संस्कृत लोकध ार्मी परम्परा के कवि हेमचन्द्रसूरि की पंक्तियाँ याद आ रहीं हैं। उनका कहना था–

सहोदयव्ययाः पञ्च दरिद्रस्यानुजीविनः।
ऋणं दौर्भाग्यमालस्यं बुभुक्षापत्यसन्ततिः।।

(सूक्तिमुक्तावली, 127/1)

ऋण आलस बहु कुटुम अरु, भूख अभाग अभंग।
पाँचौं जनमतें रहति हैं, मिटैं दीन के संग।।

कविवर त्रिपाठी जी जब धार्मिक संकीर्णता पर सच्ची बात बोलते हैं, तब उनके व्यंग्य की पैनी धार की मार तिलमिला देती है–

यन्मन्दिरं किल विहाय गतः स रामो
यन्मस्जिदेऽपि विरतोऽस्ति नमोध्वनिः सः।
एतद्द्वयं समधिकृत्य वृथाविवाद–
श्चाद्यापि खेदजनको न विराममेति।। (वही, 35)
मन्दिर छोड़ा राम नहिं, पढ़ी मसीत नमाज।
वृथा विवादित सो जगह, खेद न कछु हल आज।।

आचार्य त्रिपाठीजी का भोले–भाले लोगों के लिए यह सन्देश है कि धार्मिक ढोंगी बाबाओं से बचो, उनके पिछलग्गु मत बनो, उन्हें अपनी अन्धश्रद्धा का केन्द्र मत बनाओ। अपने विवेक का प्रयोग करो–

एकश्चूषति लोकशोणितमहो दुर्दाम्भिको धार्मिको
धर्माडम्बरदिग्भ्रमैकनिपुणश्चान्यः पटुर्मौलवी।
एतौ द्वावपि वञ्चनाहितमती धिक्कारपात्रं परं
शोच्यास्तावनुयान्ति ये जड़धियो गड्डारिकावज्जनाः।।

(जनतालहरी, 38)

खून चूसता जननि का, धर्मी ढोगी घोर।
कटु बकता मुल्ला चतुर, वंचत करि मति भोर।।
निन्दनीय हैं दोउ ये, शोचनीय ते जान।
इनके पीछे जो फिरें, जैसे भेड़धसान।।

लोक के प्रति समर्पित कविवर आचार्य त्रिपाठीजी के व्यक्तिव्य को स्पष्ट करने वाला एक श्लोक देखिए–

नाहं स्तौमि वयामि नैव मसृणं, चीनांशुकं स्वैः पदैः
शब्दैर्नो रचयामि कृत्रिमसुमैश्चित्रां विचित्रां स्रजम्।
एषा सा सहजं विभावितगुणा, मे मानसे संस्थिता
व्यक्तिं स्वस्य करोति चैव जनता वाग्भिर्ममैषा ध्रुवम्।।

(वही, 12)

बुनूँ न मलमल शब्द की, स्तुति का नहीं खयाल।
शब्दजाल नकली सुमन, नहिं गूँथूँ मैं माल।।
सहज विभावित गुण भरी, जनता हियहिं समानि।
अन्तस से नित स्वयं ही, प्रगटति सो मम वानि।।

अध्यक्ष, संस्कृत एवं हिन्दी विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बाह

(म० प्र०)

संस्कृत साहित्य को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का योगदान

डॉ.परमानन्द मिश्र

आधुनिक वेशभूषा से सदा सुसज्जित, ऋषि मुनियों जैसे निरन्तर साहित्य साधना में रत, अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारो से पुरस्कृत, शतशःराष्ट्रिय संगोष्ठियों के संयोजक, शताधिक पुस्तकों के रचयिता, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान् नई दिल्ली जैसी संस्था के कुलपति पद पर पदस्थ होकर संस्कृत को उपकृत करने वाले, साहित्य सर्जना के क्षेत्र में बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने पद्यकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक, समीक्षा, इतिहास, आदि सभी विधाओं में मौलिक लेखन किया है। साहित्य सर्जना एवं समीक्षा के क्षेत्र में आचार्य त्रिपाठी जी की सबसे बडी विशेषता यह है कि प्राचीन परम्परा में जो भी महत्तम् है, उन्होंने उसकी पुनर्रचना करके पुनःप्रतिष्ठित किया तथा नये में जो उपयोगी रहा उसको ग्रहण किया और इतना ही नहीं, परम्परा और नवीनता का समन्वय करके कुछ नया करने का स्तुत्य कार्य भी किया। इसी पृष्ठभूमि पर मैं क्रमशःउनके अवदानों को इस लघुलेख में रेखांकित करना चाहता हूँ।

1. कविता के क्षेत्र में सन्धानम् कवि त्रिपाठी जी की प्रारम्भिक काव्य रचना है जो विविध कविता शैलियों में लिखा गया सामाजिक एंव दार्शनिक काव्य संग्रह है। वर्तमान में एक ऐसा कवि समुदाय है जो पारम्परिक छन्दों से परहेज करता है किन्तु आचार्य त्रिपाठी जी ने पारम्परिक लगभग सभी प्रमुख छन्दों में पन्द्रह लहरी काव्यों की रचना की। उन्हें छन्दोमयी रचना का बडा गर्व है, वे लिखते हैं–

यावद् रेखा वहति भुवने यावदास्ते च विन्ध्य
स्तावद् वाणी सरसरूचिरा स्त्यायतां सत्कवीनाम्।

गुञ्जन्नस्मिन् मम च रूचिरे नर्मदा प्रान्त भागे

सिञ्चेन्नृणां हृदयमखिलं छान्दसःसुप्रपातः। –नर्मदा लहरी –55

लहरी काव्य एक प्राचीन विधा है जिसमे कवि त्रिपाठी जी ने आधुनिक विषयों का वर्णन कर उसे पुनःप्रतिष्ठित किया। विशेषतः जनता लहरी लिखकर उन्होने जनवादी कवि की ख्याति प्राप्त की। राधावल्लभ का लहरीशकम् संस्कृत कविता में एक नवप्रयोग है। सम्प्लवः काव्य संग्रह की उनकी कविताऍ विशेष आधुनिक एंव सामाजिक हैं। जिनमें 'नगरे महिस्यःनगरे शूकरः' जैसी कविताऍ विशेष आधुनिक हैं। गीतधीवरम् काव्य में कवि ने छन्दोमय,गद्यमय एंव गीतिमय कविताएँ लिखी हैं। जो उनके समन्वयकारी शैली का परिचय है। गीतधीवरम् काव्य एक दार्शनिक एंव आध्यात्मिक काव्य है जो कि कवि के महाकवित्व को सिद्ध करता है।

2. गद्यकाव्य के अन्तर्गत कवि त्रिपाठी जी की तीन रचनाएँ हैं – उपाख्यान मालिका विक्रमचरितम् एंव अभिनवशुकसारिका। आख्यान कथा कहने की अत्यन्त प्राचीन एंव लोकप्रिय विधा रही है। वेद, पुराण, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थ, आख्यानों से परिपूर्ण हैं। यह विधा आज भी प्रचलित है, उदाहरणार्थः– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'अनामदास का पोथा' एक आख्यान है। कवि त्रिपाठी जी ने उपाख्यानमालिका में चार उपाख्यान लिखे हैं– विचित्रोपाख्यानम्, मायाविनी–उपाख्यानम्, मदनदहनम् एंव शकुन्तलोपाख्यानम्। इन चारों उपाख्यानों में भारतीय समाज के सांस्कृतिक, साहित्यिक एंव राजनैतिक मूल्यों के परिवर्तन की कथा है। कवि त्रिपाठी जी की द्वितीय गद्यरचना विक्रमचरितम् एक पशुकथा है। भारतीय कथा साहित्य के अन्तर्गत पशुपक्षियों के माध्यम से नीतिशिक्षा परक ग्रन्थ लिखने की परम्परा रही है। जिसका उदाहरण पचतंत्र है। विक्रमचरितम् बीभत्स रस प्रध ाान संस्कृत उपन्यास है जिसका नायक निर्वाचन में वनराज को पराजित करने वाला शूकरराज विक्रम है। उसकी सोलह शूकररानियाँ इस गद्यकाव्य की नायिकाएँ हैं। वस्तुतःइस गद्यकाव्य में पशुओं को प्रतीक बनाकर वर्तमान राजनैतिक मूल्यहीनता की कथा कही गई है। कवि त्रिपाठी जी की तृतीय गद्यरचना अभिनव शुकसारिका, प्राचीन कथा शैली में लिखा गया एक गद्य महाकाव्य है जिसके पूर्व भाग एंव उतरभाग दो भाग हैं। इसमें स्वतन्त्रतापूर्व एंव उसके पश्चात् के भारतीय समाज के सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक तथा आर्थिक बदलते मूल्यों की रोचक कहानी है।

3. कवि त्रिपाठी जी की चार प्रमुख नाट्य रचनाएँ हैः– प्रेमपीयूषम्, प्रेक्षणसप्तकम्, तण्डुलप्रस्थीयम् तथा सुशीलप्रेक्षणक प्रेमपीयषम् सात अंको का नाटक हैं जिसमें महाकवि भवभूति के जीवन चरित् का वर्णन है। राजनैतिक पृष्ठभूमि में दाम्पत्य जीवन में प्रेम की चरितार्थता सिद्ध की गई है। प्रेक्षणसप्तकम् में सात एकांकी प्रेक्षणक संग्रहीत है। इनमें से मशकधानी प्रेक्षणक का कई बार मंचन हुआ तथा पुरस्कृत किया गया है। त्रिपाठी जी द्वारा लिखित तृतीय नाट्यकृति तण्डुल – प्रस्थीयम् दस अंको का प्रकरण रूपक है। इसका नायक एक दलित युवक है जो शिक्षा, गरीबी, अस्पृश्यता, शोषण आदि सामाजिक बुराइयों से जूझते हुये आगे बढने की कोशिश करता है। आपकी चतुर्थ नाट्य रचना सुशीलाप्रेक्षणक है, जिसका विगत वर्ष इलाहाबाद में मंचन हुआ एवं जिसे पुरस्कृत किया गया है। सुशीलाप्रेक्षणक वस्तुतः एक महिला के असीम साहस की कहानी तो है ही साथ ही एक महिला के दुर्गति की पराकाष्ठा की कथा का नाट्य रूपान्तरण है। कवि त्रिपाठी नाट्य शास्त्र एवं भारतीय रंगमंच के अग्रणी विद्वान् माने जाते हैं। आपने नाट्य शास्त्र के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षिप्त नाट्य शास्त्र के नाम से दो भागो में हिन्दी टीका सहित प्रकाशन किया है। आपकी पुस्तक भारतीय रंगमंच का उद्भवं एवं विकास भारतीय रंगमंच से सम्वन्धित गवेषणात्मक जानकारी प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा सन 1982 से रंगमंच से सम्बन्धित 'नाट्यम्' – त्रैमासिक पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन किया जा रहा है।

4. आचार्य त्रिपाठी जी ने समीक्षा एंव इतिहास के क्षेत्र मे जो कार्य किया है वह एक युगीन कार्य है। आपका अभिनव संस्कृत साहित्य का इतिहास विद्यार्थियों के बीच अतिशय लोक प्रिय हुआ है। समीक्षा के क्षेत्र में अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैंः– आदि कवि वाल्मीकि, संस्कृत की लोक धर्मी परम्परा, काव्य शास्त्र और काव्य संस्कृत साहित्य बीसवीं शती, आधुनिक संस्कृत ग्रन्थ सूची, बिब्लिओग्राफी आफ अलंकार शास्त्र, बिब्लिओग्राफी आफ संस्कृत ड्रामा आदि। काव्य शास्त्र के क्षेत्र में अभिनव काव्यालंकारसूत्रम् एक युगीन रचना है। जिसकी आज सर्वत्र विद्वानों में चर्चा है। भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में समय समय पर शास्त्र व्यवस्थापन का कार्य किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में, भोजराज ने शृङ्गार–प्रकाश में तथा रूद्रट ने काव्यालंकार में तत्कालीन नवीन संस्कृत विधाओं को परिभाषित किया है। इसी प्रकार आचार्य त्रिपाठी जी ने भी अपने इस अमूल्य ग्रन्थ में

पारम्परिक काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की समीक्षा के अतिरिक्त आधुनिक युग की अनेक विधाओं– जैसे उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा आदि के लक्षण प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रन्थ के विषय में आचार्य त्रिपाठी का अभिमत मै यहाँ उल्लिखित करना उपयोगी समझता हूँ।वे ग्रन्थ की समाप्ति पर लिखते हैं–

प्राच्य पाश्चात्यसाहित्य शास्त्राणां क्षीरसागरम्।
निस्सारितं विनिर्मथ्य नवसिद्धान्तमौक्तिकम्।
राधावल्लभ इत्याख्यो विदुषां स वशंवदः।
काव्यालंकारसूत्रम् सोऽभिनवंव्यदधादिदम्।
प्राचीनानां नवीनानां कवीनां समुदाहृतैः।
पद्यैः सुललितैर्जुस्टं नव्यकाव्यं परामृशत्।
भूयादिदं सरस्वत्याः कष्ठहारश्चिरं पुनः।
काव्यतत्त्वविदां चापि हृदयानिपरामृिशेत्।

आचार्य त्रिपाठी जी ने केवल भारतीय काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का ही नहीं अपितु पाश्चात्य सिद्धान्तों का समन्वय करके काव्य शास्त्रीय तत्त्वों के लक्षण प्रस्तुत किये हैं। भारतीय काव्य शास्त्र में जो बातें स्पष्ट नहीं थी उन्हें आचार्य त्रिपाठी ने सुस्पष्ट परिभाषित किया है। त्रिपाठी जी के अनुसार लोक का अनुकीर्तन काव्य है **(लोकानुकीर्तनं काव्यम्)** तथा अलंकार, काव्यजीवन है। काव्य का आत्मभूत मूल तत्त्व अंलकार है। रस, ध्वनि, गुण, रीति, अंगभूत तत्व हैं। काव्य लक्षण विवेचन में आचार्य त्रिपाठी जी ने स्पष्ट किया है कि लोक के अनुकीर्तन से काव्य में पूर्णता (अलंभाव) आती है जो सगुण, सालंकार, एवं रसाभिव्यंजक शव्दोंसे अनुकीर्तित होता है और अनुकीर्तन से पूर्णता आती है। यही पूर्णता अंलकार है। (अभिनव काव्यालंकार सूत्रम–पृ 7)

वस्तुतः आचार्य त्रिपाठी जी ने जो नवीन काव्य एंव अंलकार के लक्षण प्रस्तुत किये हैं, उनका पूर्वाचार्यो ने यत्र तत्र उल्लेख अवश्य किया है। आचार्य त्रिपाठी जी ने न केवल भारतीय अपितु पाश्चात्य विद्वानों के अभिमत भी प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये हैं। ऐसे अमूल्य ग्रन्थ का विद्यार्थियों में प्रचार प्रसार होना चाहिये जिससे उन्हें काव्य शास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तों के अतिरिक्त नवीन मानदण्डों का भी ज्ञान हो सके। उपर्युक्त प्रकार से आचार्य त्रिपाठी जी के अवदानों का यहाँ दिङ्मात्र उल्लेख किया गया है। अन्त में मैं केवल पुष्पदन्ताचार्य के इस उक्ति से इस लेख का समापन करता हूँ–

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरूवरशाखालेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकाले।
तदपि तव गुणानां गुरो पारं न याति।

सहायक प्राध्यापक
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुना (म.प्र.)

उपाख्यानमालिका में युगबोध

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन,

उपाख्यानमालिका आचार्य डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित चार उपाख्यानों की वह श्रृंखला है जिसमें विभिन्न आधुनिक संदर्भो एवं प्रतिबिम्बों को पौराणिक धरातल पर पल्लवित किया गया है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित आधुनिक समाज के प्रतिमान् कल्पना के रंग में उकेरे गए हैं। आपने भारतीय परम्परा को आत्मसात् कर आधुनिक जगत् के साथ नई–नई संवेदनाओं के चित्र खींचकर साहित्य में चित्रित किये हैं।

आख्यान शब्द इतिहास आधारित वह लोक साहित्य है जिसमें ऐतिहासिक तथ्य काल्पनिक रंगों में रूपांकित होते हैं। पाणिनि ने प्रतिवचन (उत्तर) के अर्थ में आख्यान का उल्लेख किया है–''अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः।''

महाभारत के विषय में स्वयं महाभारत में ही कहा गया है कि यह आख्यान कवियों के लिए प्रेरणास्रोत है–''इदं कविवरैः सर्वेराख्यानमुपजीव्यते।''

आचार्य दण्डी का आख्यान के विषय में मन्तव्य है कि –

तत् कथाख्यायिकाप्येका जातिः संज्ञा द्वयाङ्किता।

अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषश्चाख्यान जानयः।

अर्थात् कथा और आख्यायिका एक ही जाति के हैं उनमें कोई विशेष भेद नहीं है तथा इन्हीं दोनों भेदों में सभी प्रकार के आख्यानों का अन्तर्भाव हो जाता है।

संस्कृत आख्यान साहित्य विश्व साहित्य का अनूठा साहित्य है जिसकी मौलिकता, नैतिकता, मनोरंजकता और भावबोध के उन्मेष आदि से विश्व हतप्रभ है। यह परम्परा वेदों से ही हमें इन्द्र और वृत्र संगम आदि 30 आख्यानों के रूप में प्राप्त होती है। नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान आदि आख्यान इनकी एतिहासिकता को प्रतिबिम्बित करते हैं। आख्यान रूपी

महानदी से ही उपाख्यान रूपी धारायें निकलती हैं। वहीं आख्यान कभी उपाख्यान एवं उपाख्यान कही आख्यान में परिवर्तित होते देखे जाते हैं।

उपाख्यानमालिका डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा आख्यान शैली में निरूपित चार उपाख्यानों का संग्रह है। यह कथामालिका मिथक, इतिहास, पुराकथा एवं लोकजीवन को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करती है। विचित्रोपाख्यान, मायाविनी, अभिनवशाकुन्तलम् एवं मदनदहनम् नामक उपाख्यानों द्वारा संकलित यह उपाख्यानमालिका आधुनिक भाव बोध एवं सामाजिक सरोकारों से आप्लावित होती हुई जीवनमूल्यों के संरक्षण पर बल देती है।

'सूत उवाच' जैसी पौराणिक शब्दावली से प्रारंभ होती हुई यह पौराणिक यथार्थता एवं आधुनिकता की धाराओं में विकसित होती है। इस प्राच्य कथा शैली को पुनर्जीवित करने की प्रेरणा से ही शायद आदरणीय त्रिपाठी जी ने इसकी रचना की है। इसीलिए तो प्राच्य कथाओं के आधार पर आरम्भ होकर इन कथाओं ने अपना अलग ही पथ रचा। सर्वत्र लिट् लकार के प्रयोगों की बहुलता प्राचीन शैली की द्योतक है।

1. विचित्रोपाख्यान्

विचित्रोपाख्यान् में जीवन और उनके आसपास चल रहे क्रम–व्यतिक्रमों और उनसे उपजी परिस्थितियों के अनेक मार्मिक दृश्य अंकित हैं। फ्रांसीसी युवती मिनी का जरद्गव की खोज में आना उसी संस्कृति का परिचायक है जहाँ आज भी विदेशी जन भारत के रहस्यों एवं ज्ञान की खोज में भारत आकर यहॉ की संस्कृति से प्रभावित होते हैं। मिनी की माता शीवा और पिता के परस्पर परिचय, प्रेम, दाम्पत्य, गृहक्लेश, आपसी मतभेदों का यथार्थ चित्रण भी यह द्योतित करता है कि आध्यात्म प्रेमी लुइस और सुविधाभोगी शीवा का दाम्पत्य विपरीत विचारधाराओं का मेल था जो अधिक समय नहीं टिक सका।

अभावों के बीच भी लुईस के द्वारा मिनी की अच्छी परिवरिश उसके पितृ प्रेम को प्रदर्शित करती है वह कहती है– मेरे लिए उनके मन में बड़ा स्नेह था। उन्होंने पेरिस के सबसे अच्छे स्कूल में दाखिला कराया। स्वयं भूखे रहकर वे मेरे लिए महंगे कपड़े खरीदते। धीरे धीरे इस तरह के घर का काम–काज के जटिल जाल में उलझकर उनका शरीर क्षीण होता गया–

अतितरामासीत स्नेहस्तस्य मां प्रति। स मां पेरिसस्य उत्तमे विद्यालये

पाठयामास। स्वयं बुभुक्षितः मत्कृते भोजनं रक्ष। मत्कृते महार्धाणि वस्त्राणि क्रीतवान्। शनैः शनैरेतादृशगृहकार्य–जटिलजालजम्बाले प्रसक्तस्य तस्यशीर्यते स्म शरीरम् क्षयं याति स्म सत्वम्।

इस आख्यान में जरद्गव पुरातन भारतीय जीवनशैली, दर्शन, अध्यात्म का प्रतीक है। वह इसी खोज में लगा हुआ था जबकि मिनी आधुनिक पाश्चात्यशैली, जीवन दर्शन, ज्ञान–विज्ञान का प्रतीक बनकर उपस्थित हुई है। जरद्गव के पूछने पर वह कहती है–

यादृशो देशास्तादृशम् परिधानम्। निवसमित्वया सह। त्वत्साहचर्येण विपरिवर्तते मे मनः।

मिनी के चारित्रिक विकास में आधुनिक समाज में अकेली लड़की की समस्याओं को यथासंभव समग्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। समाज में सक्रिय व आराजक तत्वों की समाज में सांकेतिक अभिव्यक्ति है।

जरद्गव की अतिथिप्रियता ही उसे मिनी की रक्षा के लिए प्रेरित करती है। और मिनी प्राच्य–जीवन प्रिय जरद्गव को अपने पाश्चात्य प्रभाव से ढक लेती है। जरद्गव ने भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न रूपों में अपनी विचित्रमयी लीलाओं के माध्यम से इस उपाख्यान को ही विचित्र बना दिया है। उसके विचित्र आचरण और विचित्र कार्यो के द्वारा ही इस उपाख्यान का नाम विचित्रोपाख्यान उचित ही है।

मिनी एवं जरद्गव का बेमेल साहचर्य सर्वत्र चर्चित रहा – निखिलेऽपि भूमण्डले एतादृशस्यासामाञ्जससाहचर्यस्य चर्चा प्रसृता। नैष सम्बन्ध ाश्चिरस्थायीति जना मेनिरे।

लेकिन मिनी जरद्गव बार–बार लड़ते–झगड़ते अलग होकर भी एक दूसरे को तराशते एवं रक्षा करते हुए एक दूसरे पर प्रसन्न रहते हुए चिरकाल तक उस विचित्र प्रदेश में रहे–

एवमेव परस्परं तक्षन्तावपि परस्परं रक्षन्तौ, कलहायमानावपि परस्परेण नितरां प्रीयमाणौ तौ सुचिरं विचित्र देशे न्यवसताम्।

दाम्पत्य जीवन में लड़ाई–झगड़ा वैचारिक मतभिन्नता होते हुए भी दम्पत्ति किस प्रकार अपने रिश्ते को बचाये रखते हैं इसका आइना है जरद्गव एवं मिनी का चरित्र। तलाक के बढते प्रकरणों के लिए एक प्रशस्त प्रेरक पथ इस उपाख्यान से मिलता है।

मृणालिनी अथवा मिनी समाज सेविका के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है जिसकी प्रेरणा से गाँव को जोड़ने वाली सड़कें, नई वेशभूषा, नये साधन एवं खाद्यान्न से समृद्ध बाजार, पीने का स्वच्छ पानी, अस्पताल आदि से गाँव समृद्ध हो गए। नये शासन तंत्र ने लोगों के मन में मृणालिनी के प्रति अपार सम्मान झलकने लगा–

विचित्रदेशस्य सर्वं परिवर्तितम्, एकोजरद्गवस्तिष्ठत्यपरिवर्तितः। विचित्रदेशस्य स्वरूपं नवायेते। नवीनानि साधनानि, यंत्राणि, परिधानानि नवानि च वस्तूनि प्रतिहट्टं प्रत्यापणं सज्जितानि।

विदेशी शिक्षा एवं संस्कृति में पली बढ़ी एक लड़की किस प्रकार विचित्र देश की काया पलट करती है यह संकेत हमें सामाजिक सरोकार एवं सेवा के लिए दीपस्तम्भ का कार्य करता है। आज मृणालिनी रूप मनोभाव की रखने वाले राजनैतिक व कुशल समाजसेवी की आवश्यकता है।

मिनी के प्रभाव से यह सनातन व उदार संस्कृति भी बच नहीं पाती। यहाँ परिवर्तित होते संस्कारों तथा एक दूसरे से प्रभावित होती भिन्न संस्कृतियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति है। वही दूसरी ओर जरद्गव की कुटी के पास अजगर का डेरा, उसकी श्वास से वायुमंडल की मलिनता, गंगा के कलुषित होते जल, कालिंदी का काला जल इन सबका दोष भी लोग मृणालिनी को ही देते हैं और उसे देशद्रोहिणी तक कहने लगते हैं। उसके अथक प्रयास भी पश्चात्य प्रभाव के प्रदूषित वातावरण को नही सुधार पाते हैं।

2. मायाविन्युपाख्यान

मायाविन्युपाख्यान में विकास के नाम पर जो प्राकृतिक छेड़छाड़ हो रही है उसकी अभिव्यक्ति है। पुराण कालीन व्यक्ति जब एक लम्बे समय के बाद अपनी जन्मभूमि लौटता है तो उसे वही गाँव कितना बेगाना लगता है इसी भाव को इस आख्यान में स्वर दिए गए हैं।

सूतजी गाँव के परिवर्तन पर हैरान हैं। प्राचीन धरोहर की अनदेखी औरआधुनिकता की चकाचोंध उन्हें परेशान करती है। अब न तो गाँव में निर्मल जल के स्रोत हैं, न आकाश चूमते वन, उनके स्थान पर गर्मी में चटकी हुई सूखी धरती और ढेरों पक्के मकान हैं–

यत्र स्रोतांसि स्पन्दते स्म, तत्र शुष्का निदाधविशीर्णा धरणी, यत्र मनोदृश अनोकहा अभ्रं चुम्बन्ति स्म तत्र पक्वानि भवनानि भूयसा प्रादुर्भूतानि।

आस्था का प्रतीक मन्दिर और मालिनी नदी दोनों पर मनुष्य ने

खिलवाड़ की है। ग्राम देवी के स्थान पर ऊँचा मंदिर और मालिनी नदी पर बाँधा जा रहा बाँध प्रकृति के खिलवाड़ को व्यंजित करता है साथ ही प्राकृतिक शक्तियों के रोष की संवेदनयुक्त अभिव्यक्ति भी है।

मायाविन्युपाख्यान में गाँव के युवक को सिगरेट पीते देखकर सतयुगी सूत जी उसके दुर्गुणों को देखकर पछताते हुए रह जाते हैं। ग्राम युवक का सूत जी के प्रति उपेक्षित व्यवहार अतिथि–सत्कार की धज्जियाँ उड़ाता प्रतीत होता है। टेकरी के पीछे जब वहाँ कार्यरत इंजीनियर, कारीगर, मजदूर आदि के पहनावे और व्यवहार से वह उन्हें मनुष्य को अपने वश में करने में समर्थ दानवों की दुनिया कहते हैं–

आपादमस्तकं ते वस्त्रैराच्छन्नाः। अपरमिदमतिविचित्रं यत् तेषां कण्ठे न यज्ञोपवीदतान्यपितु कौपीनानि। तेषु घटिकायन्त्रेषु ते मुहुर्मुहुर्दृष्टिपातं कुर्वन्ति अन्यथा समयगति रूद्धा स्यादित्येव मन्वानाः।

मायाविन्युपाख्यान में मालिनी नदी का मानवीयकरण कर बाँध में त्रस्त नदी की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। उसके प्रवाह को कोड़े लगाते हुए बाँधने का प्रयास करते हैं तभी प्रकृति का रौद्ररूप भयानक भूकम्प के रूप में प्रकट होता है। अंत में वही मालिनी मायाविनी बनकर सूत जी को पत्नी के रूप में मिलती है।

आदरणीय त्रिपाठी ने उस स्वर को भी वाणी दी है जिसमें सूतजी की वेशभूषा के कारण आतंकवादी समझकर गिरफ्तार कर लिया जाता है अर्थात् सीधे सच्चे लोग फसाये जाते हैं।

स एवायम् अयमेव सः, स एवायमझीमुल्लाः। अनेनैवाकाण्डे बमविस्फोट विधाय मालिनी मर्दन महोद्योगभवनं नाशितम्। स एवायं दुरभिसन्धिसन्धानसूत्रधारः। गृह्यतामयम्।

मायाविनी के भी भिन्न–भिन्न कालानुसार अनेक रूप हैं। मार्ग में देवी निम्बवती की समाधि के उद्धरण द्वारा लेखक ने विदेशियों की पेटेण्ट नीति के दुष्परिणाम की ओर भी संकेत किया है। अपनी प्राचीन धरोहरों, चिकित्सा पद्धतियों का विदेशियों द्वारा किया जा रहा पेमेण्ट आज एक गंभीर समस्या बन गई है।

सभी पात्र किसी न किसी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हैं। वृद्ध व्यतीत होते हुए समय के रूप में, पाँचों युवक इन्द्रियों के प्रतीक, मायाविनी संस्कृति का प्रतीक हैं।

ग्रीष्मकाल में मायाविनी कटुवचनों से युक्त, क्रूरव्यवहारभाषी हो जाती है। वर्षा काल में अच्छी फसलों व सुख समृद्धि के आगमन में कोमलांगी, कोमलपन वाणी वाली बनकर समृद्धि की बहारें लेकर आती है। जिससे समस्त पर्यावरण शुद्ध व मनमोहक हो उठता है। चारों दिशाओं में आनन्द की लहरें दौड़ पड़ती हैं।

जब व्यक्ति इसके साथ व इसके सुख तथा भावनाओं, आत्मसम्मान को हानि पहुंचाते हैं तो यही सभ्यता, संस्कृति रूपी मायाविनी अपना यथार्थ क्रुद्धरूप को प्रकट कर देती है, जिससे कि भू–स्खलन तथा भयानक विनाशकारी जलप्रवाह आदि ताण्डव मचा देती है। जिससे क्रोध का भाजन भी उसी जनसमुदाय को बनना पड़ता है जो उस मायाविनी पर कुदृष्टि व अत्याचार कर उसके विनाश में आगे आकर बढ़–चढ़ कर भूमिका निभाते हैं।

प्रकृति की प्रतीक नदी का मार्ग बदलना, मंदिर से देवी का विस्थापन यह सब ग्रामवासियों की पुरा वैभव के प्रति उदासीनता दर्शाती है। नवीन वेशभूषा, नवीन टेक्नोलॉजी, नवीन निर्माण आदि को स्वीकार करना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन हमें अपनी विरासत का संरक्षण करना चाहिए।

3. अभिनवशाकुन्तलम्

इस उपाख्यान में अतीत और वर्तमान दोनों से साक्षात्कार कराते हुए उत्तरोतर आधुनिक विकासात्मक यात्रा के चिह्न प्रदर्शित किए गये हैं। युगों बाद लौटे सूत जी अपनी नवीन वेशभूषा द्वारा उत्पन्न मुनिगणों की आशंका का समाधान स्वयं करते हैं। इस उपाख्यान में अपने छात्र जीवन की सहज अनुभूतियाँ वर्णित हैं तो आत्मकथा की स्पष्ट झलक भी। अतीत और वर्तमान दोनों का साक्षात्कार भी मार्मिक स्वरों में कराया गया है।

प्रथमा की पढ़ाई के दौरान शाकुन्तलम् पढ़ने से उल्लसित एवं उत्साहित रघुवीर का मन साहित्य और यथार्थ में अन्तर न कर सका और गुरूकुल के प्रबन्धक साधुशरण जी की पुत्री शकुन्तला के रूप लावण्य में बहते हुए अंततः विवाहोपरान्त ही किनारा मिला।

अभिज्ञानशाकुन्तल की ही तरह यहाँ भी सैनिकों सहित राजा के आगमन से गुरूकुल की अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था के तहस–नहस होने का संकेत है। वहीं राजा की दृष्टि से शकुन्तला बच नहीं पाती। रघुवीर कहता है–

असौ राजा लम्पटः कामुकःशटश्च वर्तते। स शकुन्तलां तां बलाच्चिकीर्षति। प्रत्यक्षदृष्टमपि वृत्तमेतत् कस्मैं निवेदयामि। ये रक्षकास्त भक्षका जाताः।

राजा द्वारा शोषित शकुन्तला रघुवीर से ही सहायता माँगती है– रघुवीर! अतिमहति विपत्सागरे मग्नास्मि। मां त्रायस्व। तेन राजा बलादहं प्रधर्षिता।

यहाँ पर लेखक ने गुरूकुल और छात्रजीवन में अनेक रोचक और यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं। बड़े गुरूजी की उदारता, गुरू की आज्ञा की कटुता, शुक्ल गुरूजी की निरंकुशता, सहपाठियों के सहज व्यवहार, परस्पर द्वेष–स्नेह, स्वार्थपरता आदि की अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। किशोर मनोभावों की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। सूर्यग्रहण पर स्नान की सांस्कृतिक परम्परा के पालन न करने पर रघुवीर को शूद्र कहकर गुरू गुरूकुल से निष्काषित कर देते हैं।

यहाँ पर भावुकता एवं संवेदनशीलता को समय की उस पृष्ठभूमि में अंकित किया है जहाँ पर संस्कारित प्रेम में समर्पण, त्याग, एकात्मकता व प्रतीक्षा का प्रभाव आजीवन बना रहता है। रघुवीर के प्रतीक्षा के उपरान्त ही अपना सत्य एवं निश्चल प्रेम अंत में प्राप्त होता है। यहाँ पर अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तुति ही नवीन संदर्भो में उपस्थापित हुई है। वर्तमान छात्रावास का माहौल, पढ़ाई के साथ–साथ प्रेम प्रस्फुटन, सफल होने पर लम्बी प्रतीक्षा एवं जब स्वयं अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं तो पुनर्मिलन, इसी का प्रतिबिम्ब एवं सजीव अंकन अभिनवशाकुन्तलम् की पृष्ठभूमि बना हैं।

आचार्य त्रिपाठी जी नारी के प्रति हो रहे अत्याचारों एवं शोषण के विरोध एवं उसके स्वावलम्बी होने के स्वर को वाणी दी है। नारी की उस सहनशक्ति को उजागर किया है कि जो समस्त समस्याओं का सामना करने पर भी अपना आत्मविश्वास नहीं खोती और अपना लक्ष्य प्राप्त कर ही लेती है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक प्रश्नों व आग्रहों की संस्कृति को मुखापेक्षी मानते हुए उन्हें साहित्य में बृहत्तर संदर्भों के साथ जोड़ दिया है।

4. मदनदहनम्

इस उपाख्यान में प्रेम की बदलती जा रही परिभाषाएं व सीमाए गुंजायमान हुई हैं। प्राचीन गुरुकुल, आजादी के बाद के गुरुकुल एवं उनके अस्तित्त्व की समाप्ति का यथार्थ परिदृश्य यहाँ चित्रित हुआ है। यहाँ आधुनिक काल के उस प्रभाव को निरूपित किया गया है जहाँ पल–पल परिवर्तित होते परिवेश में यांत्रिक होता हुआ मानव का स्वभाव भी पल–पल बदल रहा है। साहित्य का प्रभाव साहित्य तक ही सिमट गया है।

इस उपाख्यान में शिव एवं उमा के पौराणिक चरित्रों को आधुनिक परिवर्तित परिवेश के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। शिव उमा का ऑफिस का दृश्य, उमा के घर के दृश्य एवं संवाद, प्राचार्य और उमा का संवाद, कुमारसंभव नाम से मन को झकझोरने की स्थिति नाटक का मंचन, आख्यान का अंतिम दृश्य सभी को लेखक ने अपनी कल्पना और संवेदनात्मक दृष्टि से जीवन्त कर दिया है।

उमा अपने ठुकराये हुए प्रेम को अपनी ताकत बनाती है और वर्तमान परिस्थिति के अनुसार आचरण करती है। शिव के विवाह प्रस्ताव को ठुकराकर वह इस बात की पुष्टि करती है कि वह किसी के अधीन न रहकर अपनी इच्छा से कार्य करेगी। जो व्यक्ति किसी कार्य की ईमानदारी व उसकी भावनाओं का सम्मान नहीं करता वह उसके प्रेम में अपना जीवन बर्बाद नहीं करेगी। एक स्वाभिमानी नारी के व्यक्तित्व की यहाँ शब्दाभिव्यक्ति हुई है।

उमा और शिव के जीवन के सिद्धान्त एवं उद्देश्य अलग–अलग थे एवं दोनों के मध्य वैचारिक मतभिन्नता के कारण ही उन दोनों का प्रेम एकाकार न हो सका। यहाँ वर्तमान अर्थ प्रधान युग में जीवन से विलुप्त हो रहे प्रेम को रूपायित किया है।

तृतीय एव चतुर्थ उपाख्यान क्रमशः अभिनवशाकुन्तलम् एवं मदनदहनम् में मानवीय प्रेम के शाश्वत स्वरूप की दो धाराओं का चित्रण है जो हमारे समक्ष प्राचीनता और नवीनता के संघर्ष को सहज उद्घाटित कर देती है। मदनदहन एवं अभिनवशाकुन्तलम् में जहाँ एक में साहित्य और जीवन एकाकार हो रहे है तो दूसरे में साहित्य और जीवन पृथक पृथक दिख रहे हैं। यहाँ संवेदनायें पुस्तकीय–वस्तु मात्र बनकर रह गयी है। एक में कालिदास की शकुन्तला जीवन में समाहित होकर उसे कृतार्थ कर रही है तो दूसरे में कालिदास के शिव कुमारसंभव में ही विलीन हो जाते हैं। वस्तुत साहित्य समाज का दर्पण भी है और साहित्य समय सापेक्ष भी है।

यहाँ पर जनसंवेदनाओं को, उनकी भावनाओं को उदारीकरण के नये परिवेश में समाज के जटिल और उनके स्तरीय अभिप्रायों को निरूपित किया गया है। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष, विस्मृत संस्कृति का चित्रण, प्रकृति पर किये जा रहे घातक प्रहारों, राजनैतिक सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक मान्यताओं, लोक संवेदनाओं, वैवाहिक सम्बन्धों, आदर्श प्रेम तथा रिश्तों पर प्रहार करती उसकी मार्मिक अनुगूँजों का स्पष्ट प्रस्फुटन इस संग्रह में हुआ है। इन

आख्यानों में निहित तथ्य अथवा मूल्य सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से वर्तमान समय में समकालीन समूह के सामाजिक जीवन को नियमबद्ध करते हैं।

इस प्रकार उपाख्यानमालिका में कवि का संपूर्ण ध्यान समाज की बढ़ती कुरीतियों व प्रकृति को प्रदूषण से मुक्त कराना था। इन्हीं के इर्द–गिर्द उपाख्यानों के समस्त पात्र अपने–अपने प्रतीकात्मक रूप में चित्रांकित किए गए हैं। समाज के सभी वर्गों का सफल रूपांकन एवं उनके समाधान उपाख्यानमालिका में प्राप्त होते हैं।

आधुनिक समाज में फैले हुए अनाचार अनैतिक कार्य, छल–कपट, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, प्रकृति पर प्रहार आदि सभी को अपनी कलम का विषय बनाकर उनके प्रति जनमानस को आगाह करते हुए स्वस्थ्य समाज की स्थापना पर बल दिया गया है। समाज की परिवर्तनशील धारा में सामंजस्यपूर्ण व्यवहार को दिग्दर्शित किया है यह कथायें निश्चित रूप से संस्कृत सर्जकों को नई–नई दिशाएँ प्रशस्त करेंगी।

संदर्भ

अष्टाध्यायी सूत्रपाठ 8/2/105
म. भा. आदि पर्व 2/241
काव्यादर्श 1/28
उपाख्यानमालिका पृ. 18
विचित्रोपाख्यान पृ. 26
विचित्रोपाख्यान पृ. 20
उपाख्यानमालिका पृ. 67
उपाख्यानमालिका पृ. 26
विचित्रोपाख्यान पृ. 28
मायाविन्युपाख्यान पृ. 34
मायाविन्युपाख्यान पृ. 37
मायाविन्युपाख्यान पृ. 39
अभिनवशाकुन्तलम् पृ. 59

प्राध्यापिका, संस्कृत
शासकीय के.आर.जी.महाविद्यालय,ग्वालियर

लोकधर्मी परम्परा के समीक्षक आचार्यराधावल्लभ त्रिपाठी एक विश्लेषण

डॉ. वत्सला

संस्कृत साहित्याकाश के विश्वविश्रुत, मूर्धाभिषिक्त, मूर्धन्यविद्वान, रचनाध र्मिता के निदर्शनभूत, कवि, लेखक, समीक्षक, नाट्यकार, गद्यकार, कथाकार, सम्पादक, साहित्य की हर विधा में निष्णान्त, नव काव्यशास्त्रीय अवधारणाओं के प्रतिष्ठापक, विभिन्न उपाधियों, अलंकरणों एवं पुरस्कारों से अलंकृत, राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित, कुशल प्रशासक, कुशल वक्तृत्व कौशल, वाग्मिता के अधिष्ठानभूत, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के कुलपति (अवकाशप्राप्त) प्रो. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने प्रातिम प्रकर्ष चाक्षुष प्रतिभा से संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने में मनसा, वाचा, कर्मणा संजुष्ट है। संस्कृत साहित्य को उन्होंने अभिनव आयाम प्रदान किया है।

'संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा' इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1986 में प्रकाशित हुआ और सुप्रतिष्ठित पत्रिकाओं में इसकी समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं। हिन्दी साहित्य के कई वरेण्य साहित्यकारों के आग्रह पर इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण 2000 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में महाकवि की पुस्तक का विश्लेषण करने का उपक्रम किया गया है। यह पुस्तक जब मुझे पुस्तकालय में मिली और मैंने इसका अध्ययन किया तो महाकवि कृत श्रम और चिन्तन से मन भावविभोर हो गया। त्रिपाठी जी ने अपने अनवरत अध्ययन, अध्यवसाय से इस श्रम–साध्य कृति की रचना की है। अपने इस ग्रन्थ में त्रिपाठी जी ने कवियों की लोकदृष्टि, लोकधर्मिता को उकेरा है। त्रिपाठी जी की कुछ कृतियाँ भी जनवादी दृष्टि से प्रभावित है यथा– गीतधीवरम्, जनतालहरी, रोटिकालहरी। इन्होनें प्रतिपादित किया है कि संस्कृत साहित्य में जो सामन्तीय कवि थे, उनके काव्यों में भी लोकदृष्टि, लोकधर्म का निरूपण मिलता है लेकिन सामन्तीय कवियों के समानान्तर ही कुछ कवियों का ऐसा वर्ग था जिनकी दृष्टि ही जनवादी, लोकवादी थी। इन

दोनों वर्गों के कवियों की जीवनदृष्टि व लोकदृष्टि को कवि ने रूपांकित किया है।

संस्कृत कवि राज्याश्रित थे और संस्कृत कविता का क्षेत्र राजे रजवाड़ों की भोग–विलासिता, युद्ध व वीरता के संकीर्तन, ऐश्वर्य, सम्प्रभुता, छद्‌म सौन्दर्य तक ही परिसीमित रहा है ऐसी सामान्य धारणा रही है। बल्कि यूँ कह सकते हैं कि संस्कृत कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि संस्कृत कविता में रामायण, महाभारत व पुराण गाथाओं के अतिरिक्त और क्या है? किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। प्रबन्ध काव्यों की रचना करने वाले प्राचीन कवियों ने भी अपने प्रबन्ध में यथावसर लोक तथा लोक–संवेदना दोनों को प्रकाशित किया है। अतएव संस्कृत कविता भी सदियों से लोकधर्मी परम्परा से सम्पृक्त रही है। संस्कृत साहित्यकोष के वरेण्य महाकवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, वाण, भवभूति, माघ, भारवि जैसे कवि भी लोकदृष्टि, लोकधर्मी कविता से अछूते नहीं रहे थे। ऐसा कहा जा सकता है कि राज्याश्रित होने के कारण इन कवियों को स्वयुगीन लोकदृष्टि, लोकसंवेदना को उकेरने का अवसर न मिला हों। तदपि इन कवियों की कविताओं, काव्यों में भी जनजीवन के यथार्थ का चित्रण उपलब्ध होता है। इन कवियों की कविता से अलग जनसामान्य के जीवन की समस्याओं, दुःख दर्द, कठिनाईयों, भुखमरी, गरीबी लाचारी से जूझते मनुष्यों, मजदूरों, अभावग्रस्त संघर्षरत जीवन का चित्रण करने वाली कविता की अलग परम्परा रही है जो कई कारणों से उपेक्षित रही और संस्कृत कविता की मुख्यधारा से जुड़ नहीं पायी। यह कविता लोक जीवन में रचे–बसे मानव प्राणी के समग्र जीवन के चित्र को उपस्थापित करती है। समाज के हर वर्ग से सीधा सम्पर्क करती है। यह कविता भोग–विलास के चाकचिक्य से कोसों दूर है। यह कविता समाज के मध्यमवर्ग, निम्नमध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के लोगों के दीनता, गरीबी, भूखमरी, अकाल, रोते–बिलखते बच्चों के जीवन का प्रत्याख्यान करती है। संस्कृत कविता की जो अभिजात्य परम्परा चली आ रही थीं उसी के समानान्तर लोकधर्मी परम्परा के कवियों द्वारा भी रचना की जाती रही लेकिन इन कवियों की कविताओं को वह स्थान नहीं मिला जो राज्याश्रित कवियों को मिला। इन कवियों को किसी प्रकार का संरक्षण न मिल पाने के कारण कुछ की रचनाएँ काल कलवित हो गयी लेकिन कुछ कवियों की कविताओं का थोड़ा सा अंश सुभाषित संग्रहों में संकलित मुक्तक के रूप में सुरक्षित है।

उपर्युक्त संदर्भ में त्रिपाठी जी ने दो प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित किया हैः–

1. 'लोकधर्मी कविता' तथा 'अभिजात्य वर्ग की कविता' के बीच अन्तः प्रक्रियात्मक सम्बन्ध।

2. अलंकारशास्त्र के आचार्य इस परम्परा को कहाँ रखते हैं।

इन बिन्दुओं पर चर्चा आगे की जायेगी। पहले त्रिपाठी जी ने काव्य या कला में लोकधर्मी तत्त्व का निरूपण किया है। भारतीय परम्परा में लोक ही सारे शास्त्रों, कलाओं, विद्याओं और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूलाधार है। शास्त्रकारों की धारणा है कि हर शास्त्र लोक के लिए लोक की पृष्ठभूमि को लेकर ही प्रणीत होता है। वह लोक को परिष्कृत और परिमार्जित भी करता है। इस तरह लोक और शास्त्र (काव्य) एक दूसरे के पूरक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–

'सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हों जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सकें। इसी लोक हृदय में लीन होने के दशा का नाम रस दशा है।''[1]

नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने लोक को अपने शास्त्र के लिए एक प्रमाण माना है।[2] उनका कहना है कि मनुष्यों के सारे कर्म, शिल्प, कलाएँ और निपुणता लोक पर ही आधारित है। यदि लोक का अस्तित्व नहीं रहेगा तो ये सब अस्तित्त्व विहीन हो जायेगें।

कर्म शिल्पानि शास्त्राणि विचक्षणबलानि च।
सर्वाण्येतानि नश्यन्ति यदा लोकः प्रणश्यति।।[3]

भरतमुनि का यह भी कथन है कि जड़–चेतन लोक की निर्मिति शास्त्रों से नहीं हो सकती है। लोक अपना प्रमाण स्वंय है।[4] लोक प्रकृति सारी कलाओं तथा काव्यों की वस्तु है।

प्राचीन कोश ग्रन्थों में लोक के मुख्य दो अर्थ बताए गये हैं:– भुवन या सारा संसार तथा जन या लोग–बाग। हिन्दी शब्द–सागर के अनुसार लोक का अर्थ संसार, जगत, स्थान, लोग, जन, समाज, मानव जाति चक्षुरिन्द्रिय आदि है। यूँ तो समूचे साहित्य और कला माध्यमों का सम्बन्ध लोक से है। लेकिन कला चिन्तन के संदर्भ में लोक की व्याख्या भरतमुनि के टीकाकार आचार्य अभिनव गुप्त ने की है। उनका मन्तव्य है कि जनपदों में निवास करने वाले लोग लोक हैं। लोक की विभिन्न प्रवृत्तियों का नाट्य जैसी कलाओं में ग्रहण करना लोकधर्मिता है।

'लोकोनाम जनपदवासी जनः। जनपदश्च देश एवं।'[5] अपने अभिनवकाव्यालंकारसूत्र में काव्य को परिभाषित करते हुऐ त्रिपाठी जी ने लिखा है–'लोकानुकीर्तनं काव्यं' लोक का अनुकीर्तन ही काव्य है। कवियों की लोकदृष्टि लोक का ही संकीर्तन करती है। लोक वही है जहाँ जीवन और जगत् अपने स्वाभाविक रूप में उपलब्ध हो। वही लोक का विराट रूप भी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं–''वस्तुतः लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सबकुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है–लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। 'लोक', लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथिवी और उसका व्यक्त रूप मानव–यहीं हमारे जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण इसकी मुक्ति का द्वार एवं निर्माण का नवीन रूप है।''[6] इसीलिए आचार्यगण लोक का स्वाभाविक स्वरूप ही स्वभावोक्ति अलंकार मानते हैं। लोक का सहज और प्राकृतिक रूप जो सत्य और शिव से संवलित है शिशुओं में, भोली युवतियों में, अभावग्रस्त और भौतिकता के चाकचिक्य से विरहित दीनजनों में अधिक सम्भावित है इसीलिए इनके चित्रण से ही कविता में स्वभावोक्ति आती है। लोकधर्मी काव्य परम्परा स्वभावोक्ति से ही अभिव्यञ्जित होती है। दण्डी, रूद्रट, भोज आदि आचार्य स्वभावोक्ति को अलंकार में परिगणित करते हैं। संस्कृत साहित्य की कोई भी परम्परा या युग लोकधर्मी परम्परा से अछूता नहीं रहा है। किसी भी प्रसंगवश उसका कविता के भीतर प्रत्यागमन सम्भव हुआ है।

संस्कृत कवि परम्परा में निम्नलिखित धाराएँ सहस्त्राब्दियों से सतत् प्रवाहमान रही हैं :–

1. अलंकृत शैली में रचे अभिजात काव्य की धारा जिसमें वक्रोक्ति और वैचिष्य का प्राधान्य है तथा जिसके रचनाकार रसिक नागरिक हैं जो प्रायः राजसभा से ही सम्बद्ध हैं।
2. लोकजीवन में रचे–बसे कवियों की काव्यधारा जिसमें स्वभावोक्ति और वस्तु जगत के यथार्थ का निरूपण अधिक महत्त्व रखता है जिसमें देश काल, समाज, परिवार की यथार्थता का निरूपण किया गया है।
3. सन्तो, परमहंसो या अवधूतों से सम्बद्ध काव्यधारा जो स्वभावोक्ति

या सहज को अपनाती है तथा लोक जीवन के सहज स्वरूप को अपना उपजीव्य बनाती है।

लोकधर्मी कविता को राज्याश्रय में विवर्धित होने वाले कविता के समानान्तर रखकर ही भलीप्रकार से समझा जा सकता है। लोकधर्मी कविता केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही नहीं बल्कि शिल्प (शैली), शब्द भण्डार, लोक में प्रचलित देशज शब्दों के प्रयोग, मुहावरे आदि की दृष्टि से भी काफी समृद्ध कविता है।

लोकधर्मी परम्परा और अलंकारशास्त्र के आचार्यों का मन्तव्य—इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि अलंकारशास्त्र के आचार्य इस परम्परा को कहाँ रखते हैं। इस संदर्भ में त्रिपाठी जी ने उल्लेख किया है कि छठीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य हुए संस्कृत काव्यशास्त्र के कतिपय मूर्धन्य आचार्यों—दण्डी, वामन, रूद्रट, भोज और राजशेखर में लोकजीवन की संस्कृत और प्राकृत कविता की स्वीकृति ही नहीं, उसके आधार पर काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के पुनर्व्यस्थापन या कोटियों की पुनर्व्याख्या का उपक्रम भी है। आचार्यों के मतों का विवेचन करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप से त्रिपाठी जी लिखते हैं कि कुल मिलाकर छठीं शताब्दी के बाद जो काव्यशास्त्र के आचार्य सिद्धान्तों का विवेचन कर रहें थे उनके सामने संस्कृत कविता की वह परम्परा भी थी जो जन जीवन से जुड़े कवियों ने विकसित की। ये आचार्यगण काव्यशास्त्र के विभिन्न उपादानों (भेद, प्रभेद, स्वरूप, लक्षण) के उदाहरणों संस्कृत और प्राकृत की इसी कविता को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वाग्भट उपमा के दोषों के विवेचन में लिंगवचन वैषम्य के उदाहरण में यह पद्य उद्धृत करते हैं—

परमातेव निःस्नेहाः परकार्यणीव शीतलाः।
सक्तवो भक्षिता राजन् शुद्धा कुलवधूरिव।।[7]

वामन ने माधुर्य गुण के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है:—

चलितशबरसेनादत्तगोशृङगचण्ड!
ध्वनिचकितवराहव्याकुला विन्ध्यपादाः।।[8]

लोकजीवन से जुड़े कवियों की कविता का आस्वाद राज्याश्रय में फले फूले कवियों के कविता के आस्वाद से भिन्न है। काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा भी द्वय कविताओं के आस्वाद के भेद को स्पष्टतः अंगीकार करती

है। एक कविता का संसार विलासिता में आकंठ निमग्न है तो दूसरी कविता विलासिता से परे, लोक चेतना से आपूर्ण है। समग्र संसार की हलचल से संवलित है अर्थात् समग्र विश्व से जुड़ी हुई है। एक में श्रृंगार को रसराज के रूप में प्रतिष्ठा मिली तो दूसरे को शांत रस में।

लोकधर्मी परम्परा का उद्‌भव व महाकवियों की लोकदृष्टिः– लोकधर्मी, लोकदृष्टि, लोकचेतना, लोकसंवेदना से सम्बद्ध परम्परा सर्वथा नयी नहीं है बल्कि वेदों से लेकर हर कालखण्ड में यह परम्परा विद्यमान रही है। आधुनिक काल में तो यह परम्परा हर विधा से जुड़ी हुई है। आधुनिक युग में तो कवि विशेषतया लोकजीवन से सम्बद्ध विषयों को ही अपने काव्य का विषय बना रहे हैं। वैदिक युग के सूक्त लोककाव्य एवं लोकगीतों से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। वैदिक काव्य में सारा अप्रस्तुत विधान वन, ग्राम, देहात, खेत या जंगल के पर्यावरण से आता है। कतिपय उद्धरण दर्शनीय हैः–

(i) शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्‌गलम्।
शुनं वस्त्रा वध्यन्तां शुनमद्रामुदिङ्‌गय।।[9]

(ii) कारूरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्द्रो परिस्रव।।[10]

वैदिक काल के बाद महाकाव्य युग या लौकिक काव्यों का पूरा फलक इस कविता से आप्यायित है। रामायण, महाभारत महाकाव्यों में लोकजीवन के विविध परिदृश्य विद्यमान हैं। वाल्मीकि विराट् जनसमाज को एक महासागर की तरह अपनी कविता में बार–बार प्रस्तुत करते हैं।

जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा।
बभूव राजामार्गस्य सागरस्येव निःस्वन।।[12]

उत्सवों व मेलों में गाँवों और जनपदों के लोग एकत्र होते थे। इस तरह के समाज का उल्लेख वाल्मीकि और व्यास की रचना में कई स्थलों पर आता है। आम जनता नटों, नर्तकों व गायकों की कला का आनन्द लेती थी। वाल्मीकि लिखते हैंः–

नटनर्तकसंघना गायकानां च गायताम्।
मनः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।[13]

कालिदास के ग्रन्थों – मेघदूत, कुमारसम्भ्व, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल

में वर्णित कविताओं में खेत–खलिहानों, गांवों और वन्य परिवेश की स्मृतियों, राजसी–वैभव व विलासिता के चित्रों या महान उदात्त चरित्रों के चित्रण के मध्य बारम्बार उद्‌भूत हुई है। मेघदूत से कतिपय निदर्शन अवलोकनीय हैंः–

1. **संघः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं (16)**
2. **गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम्।।**
   छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पयलावीमुखानाम्।।(27)
3. **प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्(31)13**

लोकजीवन की परम्परा के कवियों ने बाण को अपना आदर्श माना है। बाण के हर्षचरित व कादम्बरी दोनों ग्रन्थों में कहीं उनकी जन्मभूमि प्रीतिकूट का वर्णन है तो कहीं चांडालों की बस्ती, कहीं शबरों के कबीलों तो कहीं वन ग्राम का चित्रण है। बाण गाँव में पैदा हुए वहीं पले बढ़े। गाँव में उनकी मित्र मण्डली में 24 लोग थे। अपनी मित्र मण्डली के साथ बाण देश देशान्तर घूमते रहे इस कारण उन्होनें जन–जीवन को समीप से देखा था। इसीलिये अपने काव्यों में उन्होनें सम्पूर्ण भारत का चित्र उपस्थित किया है।

भारवि, माघ और श्री हर्ष के समानान्तर ही योगेश्वर और उनकी परम्परा के कवि भारतीय लोकमानस का यथार्थ चित्रण अपनी कविता में कर रहे थे। योगेश्वर लोकधर्मी संस्कृत काव्य परम्परा के प्रतिनिधि कवियों में से एक हैं। अपने ग्रन्थ में त्रिपाठी जी ने योगेश्वर और उनकी परम्परा के कवियों द्वारा आरेखित लोकधर्मिता का सांगोपांग विवरण दिया है। भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य के चौथे सर्ग का सारा दृश्य गाँव के सिवान (गाँव की सीमा) का है। धान के खेतों का विशद वर्णन भारवि के महाकाव्य में उपलब्ध होता है। माध के शिशुपाल से उन ग्रामांचलों का भौगोलिक ज्ञान भी सरलता से लगाया जा सकता है। जिनकी दृश्यावली को उन्होनें चित्रित किया है। माध ने राजसभा के वैभव और विलास में रसे पगे चित्रों के साथ ही लोकजीवन के चित्र को भी चित्रित किया है।

अभिजात्य महाकाव्यों की सरणि से अलग हटकर दो कवियों ने उच्च व मध्यम वर्ग के दोहरे जीवन पर व्यंग्य करते हुए बहुत ही बेबाक (स्पष्ट, यथार्थ) चित्रण किया है। ये कवि हैं दामोदर गुप्त व क्षेमेन्द्र। दामोदर गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'कुट्टनीमतम्' में वेश्याओं, कुट्टनियों तथा अमीरों के जीवन का चित्रण बड़ी जीवन्तता तथा यथार्थता के साथ किया है। इसी प्रकार क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में राजा, अधिकारियों, मंत्रियों, वेश्याओं, कुट्टनियों,

दलालों तथा विभिन्न काम–धन्धों में लगे लोगों के जीवन की वास्तविकताओं का सटीक चित्र खींचा है। क्षेमेन्द्र का साहित्य भण्डार विपुल है। कल्हण की राजतरंगिणी जो कि एक ऐतिहासकि महाकाव्य है। अपने इस महाकाव्य में कवि ने पीड़ित प्रजा, अकाल की विभीषिका में आम जनता की दुःखावस्था, राज्य में विपत्ति से जूझती प्रजाओं का चित्रण किया है। महाकाव्य के सातवें तरंग में राजा हर्ष की क्रूरता का लोमहर्षक चित्र उकेरा है। राजतरंगिणी के बाद जगडूशाहचरित महाकाव्य भी गुजरात के भीषण अकाल की घटनाओं का चित्र उपस्थित करता है। परवर्ती कवियों में नीलकंठ दीक्षित ने अपने महाकाव्यों गंगावतरण व शिवलीलार्णव में जनता के सामान्य जीवन का चित्र खींचा है।

भास, कालिदास के समानान्तर संस्कृत में लोकनाट्यों की परम्परा चली आ रही थीं। शास्त्रीय दृष्टि से लोकनाट्यों को उपरूपक की संज्ञा से परिभाषित किया गया। इन लोकनाट्य परम्पराओं का प्रभाव संस्कृत के प्रख्यातनाम नाटककारों पर भी पड़ा। रूसी समीक्षक सैर ब्रयाकोफ के अनुसार "कालिदास में धीवर तथा विदूषक जैसे पात्रों की परिकल्पना के पीछे यही लोकनाट्य परम्परा प्रभावी है। भवभूति और राजेश्वर दोनों पर लोकनाट्यपरम्परा का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है।"[13] राजेश्वर ने कर्पूरमञ्जरी में लोकनाट्य 'चर्चरी' के अन्तर्गत अनेक लोकनाट्यों को प्रस्तुत किया है।

लोकधर्मी काव्य परम्परा का अभिजात्य परम्परा से अन्तःप्रक्रियात्मक सम्बन्ध सदैव बना रहा। इसके अतिरिक्त अन्य काव्य परम्पराओं से भी सम्बद्धता रही। लोकधर्मी काव्य परम्परा के प्रभाव से संस्कृत कविता मे दारिद्रय वर्णन की एक रूढ़ि भी बनीं। इन कवियों को पहचानने और सराहने वाला भी एक वर्ग था। 'सुभाषितरत्नकोश' में अभिनन्द ने योगेश्वर की कविता के ऊपर कविता रचते हुए कहा है कि– "पहले बड़े–बड़े कवि हो गये पर नर्मदा और विन्ध्य के अंचल के निरीह लोगों, पुलिन्दों, मजदूरों और उनकी स्त्रियों के जीवन में बहते अंधड़ को अंधड़ जैसे शब्द देना तो योगेश्वर ही जानता है।"[14] 10वीं शताब्दी के बाद जब बाहरी परिस्थितियों के कारण यह परम्परा न्यून होने लगी तो इसे सुभाषित संग्रहों में सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया पर संस्कृत के सभी सुभाषित संग्रह इस परम्परा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। यह परम्परा दो सुभाषित संग्रहों में संग्रहित है–1. विद्याधर के सुभाषित रत्नकोश (1100 ई.) 2. श्रीधर के सदुक्तिकर्णामृत (1205 ई.) इसी

समय लिखित शाङ्र्गधर पद्धति (शाङ्र्गधर), सुभाषितावलि (वल्लभदेव), सूक्ति मुक्तावली (जल्हण) में भी यह परम्परा दृष्टिगत होती है। लोकदृष्टि, लोकधर्मिता पर आधृत मुक्तकों की लोकप्रियता के कारण राज्याश्रित कविगण ने उनमें वर्णित प्रसंगों, सन्दर्भों को अपनी रचनाओं में विविध रूपों में अपनाया। योगेश्वर जैसे समर्थ कवि ने लोकजीवन के जीवन्त चित्रण के द्वारा पूरी संस्कृत काव्यधारा को नवचेतना से स्फूर्त किया।

संस्कृत की लोकधर्मी काव्य परम्परा राज्याश्रित शास्त्रीय परम्परा से कई दृष्टियों से भिन्न थीं। लोकधर्मी परम्परा लोक के जन सामान्य के जीवन को चित्रित करती है जो अभिजात काव्यधारा में वर्णित नहीं है। लोकधर्मी परम्परा के कवियों की जीवनदृष्टि अभिजात काव्यधारा (शृंखला) के कवियों से एकदम अलग है। लोकधर्मी कवि जीवन वास्तविकताओं का बखूबी वर्णन करते हैं। अतः उनके काव्यों का रसास्वाद भिन्न प्रकार का होता है। जो शांत रस की काव्य–परम्परा से कहीं न कहीं जुड़ता है। यह कविता भोग–विलास में आंकठ निमग्न होने के स्थान पर अनासक्ति, निर्वेद, विवेक और अर्निलिप्तता को जागृत कराने वाली है। डॉ. नामवर सिंह का मत है कि "इन कविताओं में व्यक्ति" जीते–जागते मूर्त विशेष को महत्व मिला है – सम्भवतः पहली बार। यह एक नये यथार्थवाद का उदय है। संस्कृत कविता के परिपाटी विहित 'आदर्शवाद' से भिन्न"।[15]

डॉ. राधा वल्लभ त्रिपाठी जी ने लोकधर्मी परम्परा के प्रमुख कवियों के साथ ही अज्ञातनाम कवियों को भी सूचीबद्ध करते हुए प्रत्येक कवि के समय, कवि या राजा के साथ उनकी समकालीनता तथा उनके ग्रंथ का उल्लेखकर उनकी कविताओं का उदाहरण देते हुए उनके पद्यों का भावानुवाद भी प्रस्तुत किया है। त्रिपाठी जी ने लगभग 60 कवियों का उल्लेख किया है जो इस परम्परा से सम्बद्ध थे। कतिपय नाम इस प्रकार है :– धरणीधर, लंगदत्त, लक्ष्मीधर, दुर्गत, केशट आदि। त्रिपाठी जी ने अपने ग्रंथ में अभिजात्य कवियों के ग्रंथों में उद्‌घृत लोकधर्मी परम्परा के छन्दों तथा लोकधर्मी परम्परा के कवियों के ग्रंथों से उदाहरण को गृहीत कर छन्दों की एक वृहत–शृंखला ग्रंथ में संग्रहीत की है।

ग्रंथ के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा एक जीवन्त परम्परा रही हैं जिसे अधुना जनवादी परम्परा कहा जाता है। महाकवि ने इस परम्परा के हर आयाम पर प्रकाश डालते हुए लोकधर्मिता का सांगोपांग निरूपण प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ

1. रचना – अंक – 103 पृष्ठ–78
2. संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा – पृष्ठ–10
3. तत्रैव – पृष्ठ–10
4. तत्रैव – पृष्ठ–10
5. तत्रैव – पृष्ठ–11
6. तत्रैव – पृष्ठ–11
7. तत्रैव – पृष्ठ –31
8. तत्रैव – पृष्ठ –32
9. तत्रैव – पृष्ठ –93
10. तत्रैव – पृष्ठ–99
11. तत्रैव – पृष्ठ–36
12. तत्रैव – पृष्ठ–37
13. मेघदूत – पूर्वमेघ – 16,27,31
14. संस्कृत कविता की लोकधर्मी परम्परा– पृष्ठ–6
15. तत्रैव – पृष्ठ–6

व्याख्याता (संस्कृत)

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ – 326001

मोबा–9414750220

आचार्य त्रिपाठी जी की कतिपय कृतियों का अभिनव वैशिष्ट्य

डॉ महेश कुमार द्विवेदी

पराधीन भारत की दासता से मुक्त हुये हम लोग उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनें गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को पुनः नये भारत के उदय के रूप में नये तरीको से व्यवस्थापित करने लगे। भाषा अपने प्राचीनतम स्वरूप एवं शास्त्रीय पद्धति की भाषिक कठिनाइयों के चलते आम लोगों से दूर होती चली गयी। इस हेतु इसे भौतिक धरातल पर लाने के लिये हमारे मनीषी एवं आधुनिक शिक्षण संस्थानों के संस्कृत विभागों द्वारा इसे एक विशाल हिन्दीभाष्य से व्यवस्थित एवं सम्पादित कर संस्कृत–साहित्य की अभिनव संरचना को नये आयामों के साथ प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् समस्त शैक्षिक संस्थानों में संस्कृत विषय को अनिवार्य रूप से पढ़ने–पढ़ाने के लिए इसके हिन्दी रूपान्तरणों, अनुवादों की विशेष आवश्यकता की सम्पूर्ति को उच्च शैक्षिक संस्थानों ने पूरा किया। इसी कड़ी में आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा समस्त संस्कृतसाहित्य जन–अभिरूचि को केन्द्रित कर उसके समस्त पक्षों को अनुसन्धानात्मक तरीकों एवं कतिपय ग्रन्थों को हिन्दी–आंग्ल–संस्कृत त्रिभाषा के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया गया। यह उनका प्रयास अवश्य ही अतीत कालिक आवश्यकताओं से वर्तमानकालिक जनमानस को चिरपरिचय के लिए स्तुत्य है। यह एक ऐसा मोड था जब पुनः इस शिक्षा को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया जा रहा था। ऐसे में ये सभी ग्रन्थ एवं इनका विस्तृत हिन्दीभाष्य नयी पीढी के लिये अभिनव वरदान सिद्ध हुआ। इसकी नवीन दिशा एवं दशा की सख्त आवश्यकता भी थी। चार प्रमुख कृतियों का वैशिष्ट्य यहाँ प्रस्तुत है।

कविद्वादशी

आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा सम्पादित काव्यसंकलनात्मक कृति में बारह

प्रमुख कवियों की आँग्ल–संस्कृत में निबद्ध नई कविताओं का संग्रह है। प्रस्तुत संकलन विश्वसंस्कृतसम्मेलन (एडिनवरानगर में आयोजित) विश्वस्तरीय कविसम्मेलन में पठित कविताओं का अनूठा काव्यसंग्रह है जो 2006 में संस्कृत –परिषद्, सागर द्वारा प्रकाशित है। इसमें आचार्य त्रिपाठी जी की ध राशिशुनर्तनम् (Dans of earth- the child) कृष्टि (The- culture) मृगतृष्णा (The- search) संयोग (it was just by chance) रसवती (The-kitchen) कुल पांच कवितायें संकलित हैं।

समग्र ग्रन्थ काव्यसम्मेलनों की आधुनिक झाँकी को प्रस्तुत करता है। यह काव्यसंकलन, राजदरबार से लेकर लोकसमाज की श्रव्यातुरता को बलात् अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ प्रतीत हो रहा है। ऐसे मे काव्यों की वह पंक्तिमाला जो वस्तु के विशेष पक्ष की संवेदनाओं को व्यक्त कर रही होती है तब दर्शकों की श्रव्यदक्षता उन्हें रसविभोर कर देती है।

कवि ने अपनी प्रथम कविता (धराशिशुवर्तन) में पृथ्वी की शिशुत्व रूप में नर्तन लीला को अभिव्यक्ति दी है। एक शिशु का बाल्यपन जिस उतार चढाव से संपृक्त होता है वही धराव्यापी सुख, हाहाकार, कन्दन की करुणस्थिति तथा अन्तर्निहित भावों को मानवीयदृष्टिकोंणों कवि ने निरूपित किया है। ध रा पर व्याप्त साम्प्रतिक घटनाक्रम को शिशुनर्तन बताते हुये कालक्रम से पुनर्रश्मि की प्राप्त्याशा में धरा का प्रसन्न होकर खेलना, मानवता के तमाम नैराश्य पक्षों को सहन करते हुये उसे एक नयी किरण के समुन्मेश की अवश्यम्भावी प्राप्ति को रेखांकित करती है।

यह कविता एक ऐसे दौर से गुजर रहे देश को सजग करती है जहाँ शिक्षित बेरोजगारों की विशालश्रृंखला अपना मुँह फैलाये दिनो दिन व्यापक होती जा रही है। एक ओर नयी किरण की प्राप्त्याशा में मानव की प्रसन्नता तो दूसरी ओर हकों को न प्राप्त होने की खिन्नता ऐसी दशा में मानवनिहित स्वकार्यव्यापार की दक्षता रूपी अभिनव विधि हम काव्य की पंक्तियों से प्राप्त करते है–यथा

निःश्वासा बहुसीत्कृतानि रुदितं दुखं च तत् दारुणम्,
हाहाकाररवाश्च घोरविकटास्तत् क्रन्दनं शोकजम्।
उच्छ्वासाः बहवाः क्षणाः सुखधनाः आनन्दरूपायिताः,
सर्वं चैतदहो धराशिशुकृते सम्मिश्रितं नर्तने।।

इसी तरह आचार्य जी की द्वितीय कविता जो "मृगतृष्णा" के नाम से मुद्रित है। इसमें नगरों एवं शहरों में व्याप्त साम्प्रतिक मृगतृष्णा की वास्तविकता को रेखांकित किया गया है। यह कविता आज के युवावर्ग के लिये एक संदेश है। मृगतृष्णा की अन्तर्व्याप्ति को कविवर ने एक नया प्रयोग दिया है। इसी तरह कवि की "संयोग" एवं "रसवती" कवितायें भी उनके काव्यसृजन की अभिनवात्मक समसामयिक कथन की आग्रहता को अभिव्यक्त करती है। इस संकलन में अन्यान्य कवियों की समसामयिक कवितायें एवं उनके अध्ययनलाभार्थ कवि के अभिनवात्मक कृतित्व एवं व्यक्तित्व को ध्वनित करता है।

उपाख्यानमालिका

साहित्य संस्कृतभाषा का हो या विष्व के किसी अन्य भाषासाहित्य का, कविवर नें जिन लौकिक तथ्यों, सामाजिक बुराइयों, अन्धविश्वासों, एड्स जैसी महामारी, प्रेमविवाह में पूर्वापरी परीक्षण रखनें का जो लोक को सन्देश दिया है वह आधुनिकतम लोकव्याप्तियों में सर्वथा उपादेय है और साहित्य में अभिनव प्रयोग भी। लालित्यपूर्ण सरस भाषा, पठन प्रेरक रोचकता सदृश भाव पद पद पर द्रष्टव्य हैं। आख्यान–उपाख्यान से परिपूर्ण वैदिक लौकिक साहित्य जो निगमागम के अन्तर्निहित भावो को संकेकित करता है। इसमें विचित्रताओ के पीछे छुपे हुये रहस्यों को कवि ने उन्मीलित किया है।

दुर्गासप्तशती के नवें अध्याय में समागत श्लोक के आधार पर– (विचित्रमिदमाख्यातं भगवन भवता मम) सम्भवतः यह उपाख्यान लिखने की अन्तःप्रेरणा मिली होगी। इसके अन्तर्गत उन्होने आख्यानोपाख्यानों को प्रस्तुत करने की वही पद्धति जो सूत एवं मुनिजनों के वार्तालाप से प्रारम्भ होती है स्वीकार की है।

संक्षिप्त कथावस्तु के आधार पर फ्रान्स देश की निवासिनी मिनि जो अपने आप में एक विचित्र कन्या है उसकी विचित्रता का ही चित्रण भारतीय आश्चर्य के परिप्रेक्ष्य में कविमहोदय ने किया है। इसके अन्तर्गत चार अध्याय हैं। एक अध्याय को पढने के उपरान्त अगले अध्याय की पठन समीहा को स्वतः जागृत कर देता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे व्याप्त बिन्दुओं को नव आयाम प्रदान करना ही कवि का वैशिष्ट्य है। पारम्परिक वस्तु को आधुनिक समय की आकांक्षाओ के अनुरूप ढालना ही अभिनव प्रयोग कह सकते हैं। उसे कवि की यह कृति चरितार्थ कर रही है। यह कृति चार प्रमुख आख्यानों

मे विभाजित है। इसमे द्वितीय उपाख्यान मायाविनी नाम से है। इसके अन्तर्गत लेखक ने संसार मे हो रहे बदलाव की चकाचौंध को अभिनव कथ्य से निबद्ध किया है।

वर्तमान प्रशासनतंत्र, पर्यावरण प्रदूषण का भयंकर परिणाम, बदलते परिवेश में मायाविनी सा प्रतीत होने वाला परिदृश्य आदि प्रसंगो में रोचक उपाख्यान प्रणयन कवि का अभिनव प्रयोग है। इसमे तृतीय उपाख्यान "अभिनव शाकुन्तलम्" में स्पष्ट है कि यह कालिदास की शाकुन्लम् का ही अभिनव प्रयोग है। यहाँ आचार्य जी नें शाकुन्तल का श्रृंगार आज के परिप्रेक्ष्य में कितना हृदयाग्राही है उसे अपनी नवीन वैचारिक दृष्टि से कथप्रवाह की रोचकता में समावेश कर इस काल के नायक–नायिका प्रेम की प्रविष्टि कराकर उसे नया प्रयोग प्रदान किया है।

भाषा का साहित्यिक स्वरूप इतिहास एवं भूगोल के साथ–साथ परिवर्तनशील होता है। यह एक ऐसा साहित्य है जो सदैव नये आयामों के सृजन का पारम्परिक मार्ग प्रशस्त कर देता है; कवि ने उसे यहाँ राशा है। उसे एक बाणसदृश वाणी मे निवद्ध कर समाज को शाकुन्तल की वास्तविक गाथा का आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है। यही तो कवि की मौलिक उद्भावना है जो आद्योपान्त "उपाख्यानमालिका" में सहर्ष अवलोकन का पात्र बनाती है। मेरा ऐसा विचार है कि कवि को इसका नामकरण भी नया एवं आकर्षक रखना चाहिये। यह केवल उपाख्यान नहीं वल्कि ऐसा उपन्यास है जो समाज के अन्तर्विस्तार के नवीन आयाम सहेजे है।

संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास

प्रस्तुत ग्रन्थ कवि का प्रथम अनंसन्धानात्मक ग्रन्थ है जो 1976 में प्रकाशित है। यह संस्कृतसाहित्य के उन तमाम कवियों की एकत्र जानकारी प्रस्तुत करता है जिन्हें जानने की समस्त संस्कृतानुरागियों की चाह रहती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने आदिकवि वाल्मीकि से प्रारम्भ कर महाभारतकालीन भास, कालिदास, अश्वघोश, बाणभट्ट, हर्षदेव, भारवि, विशाखदत्त, भर्तृहरि, भवभूति, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, विल्हण, कल्हण एवं नीलकण्ठ दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ जैसे उत्तरयुगीन कवियों की मान्यतायें, आदर्श, सामाजिकजीवन, सांसारिकता, प्रकृतिपर्यवेक्षण, पाण्डित्य, संवेदना और सौन्दर्य जैसे तात्विक अभिनिवेश के साथ सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया है।

प्रायशः संस्कृत के इन सभी कवियों का जीवनवृत्त या व्यक्तित्व कुछ

को छोडकर शेष का कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है लेकिन उनकी रचनाओं के गहन अध्ययन एवं प्रमाणित साक्ष्य–सामग्री के साथ आपने इस ग्रन्थ में जिन परतों को नवीनता के साथ उन्मीलित किया है वह उनका विलक्षण एवं नवीन प्रयोग है।

प्रस्तुत कृति में प्रत्येक कवि का समग्र जीवनदर्शन साहित्यिक प्रयोग एवं परिष्कृत व्यक्तित्व का वास्तविक अनुसन्धान कवि के अन्तर्मन की अभिरुचियों को प्रमाणित करता है। कवि ने बाण कवि की काव्य सम्बन्धी नवीन मान्यताओं को इस प्रकार चिन्हित किया है–"बाण काव्य में नवीनता एवं मौलिकता को अत्यधिक महत्व देते हैं वे उसी गद्य को उत्कृष्ट मानते है जिसमें सुन्दर वर्णविन्यास के द्वारा अभिनव अर्थ का प्रतिपादन हो। उनके मतानुसार पदशैया सुखप्रबोधललिता होना चाहिये जो महाभारत की कथा के समान जगतत्रय में व्याप्त हो जाये। काव्य का मर्म सारी जनता को सहज ज्ञेय हो"। बाण स्वयं ही इस मान्यता का पालन नहीं कर पाये"। इसका उत्तरोत्तर कवियों ने अपनें ग्रन्थो में पालन किया है। आचार्य सदृश कवियों ने अपनी कृतियों में सहज एवं बोधगम्य करके इसे एक नव आयाम प्रदान किया है। प्रस्तुत कृति में अभिनव पक्ष को निम्नांकित बिन्दुओं के तहत स्पष्ट करनें का प्रयास किया है–

वाल्मीकि – प्रेरणास्रोत, आभिजात्यजीवन, मान्यतायें, जीवनदृष्टिकोण, संवेदना और सौन्दर्य।

भास– सांस्कृतिक परिवेश, प्रेरणास्रोत, धार्मिक मान्यतायें, रुचि, जीवनदर्शन आदि

अश्वघोश– जीवन, आदर्श, स्वभाव, पाण्डित्य, पर्यवेक्षण, काव्यप्रतिभा, संवेदना आदि।

कालिदास– समकालिक परिस्थितियॉं, जीवन, स्वभाव, पाण्डित्य, प्रतिभा, तत्वबोधादि

बाण– जीवन, वेष, मान्यतायें, नारी के सम्बन्ध में, आदर्श, आस्था, स्वभाव आदि।

हर्ष– जीवन, स्वभाव, अभिरुचि, बौद्धिकव्यक्तित्व, काव्य प्रतिभा, सौन्दर्य आदि।

भारवि– नैतिक मान्यतायें, जीवनदर्शन, पाण्डित्य, सौन्दर्यबोध आदि।

माघ– पृष्ठभूमि, आदर्श, नैतिकमान्यतायें, आस्था, स्वभाव, पाण्डित्य, आदि।

विशाखदत्त– जीनव, नैतिकमान्यतायें, प्रतिभा, संवेदना, सौन्दर्यदृष्टि, उपसंहारादि।

दण्डी– आभिजात्य, दृष्टिकोण तथा मान्यतायें, आस्था, प्रतिभा, कल्पना आदि।

इसी प्रकार भवभूति, भर्तृहरि, राजशेखर, श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, विल्हण, कल्हण, नीलकण्ठदीक्षित, पं0 जगन्नाथ तक के समस्त साहित्यिक पक्ष को एक नवीन दृष्टि दी है (विशेष रूप से दृष्टव्य मूल ग्रन्थ) कवि ने प्रारम्भिक युग से लेकर मध्य एवं उत्तरयुग के उपर्युक्त सभी प्रमुख कवियों के समग्र व्यक्तित्व पर प्रामाणिक विस्तार कर कृति को सर्वथा नवीनता प्रदान की है। इसके अन्तर्गत सौन्दर्यबोध, कविजीवन एवं कृतियों मे ध्वनित कविसम्बन्धी कतिपय विचारों की नवीन प्रयोग पद्धति भी दर्शनीय है। कवियों का प्रेमदर्शन और सौन्दर्यबोध ा, अन्तर्व्यक्तित्व, कृतियों में ध्वनित अन्तर्भावादि पक्षों का अनुसन्धान उनकी सर्वथा नवीन साहित्यमीमांसा है।

संस्कृतसाहित्य का अभिनव इतिहास

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वारा सन् 2001 में प्रकाशित प्रथम संस्करण के रूप में यह इतिहास ग्रन्थ सर्वथा नवीन एवं आम संस्कृत प्रेमी की नव्य आवश्कतायों के अनुरूप लिखा गया है। विश्वभाषासाहित्य में आदि भाषा के रूप में मान्य यह संस्कृत भाषा जिसकी विशालतम परम्परा जिसे साहित्यिक इतिहास के रूप में निबद्ध करना महनीय एवं श्रमसाध्य परिणाम है। वैसे तो संस्कृत साहित्य पर अनेक इतिहास ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं पर कविवर ने अपने इस ग्रन्थ में, जैसा कि नाम से स्पष्ट है अभिनव तथ्य जोडे हैं। यहॉ वैदिक काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक लिखे गये समस्त साहित्य को विवेचनापूर्ण शैली में निबद्ध किया है। इसमें साहित्य के विभिन्न प्रस्थानों परम्पराओं का पूर्ववर्ती– परवर्ती स्वरूप उद्‌भव एवं स्थापना समयानुरूप शताब्दियों मे परिवर्धित होती रही गतिविधियों का लेखा–जोखा कृतियों एवं कवियों का सांगोपांग विवरण उल्लिखित है।

अतीत भारत के उत्थान काल की सम्पूर्ण साहित्यिक विरासत क्रम उन्नत–अवनत काल से गुजरती हुयी विगत शताब्दियों से बीसवीं शताब्दी तक निर्बाध गति से चली आ रही है। उसका समग्र सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक

स्वरूप हम इस ग्रन्थ में एक साथ देख सकते हैं। पूर्ववर्ती इतिहासविदों द्वारा जो पक्ष समयाभाव के कारण अनुद्घाटित रहे हैं, उन्हें भी आचार्य श्री ने सबहुमान उद्घाटित किया है।

साहित्य विस्तार का स्वर्णिम काल 1200 ई0 से लेकर वर्तमान तक सर्वथा नयी व्याख्या–पद्धतियों एवं नई प्रविधियों के साथ होता आया है। बीसवीं शती के महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्री जिनमें पर्वतीय विश्वेश्वर पाण्डेय, रेवा प्रसाद द्विवेदी, गोविन्दचन्द्र पाण्डेय आदि दिग्गज विचारक उत्पन्न हुए उनका भी विशेष विवरण द्रष्टव्य। उन्नीसवीं एवं वीसवीं शताब्दियों में पुनर्जागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन, योरोपीय संस्कृति आदि के सम्पर्क से संस्कृत साहित्य में रचना के नये क्षितिज सामने आये। जिन्होंने इस धरती के साहित्य को पुनः उर्वर वनाया। यह इतिहास ग्रन्थों मे एक नयी कडी जोडता है। कतिपय नवीन आयाम जो वीसवीं शताबदी के अतीत को भी सहेजे है उन्हें हम निम्नांकित बिन्दुओ से समझ सकतें हैं।

1 **उद्भव**– संस्कृत साहित्य के स्रोत ग्रन्थ वेदोपवेदों में विविध प्रस्थानकों का समुन्मेष विभिन्न सूक्त संवादो में समाविष्ट हैं। जहाँ से प्रारम्भ होती है संस्कृत साहित्य की अजस्रधारा। उसी के सार्वभौम वर्णन से आरभमाण यह इतिहास ग्रन्थ वैदिक साहित्य, पुराणसाहित्य तथा तदुपजीव्य महाकाव्य एवं नाटकों के उद्भव काल के साथ निरूपित किया है।

2 **विकास एवं विस्तार**– इसमें समस्त विधाओं–महाकाव्य, नाटक, मुक्तक, लघुकाव्य की विकासयात्रा का भव्य वर्णन है। स्तोत्र, सप्तशती तथा सुभाषितों का भी अभिनव संग्रह है।

3 **महाकाव्य का उत्कर्षकाल**– इसके अन्तर्गत कवि, काव्यकृति, जीवन, काल, विषयवस्तु, चरित्रचित्रण, रस वर्णनकला एवं भाषाशैली, अलंकार, छन्दोयोजना, पाण्डित्य, सन्देश सूक्तियों आदि का विस्तृत वर्णन दृष्टव्य है।

4 **समृद्धिकाल**– संस्कृत नाटकों की समृद्धि परम्परा का रूपकभेदपुरस्सर विवेचन लेखक का अभिनव विन्यास है।

5 **परवर्ती साहित्य परम्परा**– इसके अन्तर्गत कथासाहित्य, आख्यान, गद्यविकास, ऐतिहासिक महाकाव्य, परवर्ती महाकाव्य, नाट्यपरम्परा जो विभिन्न शताब्दियों से होती हुयी बीसवीं शताब्दी तक विस्तारित हैं उसकी सम्पूर्ण सार्वभौमिक जानकारी ग्रन्थ में निहित है। इस साहित्यिक विवेचना से परिपूर्ण यह इतिहास ग्रन्थ उनका एक अभिनव शैली का प्रयोग है।

निष्कर्ष

इसके लिए आचार्य त्रिपाठी जी निःसंदिग्ध हमारे आधुनिक साहित्यविदों में अनन्य सिद्ध होते हैं। इनके द्वारा विरचित समस्त ग्रन्थ अपनी एकअत्याध ुनिक शैली से ओतप्रोत हैं। यह शैली जहाँ एक ओर कठिन से सरल की ओर ले जाती है वहीं दूसरी ओर अपनी समकालिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत भी है। ये ग्रन्थ नव–युवकचेतना के प्रेरणास्रोत होगें एवं इनका साहित्य नव–भारत के निर्माण में सार्थक होगा। ऐसा मेरा मानना है। इस प्रसंग में मैंने चार प्रमुख कृतियों के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अभिनवप्रयोग हेतु चयनित चारों कृतियाँ जिनमें कवि–द्वादषी का सम्पादन एवं प्रकाशन सन् 2006 में हुआ। इसमें कविवर ने नये परिवेष को उजागर करती नयी कविताओं का संकलन किया है। इसमें प्रयोग की दृष्टि से अभिनव विकास को बताना ही मेरा उद्देश्य है।

द्वितीय कृति उपाख्यानमालिका है जो उनका एक मौलिक ग्रन्थ है। यह संस्कृतसाहित्य को नई विचारधारा के माध्यम से आमजन तक पहुँचाने का नवीनतम उपन्यासात्मक प्रयोग है। यह बहुत ही रोचक एवं पारस्परिक कथासाहित्य की चतुर्दिक व्याप्त तस्वीर को प्रस्तुत करता है। उनकी तृतीय कृति संस्कृतकवियों के व्यक्तित्व का विकास मेरी समझ में संस्कृतसाहित्य के मूर्धन्य विख्यात उन समस्त कवियों का जिन्हें हम उनकी प्रख्यात कृतियों के माध्यम से जानते आ रहे हैं। उन सभी का सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत करने वाला यह आचार्य श्री का सर्वथा नवीन ग्रन्थ है। जो एक साथ सम्पूर्ण व्यक्तित्वपरक जानकारी समेटे है। इसमें कवियों के उस आभास रूप को भी व्यक्त किया गया है जिन्हें हम कृतियों के अध्ययन के दौरान नहीं पहचान पाये । इस दृष्टि से इसे अभिनवप्रयोग कहा गया है।

चौथा ग्रन्थ है अभिनव संस्कृत साहित्य का इतिहास वैसे तो संस्कृतसाहित्य के अनेकों इतिहास ग्रन्थ हैं पर यह अपनी विशिष्ट नूतन शैली से सम्बद्ध है। इसमें साहित्य का उत्कृष्टतम स्वरूप परिवर्द्धन का कालचक्र ऐतिहासिक दृष्टि से समाकल्पित है। इसमें वैदिक काल से लेकर वींसवीं शताब्दी तक का पारस्परिक ऐतिहासिक विवेचन संग्रथित है। कविवर ने इसमें सर्वथा नई परिपाटी से समग्र साहित्य को संजोया है। यह उनका एक अभिनव प्रयोग है। उपर्युक्त समस्त कृतियों में लेखक की अपनी विचारधारा एवं नई सूझबूझ का प्रासंगिक एवं सार्वभौमिक वर्णन निहित है। इस संगोष्ठी के माध्यम से उक्त चारों कृतियों के अभिनव वैशिष्ट्य पर चर्चा ही मेरा ध्येय है।

श्री एकरसानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय,
मैनपुरी (उ0प्र0)

संस्कृत काव्य विधाओं को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का योगदान

डॉ. नौनिहाल गौतम

वेद विश्व के प्राचीन ग्रन्थ हैं। वे देवों के काव्य कहे जाते हैं– "पश्य देवानां काव्यं, न ममार न जीर्यते"। वेद से प्रवाहित हुई संस्कृत वाङ्.मय की धारा वर्तमान तक दिखाई देती है। इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है– वैदिक तथा लौकिक। संस्कृत वाङ्.मय में लौकिक काव्य की रचना आदिकवि वाल्मीकि ने प्रथम बार की। यह महाकाव्य विधा का ग्रन्थ था। इसके पश्चात् अनेक विधाओं में काव्य रचनाएँ हुई। काव्य विधाओं में विविधता निरन्तर बढ़ती गयी है। इसका मुख्य कारण भूमण्डलीकरण के इस युग में संस्कृत कवियों के क्षेत्र का विस्तार है। कविगण विभिन्न देशों में जाते हैं, जिससे होने वाली अन्तः क्रिया के फलस्वरूप नवीन विधाओं का उद्‌भव संस्कृत में हो रहा है।

नवीन विधा में प्रथम बार रचना करने वाले कवि को उस विधा का प्रणेता तथा बाद में उसी विधा में रचना करने वाले कवि को उस विधा का पोषक कहा जा सकता है। वर्तमान में अनेक कवि गीर्वाण भारती की सेवा में तत्पर हैं। वे अपनी नवनवोन्मेषशामिली प्रतिभा से प्राचीन विधाओं के पोषण के साथ ही नवीन विधाओं का भी सर्जन कर रहे हैं। ऐसे ही सुरभारती के समुपासकों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी अग्रिम पंक्ति में स्थित हैं। वे संस्कृत की प्राचीन विधाओं के पोषक होने के साथ–साथ नीवनता के अन्वेषक भी हैं। संस्कृत काव्य विधाओं में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के योगदान की प्रस्तुति इस शोधपत्र में अभीष्ट है।

इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर काव्य दो भागों में बाँटा गया है– दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। इन काव्य भेदों के अन्तर्गत आने वाली विधाओं तथा उनमें आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के योगदान को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **मुक्तक** – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के मुक्तक पद्य विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

2. **राग काव्य** – महाकवि जयदेव के गीतगोविन्द को इस विधा का प्रथम काव्य माना जाता है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीतधीवरम् इस विधा का काव्य है। यह संस्कृत परिषद्, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से वर्ष 1996 ई. में प्रकाशित है। यह नौ सर्गों में विभाजित है। इसके प्रथम पद्य में गीतगोविन्द की छाया दिखाई पड़ती है। तद्यथा –

मेघैर्मेदुरमम्बरं च जलधिं तुङ्गस्तरङ्गैर्वृतं
दर्शं दर्शमसौ स्वकीय उडुपे धीरं स्थितो धीवर।
ध्यायं ध्यायमनन्तसङ्कुलपथं स्वां क्षेपणीं सारय–
न्नित्थं स्वस्य च सागरस्य च दशां सम्भावयामास सः।।[1]

गीतगोविन्द का प्रथम पद्य देखिये–

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै–
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिदं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः।।

3. **ऐतिहासिक काव्य** – बैङ्काक नगर में स्थित सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय में संस्कृत विषय में अतिथि आचार्य पद पर नियुक्ति पाकर आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने तीन वर्ष थाईलैण्ड में अध्यापन किया। उस काल में वहाँ के इतिहास और संस्कृति को जानकर उसे संस्कृत भाषा में निबद्ध कर दिया। यह ग्रन्थ "थाईदेशस्य इतिहासः संस्कृतिश्च" नाम से प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली से वर्ष 2005 ई. में प्रकाशित है। इससे पूर्व यह सागरिका 38/2 अंक में भी प्रकाशित हुआ है।

4. **कथा** – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की अभिनवशुकसारिका कथा दो भागों में विभाजित है। यह संस्कृत भारती, नई दिल्ली से वर्ष 2011 ई. में प्रकाशित है। इसका एक अंश उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है–

"परिवर्तनमेव सृष्टेर्नियमः। सरतीति संसारः। गच्छतीति जगत्। अस्याः कथाया लेखको राधावल्लभः। प्रथमो भागस्तेन लिखितः, द्वितीयमपि भागमसौ

लिखति। प्रथमभागस्य रचनाकाले स यादृश आसीत् तादृश इदानीं नास्ति। यादृशी तादृशी वा कथा अनेन प्रथमभागे निबद्धा, तादृशी इदानीं न पार्यते लेखितुम्। तथाप्ययं लिखति। लिखिते प्रथमे भागे पञ्चाब्दा एव प्रायो व्यतीताः स्युः, तथापि युगान्तरं जातमिति असौ उपरि आह। इत्थमयमतिशयोक्तीनां पारिप्लवेन पाठकान् प्रभावयितुमिच्छति। इदं जगद् यादृशं पुरा आसीत्, तादृशमेव सम्प्रत्यपि वर्तते, अत उक्तमेव शास्त्रे – न कदाचिदनीदृशं जगदिति। अत एव सर्वं जगत् अन्यथा जातमिति कथनं न युज्यते।

परन्तु एकया दृष्ट्या अभिनवशुकसारिकाया नवीनभागस्य लेखनकाले युगान्तरं जातमित्यपि सत्यम्। प्रथमो भागो यद्दिक्कालालवालं साकारयति, तत् क्वचिद् विलीनम्। अन्यच्च – इतिहासदृष्ट्यापि तस्य भागस्य कथा खिस्तस्य द्वितीयायां सहस्राब्द्यां पर्यवसिता, अस्य भागस्य कथा तृतीयायां सहस्राब्द्यां समारब्धायां प्रवर्तते।।[1]

5. आख्यायिका – 'महाकविः कण्टकः' आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित आख्यायिका है। यह संस्कृत परिषद्, सागर से 1971 में प्रकाशित है।

6. दृश्यकाव्य – इस विधा में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के प्रेमपीयूषम् तथा तण्डुलप्रस्थीयम् नाटकों के साथ सुशीलाप्रेक्षणकम् तथा एकांकी संग्रह प्रेक्षणसप्तकम् रखे जा सकते हैं।

प्रेमपीयूषम् नाटक महाकवि भवभूति को केन्द्र में रखकर रचा गया है। सुशीला प्रेक्षणकम् की रचना आचार्य बच्चूलाल अवस्थी द्वारा प्रदत्त एक लोककथाश्रित श्लोक को आधार बनाकर की गयी है। प्रेक्षणसप्तकम् में सङ्कलित एकांकी संस्कृत में रचे गये नुक्कड़ नाटक माने जा सकते हैं।

7. टीका – आचार्य बच्चूलाल अवस्थी कृत योषासप्ततिकाकाव्य पर आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने सत्यवती संस्कृत टीका की है। इस टीका के उपसंहार में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने लिखा है–

"श्रीमज्ज्ञानकवेः प्रसन्नमधुरा माया यथा ब्रह्मणः

....

एषाप्यस्य कवित्वभावनपरा सायासमालोचितैः
ग्रन्थग्रन्थिविमोचनैः सुविहितैर्व्याख्यानसन्मौक्तिकैः।

राधावल्लभगुम्फिता सहृदयेष्वालोकमातन्वती

टीका सत्यवती प्रियेव मम च श्रद्धास्पदं जायताम्।।[4]

यद्यपि टीका काव्यविधा नहीं है, किन्तु काव्य के गूढार्थ को स्पष्ट करने के कारण यह काव्य के साथ ही प्रसिद्धि को प्राप्त हो जाती है। जैसे कालिदास के काव्यों पर मल्लिनाथ की सञ्जीवनी टीका।

उपर्युक्त प्राचीन विधाओं के साथ–साथ कुछ नवीन विधाओं में भी संस्कृत में काव्य रचे जा रहे हैं। आचार्य रहसबिहारी द्विवेदी ने निम्नलिखित नवीन विधाओं का उल्लेख किया है–

"कलज्जलिका, गलज्जलिका, चैत्रकं, सूतगृहम् (सोहर), बटुकम्, नक्तकम्, उत्थापनम्, प्रचरणम्, चतुस्तालम्, फाल्गुनिकम्, होलोत्सवगीतम्, स्कन्धहारीयम् (कँहरवा), औष्ट्रहारिकम्, लाङ्गलिकम, रसिकम्, हाईकू (बिल्वपत्रम्), सीजो, तान्का, लघुबिम्बकम्, (मोनो इमेज), लिपिरूपकम्, लघुवर्णकाव्यम् अनुकृतिकाव्यम्, नमोनाट्यम्, विमानकाव्यम्, समस्यापूर्तिः, हास्यं व्यङ्ग्यं च, उपन्यासः, कथानिका (स्पशकथा, टुपकथा), यात्रावृत्तान्तः, प्रतिवेदनम्, संस्मरणम्, शतकम्, लहरी, स्तोत्रकाव्यम्, अभिनन्दनपत्रम् एवं बहवः काव्यप्रकारा दृश्यन्ते।।"[5]

नवीन विधाओं में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के योगदान को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. डायरीकाव्य – संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2011 ई. में प्रकाशित, आचार्यराधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत "आत्मनाऽऽत्मानम्" दैनन्दिनी संस्कृत साहित्य में प्रथम डायरी काव्य है। इसमें 05.04.1987 से 27.11.2010 के मध्य लिखी गयी डायरियों में से रुचिकर अंश संकलित कर प्रकाशित किये गये हैं। इनमें त्रिपाठी जी की स्मृतियाँ संचित हैं। तद्यथा–

"अस्मिन् सङ्कलने दैनन्दिनीषु निबद्धाः काश्चन मम स्मृतयः सञ्चिताः"[6]

यह डायरी काव्य विषम परिस्थितियों में धैर्य रखने तथा सकारात्मक सोच को प्रेरित करता है। इसके प्रारम्भ में उद्धृत श्रीमदभगवद्गीता का निम्नलिखित श्लोकांश इसी तथ्य को प्रकट करता है–

"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।"[7]

2. लहरीकाव्य – संस्कृतपरिषद्, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर द्वारा 1991 ई. में प्रकाशित लहरीदशकम् आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित

है। इसमें निम्नलिखित दस लहरियाँ हैं– वसन्तलहरी, निदाघलहरी, प्रावृड्लहरी, धरित्रीदर्शनलहरी, जनतालहरी, रोटिकालहरी, नर्मदालहरी, मृत्तिकालहरी, अद्यापिलहरी और प्रस्थानलहरी।

ये लहरियाँ आधुनिक विषयों पर आधारित हैं। तद्यथा–

"श्वसुरालयसम्प्राप्ता पीड्यमाना वधूरिव।
छायां छायाप्यहो कोणे मार्गमाणा लयं गता।।[8]

(निदाघलहरी / श्लोक 26)

3. सॉनेटकाव्य – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा प्रणीत सन्धानम् काव्यसङ्ग्रह संस्कृत परिषद्, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय द्वारा 1989 ई. में प्रकाशित है। इसमें 'अन्वेषणम्' तथा 'शोणभद्रपीठे' शीर्षकों के अन्तर्गत सॉनेट काव्य रचनाएँ हैं। तद्यथा–

कृष्णकञ्चुकसञ्छन्ना
भीता सम्पिण्डिता इव
मेघच्छाया भ्रमन्त्येता
लज्जयेव जलीकृताः।
अवतीर्य शनैर्नीचैः
शिखरे ऽमरकण्टके।
अधोऽधश्च पुनर्याता
महाश्वभ्रं वनं प्रति।।
रेवारोधःसु शुष्केषु
निर्जलेषु समन्ततः।
अन्विष्यन्ति भ्रमन्त्यस्ता
लुप्ता गुलवकावलीः।
नैव यास्तत्र रोहन्ति
रेवाखण्डे विखण्डिते।।[9]

4. विमानकाव्य – इस विधा का प्रथम ग्रन्थ आचार्य प्रभाकर नारायण कवठेकर प्रणीत "भूलोकविलोकनम्" है। इस विधा में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का "विमानाद् भूदर्शनम्" भी है। एक पद्य द्रष्टव्य है–

"शुभ्रा स्वच्छा हिमकणततिर्दृश्यते या विमानात्
कीर्णा नीचैरुपरि परितश्छाद्यमाना समन्तात्।
पश्याम्येनां रजतसदृशीं राजमानां मनोज्ञां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे धरित्र्याः।।[10]

5. छन्दोमुक्त/नवगीत शैली कविता – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की विभिन्न कविताएँ यत्र–तत्र पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। पद्यबन्धा पत्रिका में प्रकाशित छन्दोमुक्त (नवगीतशैली) कविता द्रष्टव्य है–

"संस्कृतम् अगाधो ह्रदः

....

संस्कृतस्य अगाधे सरसि
अवरुद्धः प्रवाहः
क्वचिद् उत्तिष्ठते शीर्णो दुर्गन्धः
केचन अस्य सरोवरस्य तटे स्थिताः
गणयन्ति शास्त्रविवर्तान् मापयन्ति
केचन उत्तानं मुखं कृत्वा
पण्डिताः शास्त्रसन्धाने रताः
मुहूर्तगवेषणे सत्यनारायणकथावाचने
तानसौ दुर्गन्धो न प्रतिभाति।
सरोवरोऽयं क्वचिदासीन्मानसरोवरः
सम्प्रति मानसरोवरः कुत्र
स तु अस्मदधिकाराद् बहिर्गतः।।[18]

6. उपन्यास – आचार्य राधवल्लभ त्रिपाठी द्वारा रचित उपन्यासों में से विक्रमचरितम् प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली से 2000 ई. में, अन्यच्च संस्कृत भारती, नई दिल्ली से 2011 ई. में तथा ताण्डवम् संस्कृत भारती, नई दिल्ली से 2013 ई. में प्रकाशित हुए हैं।

"अन्यच्च" को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी आजीवन साधना का प्रतिफल बताया है। तद्यथा–

"अन्यच्च इति उपन्यासः मम आजीवनसाधनायाः प्रतिफलम्।"[11]

अन्यच्च उपन्यास विविधशास्त्रों का कोष कहा जा सकता है। इसका नायक विशाख सदैव ज्ञान प्राप्ति तथा मातृदर्शन के लिये प्रयत्नशील रहता है। तद्यथा– **"विशाखस्य मनसि उदग्रे द्वे कामने–एका मातुर्दर्शनस्य अपरा ज्ञानार्जनस्य। उभयोरपि अन्योन्याश्रयत्वं स मनुते स्म। ज्ञानेन सशरीरं स्वर्गगमनं, तत्र मात्रा समागमः।**[12]

इसमें अनेकत्र निरुक्त के दर्शन होते हैं। तद्यथा–

"भाष्यते इति भाषा" [13]

इसके अतिरिक्त कामसूत्र, नाट्यशास्त्र, आयुर्वेद, धर्मसूत्र, वैदिक साहित्य, पुराण, बौद्धदर्शन, दर्शन और इतिहास इत्यादि के तत्त्व अन्यच्च में समाहित हैं।

'नानृषिः कुरुते काव्यम्' – यह तथ्य सत्य सिद्ध होता है, जब आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत निम्नलिखित मातृसूक्त दृष्टिपथ में अवतरित होता है–

"सूनृतानां गिरां कर्त्रीं मङ्गलानां च मातरम्।
जगद्वन्द्यां जगत्स्रष्ट्रीं मातरं तां नु धीमहि।।

....

आविरस्तु स्वयं माता पुत्रस्यास्य पुरस्तु सा।
सा ददातु स्वयं स्वीयं माता पुत्राय मे पयः।।

इदं सूक्तं मया साक्षात्कृतम्, अस्य अहम् ऋषिः। सूक्तस्यास्य पाठेन माता अवतीर्णा भवति। इत्यनुभूय स निखिलं जगत् परिवर्तितमिव अपश्यत्।"[14]

ताण्डवम् उपन्यास कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आश्रित है। यह उपन्यास कश्मीर नरेश श्री हर्ष का जीवन चरित है।

7. लघुकथा – 'स्मितरेखा' नामक कथासङ्ग्रह में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत छः कथाएँ हैं– एकं रूप्यकम्, अभिनन्दनम्, वायवाः, परावर्तनम्, करुणा और स्मितरेखा। यह कथासङ्ग्रह संस्कृत भारती, नई दिल्ली से 2011 ई. में प्रकाशित है।

8. संस्मरण, यात्रावृत्त – आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत अनुभववीथि संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा 2013 ई. में प्रकाशित हुई है।

इसमें संस्मरण, यात्रावृत्त, निबन्ध तथा ललितनिबन्ध इत्यादि विविध विधाओं में निबद्ध लेख हैं। तद्यथा–

"अनुभववीथ्यां सञ्चितेषु लेखेषु कथा, संस्मरणं, यात्रावृत्तं, निबन्धः, ललितनिबन्धः इत्याद्यानां विविधसाहित्यप्रकाराणां सम्मिश्रणं वर्तते।"[15]

9. अनुवाद – अन्य भाषाओं में निबद्ध ग्रन्थों का गीर्वाणवाणी में भाषान्तरण भी आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने किया है। इनका हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त के पञ्चवटी नामक खण्डकाव्य का संस्कृतानुवाद संस्कृत परिषद्, सागर से 1998 ई. में प्रकाशित हुआ है। यह अनुवाद राष्ट्रपति सम्मानित पं. प्रेमनारायण द्विवेदी को समर्पित है। अफगानिस्तानदेशीय रूमीकवि एक महान् सूफी कवि थे। उनकी कविताओं का संस्कृतानुवाद आचार्य राध ावल्लभ त्रिपाठी ने रूमीरहस्यम् नाम से किया है। रूमीरहस्यम् और रूमीपञ्चदशी संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा 2011 ई. में प्रकाशित हुई हैं। कपिलसिब्बल की अंग्रेजी कविताओं का संस्कृतानुवाद आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने "अहम् ईक्षे आंशिकानि पर्यवेक्षितानि" नाम से किया है।

बनारसी दास द्वारा हिन्दी में रचित 'अरध कथान' को हिन्दी भाषा में रचित प्रथम आत्मकथा माना जाता है। इसका संस्कृत अनुवाद आचार्य राध ावल्लभ त्रिपाठी ने 'अर्धकथानकम्' नाम से किया है। यह संस्कृत भारती, नई दिल्ली से 2013 ई. में प्रकाशित है। भाषान्तरण में मूल का भाव बना रहता है, यह आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुवाद की विशेषता है। तद्यथा–

मूल– आयु वित्त निजगृहचरित दान मान अपमान।
औषध मैथुन मंत्र निज ए नव अकह कहान।।

संस्कृतानुवाद

**धनमायुर्गृहचरितं दानं मानं तथापमानं स्वम्।
औषधमैथुनमन्त्रानेतान् नव तु न वदेत् प्राज्ञः।।**[16]

मूल – लोभ मूल सब पाप कौ, दुख को मूल सनेह।
मूल अजीरन व्याधि कौ, मरन मूल यह देह।।

संस्कृतानुवाद–

लोभः पापस्य मूलम्, स्नेहश्च मूलं दुःखस्य।

अजीर्णं मूलं व्याधेः, अयं च देहो मरणस्य मूलम्।।[17]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने प्राचीन परम्परागत विधाओं को महत्त्व देते हुए उनमें अनेक रचनाएँ की हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्राचीन विधाओं में की गयी रचनाओं में भी विषय–वस्तु नवीनता लिये हुए है। नीवन विधाओं में भी आचार्य त्रिपाठी की लेखनी से कई ग्रन्थ निःसृत हुए हैं। डायरी काव्यविधा के तो ये प्रणेता ही हैं। महाकाव्य आदि कुछ छूटी हुई विधाओं में भविष्य में उनकी लेखनी चलेगी, यह आशा की जाती है, क्योंकि–

"कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"[19]

सन्दर्भ

1. गीतधीवरम्, प्रथम पद्य
2. गीतगोविन्दम्, प्रथम पद्य
3. अभिनवशुकसारिका, पृ. 75
4. योषासप्ततिका, पृष्ठ 18
5. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर द्वारा 2011 ई. में प्रकाशित शोधपत्र सार,
6. आत्मनाऽऽत्मानम्, प्रास्ताविकम्
7. श्रीमद्भगवद्गीता
8. निदाघलहरी, श्लोक 26
9. सन्धानम्, पृ. 43
10. धरित्रीदर्शनलहरी, 2/1
11. पद्यबन्धा, पृ. 17–18
12. अन्यच्च, भूमिका
13. वही, पृ. 45
14. वही, पृ. 19
15. वही, पृ. 25
16. अनुभववीथिः, भूमिका,
17. अर्धकथानकम् पृ. 45
18. वही, पृ. 52
19. मालतीमाधवम्, 1/2

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की दृष्टि में काव्य, कवि एवं समीक्षक

डॉ. सञ्जय कुमार

आधुनिक साहित्यशास्त्र परम्परा के अभिनव अभिभावक आचार्य राध ावल्लभ त्रिपाठी जी का साहित्यशास्त्र परम्परा में महनीय स्थान है। उन्होंने गद्य–पद्य नाटक के साथ–साथ साहित्य धर्मों के यशःख्यापन हेतु 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' नामक लक्षण ग्रंथ की सृष्टि भी की है। इस लक्षण ग्रंथ में त्रिपाठी जी संस्कृत साहित्य शास्त्र परम्परा की थाती को सहेजते हुए नित–नूतनता को प्रस्तुत करते हैं तथा साहित्य धर्मों का पूर्ण निर्वाह भी करते हैं। वस्तुतः काव्य और कवि दोनों हमारे साहित्य के रत्न माने जाते हैं। दोनों का महत्त्व हमारे साहित्य में समान है, इसीलिए आचार्य त्रिपाठी जी काव्य, कवि और समीक्षक तीनों के विषय में इस लक्षण ग्रंथ में अपने विचार अनुस्यूत किये हैं। कवि का कर्म ही काव्य कहलाता है। लेकिन ध्यान रहे सभी कर्म न कविकर्म कहलाता है और न सभी कवि ही कहलाते हैं। कवि के विशेष कर्म को ही काव्य कहा जाता है और जो विशेष कर्म करता है वह कवि होता है। इस प्रकार काव्य और कवि दोनों सामान्य नहीं बल्कि विशेष हैं। यही विशेष शब्द प्राचीन समय से आचार्यों द्वारा व्याख्यायित किया जाता रहा है, परन्तु आज भी यह शब्द पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पा रहा है। पुनः उसी काव्य, कवि आदि के स्वरूप को अभिनव स्वरूप में गढ़ने का प्रयास त्रिपाठी जी करते हैं और पूर्ण सफल भी होते हैं। उन्होंने अपने 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' मे काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–

लोकानुकीर्तनं काव्यम्।[1]

अर्थात् लोक का अनुकीर्तन काव्य है। यहाँ लोक शब्द से तात्पर्य केवल स्थावर जङ्गमात्मक ही नहीं अपितु चेतना से विभाव्यमान समग्र भूवन ही लोक है। यह लोक स्थाणु या स्थिर नहीं अपितु प्रतिक्षण परिवर्तन और

विकासशील है। लोक शब्द सम्पूर्णता का द्योतक है। सम्पूर्ण चेतन जगत् इसके अंतर्गत आता है। लोक का एक सामान्य अर्थ जन–सामान्य भी होता है परन्तु विशेष अर्थ सम्पूर्ण चेतन ही है। इस प्रकार सम्पूर्ण चेतना का अनुकीर्तन काव्य है। चेतना का अभिप्राय जीवजगत् से है। वह भी जीवजगत् जो सहृदयता से ओत–प्रोत हो। काव्य से रञ्जन करना ही सहृदय की पहचान है। इस लोक के स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप का विशेष वर्णन ही लोक का अनुकीर्तन है। इसका मात्र रञ्जन ही एक उद्देश्य है जिसे लोकानुरञ्जन कहा जाता है। काव्य (नाटय) के उद्भव और विकास की यदि बात करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान नाट्यशास्त्र की ओर जाता है जिससे सभी का रञ्जन और उपदेश ही काव्य का उद्देश्य ज्ञात होता है–

"दुःखार्तानां श्रमार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं लोके नाट्यामेतद् भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यामेतद् भविष्यति।।"[2]

अर्थात् यह नाट्य दुःखी, श्रान्त, शोकार्त आदि लोगों के लिए विश्राम जनक होगा। यह धर्म, यश, आयु, हित एवं बुद्धि को बढ़ाने वाला तथा लोकोपकारी होगा। नाट्यशास्त्र के इस कारिका के द्वारा लोक का तात्पर्य निश्चित हो जाता है कि लोक चेतन जगत् ही है। नाट्यशास्त्र के भी यदि नाट्यलक्षण पर विचार किया जाय तो लोक का ग्रहण चेतन जगत् अर्थ में ही होता है–

"योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख दुःख समन्वितः।
सोऽङ्गद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।
देवानाम सुराणाञ्च राज्ञां लोकस्य चैव हि।
कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते।।"[3]

अर्थात् लोक का सुख–दुःखात्मक स्वभाव है, वही आङ्गिक आदि से सम्मिलित होने पर नाट्य कहलाता है। यह देवताओं, असुरों, राजाओं तथा शेष जनता के द्वारा किये गये का अनुकरण ही नाट्य कहा जाता है। अनुकरण शब्द का अर्थ है– नकल करना, प्रतिलिपि, अनुरूपता, समानता आदि।[4] अर्थात् लोक के गतिविधि या व्यवहार के अनुरूप व्यवहार करना नाट्य कहलाता है। नाट्य अभिनय प्रधान हुआ करता है। अतः लोक का वह

अनुकरण है। आचार्य त्रिपाठी जी कहते हैं कि काव्य लोक का अनुकीर्तन करता है। अनुकीर्तन का अर्थ है– कथन या प्रकाशन।[5] अर्थात् लोक का प्रकाशन, लोक के विविध अवस्थाओं का कथन या प्रकाशन ही काव्य है। आचार्य भरत अभिनय की ओर सङ्केत करते हैं लेकिन आचार्य त्रिपाठी जी वर्णन प्रधान को काव्य स्वरूप मानते हैं। आचार्य जी का प्रेरणास्त्रोत तो नाट्यशास्त्र हो सकता परन्तु नाट्यशास्त्र का उसे अनुकरण नहीं माना जा सकता है। उनकी दृष्टि में लोक का प्रकाशन काव्य है अनुकरण नहीं। यहाँ ऐसा लगता है कि आचार्यश्री के लक्षण में शब्दवादी परम्परा की ध्वनि मिलती है। वर्णन और प्रकाशन शब्द प्रधान ही हुआ करते हैं। वस्तुतः वही प्रकाशन है जिसके माध्यम से विषयवस्तु का स्पष्ट बोध हो जाय। विषयवस्तु का प्रकाशन तो शब्द से ही सम्भव है– जैसा कि भाष्यकार पतञ्जलि का कहना है–

येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः।[6]

अर्थात् शब्द वही जिसके उच्चारण से गलकम्बल पूँछ, ककुद, खुर तथा सींग वाले प्राणी का ज्ञान होता है। इस प्रकार लोक के अनुकीर्तन का माध्यम शब्द ही हुआ और वह शब्द ही हमें विषय का यथार्थ ज्ञान करता है। लेकिन आचार्यश्री के मत में विशेष शब्द के द्वारा लोक का अनुकीर्तन करना अभीष्ट है। वे कहते हैं–

"काव्यस्य मानवजीवनदैनन्दिनसामान्यकथनस्य च भवत्येव विशेषः"[7]

अर्थात् काव्य में मानव जीवन के दैनन्दिन सामान्य कथन की अपेक्षा विशेष होता है। अतः लोक का वर्णन मात्र करना सामान्य कथन है। और लोक का अनुकीर्तन करना विशेष कथन है। इस विशेष कथन में शब्द और अर्थ का सहभाव आवश्यक है। इसलिए आचार्य भामह कहते हैं –

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।[8]

उन्होंने शब्द और अर्थ दोनों के सहभाव को काव्य माना है। सहितौ पद से अभिप्राय यह है कि जिस रचना में वर्णित अर्थ के अनुरूप शब्दों का प्रयोग हो या शब्दों के अनुरूप अर्थ का वर्णन हो वे शब्द और अर्थ ही सहितौ पद से विवक्षित हैं। वही शब्द और अर्थ साहित्य है। इस प्रकार साहित्य शब्दार्थ पर अबलम्बित रहता है। साहित्य ही लोक का अनुकीर्तन करता है। इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य त्रिपाठी जी कहते हैं–

आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिकश्च।

त्रयाणां च सकलः समुल्लासो जीवनम्।

तच्च साहित्ये प्रतिफलति।[9]

अर्थात् आदिभौतिक आदिदैविक और आध्यात्मिक नाम के तीन लोक हैं। इन तीनों लोकों को सकल सम्मुलास जीवन है और वह जीवन साहित्य में प्रतिफलित होता है।

तीनों लोकों का प्रकाशन साहित्य करता है। साहित्य ही विशेष शब्दार्थ का सम्मिश्रण है। काव्य शब्द तथा अर्थ दोनों के मञ्जुल समन्वय में बसता है। जिस प्रकार शब्द रस के उन्मीलन में सहायक होता है। उसी प्रकार शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। शब्द का उच्चारण करते ही अर्थ स्वतः आ जाता है। दोनों मिलकर ही सम्पूर्णता को प्राप्त करते हैं। वागर्थ के विषय में कालिदास की उपमा विश्व प्रसिद्ध ही है–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[10]

जैसे वाणी और अर्थ अलग होते हुए भी एक ही कहलाते हैं, वैसे ही पार्वती और शिव भी एक ही है। अतः वाणी और अर्थ को ठीक से समझने और उनका उचित उपयोग करने के लिए मैं संसार के माता–पिता पार्वती और शिव जी को प्रणाम करता हूँ जो शब्द और अर्थ के समान एक रूप हैं। इस प्रकार वागर्थ नित्य सम्बन्ध की उपमा कालिदास ने अर्द्धनारीश्वर से दी है। जिस प्रकार पार्वती तथा शिव का परस्पर नित्य सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार वाक् और अर्थ भी स्वभाव से ही नित्य संयुक्त रहते हैं। साहित्य इन दोनों में समभाव से रहता है। साहित्य के विषय में आचार्य कुन्तक का भी कहना है–

साहित्यमयनयोः शोभाशालितां प्रतिकाप्यसौ।

अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः।।[11]

अर्थात् शोभाशालिता के लिए इन दोनों (शब्द और अर्थ) की न्यूनता याअधिकता से रहति मनोहारिणी कुछ अलौकिक ही स्थिति साहित्य कहलाती है। अतः 'सहितयोर्भावः साहित्यम्' में शब्दार्थ की अनिवार्यता परिलक्षित होती है। वस्तुतः आचार्यश्री के लोकानुकीर्तनं काव्यम् में त्रिलोक ही लोक रूप में समाविष्ट है। उस अनुकीर्तन से ही काव्य में पूर्णता आती है और पूर्णता ही

अलङ्कार है और अलंकार ही काव्य है।[12] इस प्रकार शब्दों के माध्यम से लोक के पुनराविष्करण को अनुकीर्तन कहते हैं। शब्द अर्थवान होते हैं। अतः अनुकीर्तन पद से पूर्वाचार्यों द्वारा अभिमत दोषरहित गुणयुक्त सालङ्कार तथा रसाभिव्यञ्जक शब्द और अर्थ का संग्रह यहाँ हो जाता है–

इत्थमनुकीर्तनमिति पदेन निर्दुष्टयोः सगुणयोः।

सालङ्कारयो रसाभिव्यञ्जकयोश्च शब्दार्थयोः संग्रहः।[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य त्रिपाठी जी यहाँ आचार्य मम्मट के काव्यलक्षण का समर्थन कर ही देते हैं। मम्मट कहते हैं–

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलऽकृती पुनः क्वापि।[14]

अर्थात् दोष से रहित गुण से युक्त और साधारणतः अलङ्कार सहित परन्तु कहीं–कहीं अलङ्कार रहित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं। अतः हम देखते हैं कि आचार्य त्रिपाठी मम्मट के लक्षण का विरोध नहीं बल्कि उनके लक्षण को समुचित रूप से प्रकाशित किये हैं। यदि हम आधुनिक और आचार्यों की बात करें तो आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रथमतः आते हैं। उनके मतानुसार भी काव्य ज्ञानस्वरूप एवं उसका अलङ्कार आत्मवत् प्रतिष्ठित है–

काव्यं ज्ञानं अलङ्कार अस्तस्यात्मामदयमाभिधा।[15]

अर्थात् काव्य है ज्ञान, अलङ्कार है उसकी आत्मा, उसमें बिना व्यभिचार के उपाधि बनती है। त्रिपाठीजी भी अलङ्कार को ही काव्य मानते हैं। क्योंकि वे अलङ्कार को ही काव्य की पूर्णता कहते हैं। काव्य लक्षण के अनन्तरं आचार्य श्री त्रिपाठीजी पं. राजजगन्नाथ के समान चार प्रकार के काव्यों का उल्लेख करते है–

चतुर्विधं तत् उत्तमोत्तमम् उत्तमम् मध्यमम् अवरञ्च।[16]

अर्थात् वह काव्य चार प्रकार का है– उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अवर। पूर्वाचार्यों के अनुसार यह विभाजन व्यङ्ग्य या चमत्कार के आधार पर हुआ करता था। लेकिन आचार्य त्रिपाठी लोक वर्णन विशेष को अपने काव्य विभाजन का आधार बनाया है–

सर्वाङ्गिणं जीवनं निदर्शित् महावाक्यं प्रथमम्। जीवनस्यैकदेशं निर्दशद् द्वितीयम्, वस्तुविशेषं मनः स्थितविशेषं वा प्रकाशयन्मध्यमम् पदार्थमात्रपर्यवासितं त्ववरं[17]

अर्थात् सर्वाङ्गीण जीवन का निर्देश करने वाला महाकाव्य उत्तमोत्तम् जीवन के एक देश का निर्देश करने वाला उत्तम वस्तुविशेष या मनः स्थिति विशेष को प्रकाशित करने वाला मध्यम एवं पदार्थ मात्र में पर्यवसित होने वाला अवरकाव्य कहलाता है। यहाँ हम देखते हैं कि आचार्य त्रिपाठी जी पूर्व मिथक चमत्कार व व्यङ्ग्य इत्यादि को नकारते हुए वर्णन विशेष को काव्य विभाजन के अभिनव स्वरूप को जन्म दिये हैं। जीवन की सर्वाङ्गिणता काव्य में समाहित होती है। उसी लिए तो आलोचक वर्ग साहित्य को समाज का दर्पण मानता है। यह ऐसा दर्पण है जिसमें बिम्बापाय हो जाने पर या प्रतिबिम्ब भासमान ही होता है। जैसा की आचार्य दण्डी लिखते हैं–

आदिराजमशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषामसन्निधानंऽपि न स्वयं पश्यं नश्यति।।[18]

अर्थात् प्रचीन राजाओं का यशरूपी बिम्ब वाङ्मय रूपी दपर्ण को प्राप्त कर के आज उन राजाओं के अस्तित्व न होने पर भी विनाश को प्राप्त नहीं हो रहा है। यह स्वयं तुम देख लो। कहने का अभिप्राय यह है कि लोक में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव का साधारण धर्म यही है– यावत्कालपर्यन्त बिम्ब सम्मुखावस्थित रहता है। तावत्काल पर्यन्त ही दर्पणादि में प्रतिबिम्बित हुआ करता है। बिम्बापाय हो जाने पर प्रतिबिम्ब भी अपाय हो जाता है। परन्तु शब्दरूपी दपर्ण में प्राक्तन लोगों के यश–अपयश रूप बिम्ब का प्रतिविम्ब बिम्बापाय हो जाने पर भी प्रतिबिम्बात्मना भासमान ही होता रहता है। नष्ट नहीं होता है। इसीलिए आचार्य त्रिपाठी जी ने लोक जीवन के विविध वर्णन को ही काव्य एवं काव्यभेद के रूप में स्वीकार किया है। जो लोक में होता है वही साहित्य बनता है। लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। लोक ही शास्त्र का नियामक है। एक बात मैं और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हमारे शास्त्र लोक पर आधारित है न कि लोक शास्त्र पर। जो लोक में है वही शास्त्र बनता है। व्याकरण के सूत्र जो आज उपलब्ध हैं वे पहले के लोक–व्यवहार पर ही आधारित हैं। इस प्रकार कवि जो सृष्टि करता है वह लोकाधारित ही होता है। अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र के व्याख्याकार डॉ. रमाकांत पाण्डेय जी भी इस विषय में कहते हैं कि कुन्तक ने अभिधा के सौन्दर्य की ही बात उठायी थी। किन्तु ध्वनिवाद की प्रधानता में उनकी आवाज दब गयी है। ध्वनि के प्रधान होने पर नगण्य और सहृदय सामाजिकों द्वारा अप्रशंसनीय अर्थ देने वाला काव्य उत्तमकोटि बन सकता है किन्तु जहाँ वाच्य सहृदयहृदयाह्लाद प्राध ान्य है जो महनीयों के महनीय चरित्र का प्राधान्य है। ऐसा काव्य मध्यम मान

लिया जाता है। यह अवश्य अनुचित है।[19] केवल ध्वनि के आधार पर काव्य की श्रेष्ठता सिद्ध करना एक पक्षीय सिद्धांत की तरह है, इस दृष्टि से आचार्य त्रिपाठी जी का वर्णन विशेष ही काव्य विभाजन का आदर्श मानदण्ड सिद्ध होता है।

काव्य विभाजन के अनन्तर आचार्य त्रिपाठी जी ने एक महत्वपूर्ण बिन्दु को और भी प्रकट करने का सराहनीय प्रयास किया है– कवि और समीक्षक। वस्तुतः कवि संसार का बड़ा ही सौभाग्यशाली प्राणी होता है। भगवती शारदा देवी की जब महती अनुकम्पा होती है तब प्राणी में वह शक्ति उत्पन्न होती है जिसे कवित्त्व के नाम से पुकारते हैं। इस सम्बन्ध में अग्निपुराण की उक्ति दृष्टव्य है–

नरत्त्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्त्व दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्रसुदुर्लभा।।[20]

अर्थात् इस लोक में प्रथमतः मनुष्य बनना ही एक दुर्लभ गुण है जिस पर विद्वान् बनना और विद्वता के साथ कवि होना तथा काव्य करने की शक्ति पाना तो नितान्त दुर्लभ है। कवि की समानता प्रजापति से की जाती है। आचार्य मम्मट ने तो ब्रह्मा से भी कवि को श्रेष्ठ कहा है–

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[21]

अर्थात् पद्यमत्वादिरूप असाधारण धर्म अथवा अदृष्ट या धर्माधर्मादिरूप नियति के द्वारा निर्धारित नियमों से रहित केवल आनन्दमात्रस्वभावा कवि प्रतिभा को छोड़कर अन्य किसी के अधीन न रहने वाली तथा छः रसों के स्थान पर नौ रसों के योग से मनोहारिणी काव्य–सृष्टि की रचना करने वाली कवि की भारती सर्वोत्कर्षशालिनी है। यह है कवि जो ब्रह्मा की सृष्टि से भी बढ़कर काव्यसृष्टि की सरजना करता है। ब्रह्मा की सृष्टि में सुख–दुःख दोनों का अस्तित्व रहता है। कोई प्राणी संसार में रह कर दुःख से नहीं बच सकता है। यहाँ सुख के साथ दुःख अवश्यम्भावी है। लेकिन कवि की सृष्टि में दुःख का रंचमात्र भी अस्तित्व नहीं रहता है। कवि की सृष्टि में जब हम इन्दुमति के वियोग में अज को विलाप करते हुए पढ़ते हैं तथा उत्तररामचरितम् में सीता के वियोग में राम के पुटपाक को देखते हैं तो हमारा ह्रदय करूणा से भर जाता है। उस करूण रस में भी हम आनन्द का ही अनुभव करते हैं। उस आनन्दातिरेक से द्रवीभूत होकर नेत्रों से भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है।

अतः कवि की सृष्टि रूदन एवं क्रन्दन से युक्त होने पर भी हृदय में आनन्द का ही सूत्रपात करती है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने भी उल्लेख किया है–

करुणादावपी रसे जायते यत्परम्सुखम।

सचेत्सामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।।[22]

अर्थात् सहृदय सामाजिकों को करूणा आदिरसों में भी अनिर्वचनीय आनन्द ही मिला करता है। अतः करूण आदि भी रस ही हैं, आनन्द रूप आस्वाद ही हैं। कवि की सृष्टि सर्वात्मना आनन्दायिनी ही हुआ करती है। उस कवि स्वरूप को आचार्य त्रिपाठी जी चार स्वरूप प्रदान करते हैं–

'चतुर्विधकाव्यानुसारि चातुर्विध्यमुक्तं कवीनाम्–उत्तमोत्तमं कवयन् सिद्ध, उत्तमं कवयनः साधकः, माध्यमं कवयन्नभ्यासिकोऽवरं च कुर्वाणो घटकः।[23]

अर्थात् चतुर्विध काव्यों के अनुसार कवियों के भी चार प्रकार बताये गये हैं– उत्तमोत्तम रचना करने वाले सिद्ध, उत्तम काव्य लिखने वाला साधक, मध्यम काव्य का प्रणेता आभ्यासिक तथा अवर काव्य की रचना करने वाला घटक कहलाता है। इन चारों प्रकार के कवियों का उन–उन विधाओं की रचना में अभिनिवेश होता है। लोक वर्णन विधा पर आधारित ही आचार्य त्रिपाठी जी का कवि विभाजन भी है। अतः इन्हीं कवियों के द्वारा ही हमारा सम्पूर्ण वाड़मय सृजित किया गया है। इनकी वाणी का विलास कवि स्वरूप के विषय में भी प्रमाण स्वरूप है। राजशेखर अपने काव्यमीमांसा मे कवि के विषय में लिखते हैं–

प्रतिभाव्युत्पत्तिमाश्च कविः कविरित्युच्यते। स च त्रिधा–शास्त्रकविः काव्यकविरुभयकविश्च।[24]

अर्थात् कवि वही है जिसमें प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति दोनों का ही योग है। उसके तीन भेद हैं। शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। यह विभाजन त्रिपाठी जी को मान्य नहीं है। उनका मानना है कि उपर्युक्त चतुर्विध में इनका अन्तर्भाव हो जाता है। इन त्रिविध भेद से कवि की सर्वांगीणता प्रकट नहीं हो पाती है। कवि के अतिरिक्त आचार्य त्रिपाठी जी समीक्षक पर भी अभिनवकाव्यलङ्कारसूत्र में अपने विचार व्यक्त किये हैं–

चतुर्विधसमीक्षकतत्त्वाभिनिवेशीविषयनिष्ठः विषयिनिष्ठ सतृणाभ्यवहारीचेति।[25]

अर्थात् सीमीक्षक चार प्रकार के हैं। तत्त्वाभिनिवेशी, विषयनिष्ठ, विषयिनिष्ठ और सतृणाभ्यवहारी। इसमें क्रमशः उत्तमोत्तम काव्य की सम्यक् समीक्षा जो करता है वह तत्त्वाभिनिवेशी समीक्षक होता है। शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार काव्यगत विषयों के विश्लेषण के साथ समीक्षा करने वाला विषयनिष्ठ समीक्षक होता है। इसमें खण्डकाव्य, मुक्तक, कुलक, संघात और चित्र आदि काव्यों के परिशीलन की योग्यता होती है। अपनी अनुभूति का अनुसरण करते हुए जो काव्य की समीक्षा में प्रवृत्त होता है वह विषयिनिष्ठ समीक्षक होता है। सब प्रकार के काव्यों को जो अहो–अहो, साधु–साधु कह कर प्रशंसा करता है वह सतृणाभ्यवहारी समीक्षक होता है। इसकी बुद्धि सद्सत्परीक्षण योग्य नहीं होती है। काव्य–मीमांसा में राजशेखर भी समीक्षक के विषय में मन्तव्य प्रस्तुत किये है–

ते च द्विधाऽरोचकिन सतृणाभ्यवहारिणश्च इति मङ्गल। कवयोऽपि भवन्ति इति वामनीयाः। चतुर्धा इति यायावरीयः मत्सरिणस्तत्त्वाभिनिवेशिनश्च।[26]

अर्थात् मंगल नामक आचार्य का अभिमत है कि आलोचकों के दो भेद–आरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी होते हैं। ये दोनों कवियों पर भी लागू होता है। ऐसा वामन के मतानुयायियों का विचार है, मत्सरी तथा तत्त्वाभिनिवेशी इन दो को और जोड़कर आलोचकों का भेद चार हो जाता है। राजशेखर के उस आलोचक वर्ग के विषय में आचार्य त्रिपाठी जी को आपत्ति है। उनका मानना है कि इस प्रकार के समीक्षक से काव्यत्त्व में कल्पष्ता आ जायेगी। काव्य की उचित समीक्षा ही काव्य का यशःख्यापन करता है। अतः ससीक्षकों का काव्य धर्मों के प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अभिनव काव्य, कवि एवं समीक्षक का युक्तिपूर्वक विचार करते हुए साहित्यशास्त्र सरिता को प्रवाहित करने का सराहनीय कार्य किये हैं। आचार्य त्रिपाठीजी के मत में काव्य लोक का विशेष प्रकाशन है जिसमें आनन्द ही आनन्द है। काव्यलोक सागर में डुबकी लगाने वाला पाठक कभी भी विरसता को नहीं प्राप्त करता है। लोक के प्रकाशन के ही आधार पर चतुर्विध काव्य एवं कवि साहित्य जगत् में स्थान पाते हैं। समीक्षक ही काव्य के महत्वर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालकर उसके वैशिष्ट्य को लोक में स्थापित करता है। अतः त्रिपाठीजी निश्चत रूप से काव्य स्वरूप को इस रूप में गढ़कर साहित्यशास्त्र को समझने की एक अभिनव दृष्टि प्रदान किये हैं।

सन्दर्भ

1. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1/1/1
2. नाट्यशास्त्र, 1/114.115
3. वही, 1/119–120
4. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवराम आप्टे, पृ. 38
5. वही,
6. महाभाष्य, प्रथमआह्निक
7. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1/1/6 की व्याख्या, पृ. 10
8. काव्यालङ्ककार
9. अभिनवकाव्यालङ्कार सूत्र, 1/1/3, 1/1/5, 1/1/6
10. रघुवंश, 1/1
11. वक्रोक्तिजीवितम, 1/17
12. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1/7/8, तेनास्यपूर्णता 1/1/9, पूर्णता चालङ्कारः, 7/1/10 तेनालङ्कार एवकाव्यम्
13. वही, व्याख्या भाग पृ. 19
14. काव्यप्रकाश 1/4
15. काव्यालङ्कारकारिका, 251
16. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1/4/1, 1/4/2,
17. वही, 1/4/3
18. काव्यादर्श, 1/5
19. अभिनवकाव्यलङ्कार सूत्र, पृ. 66–67
20. अग्निपुराण, 337/3
21. काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, 1
22. साहित्यदर्पण, 3/4
23. अभिनवकाव्यलङ्कारसूत्र, कविकोटयः, पृ. 69
24. काव्यमीमांसा, अध्याय–5
25. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1/4/5
26. काव्यमीमांसा, अध्याय–4

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

''अहम् ईक्षे की अनुवाद विच्छित्ति''

अजय कुमार मिश्र

अनुवाद साहित्य–रूपी शरीर का परकाया प्रवेश होता है जिसमें योगमुद्रा की अलौकिकता का अरण्य रोदन थोड़ा कम तथा अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवादी ब्रह्मानन्द सहोदर की रस–सिक्तता अधिक बलवती होती है और रस का यही सत्त्वोद्रेक सहृदय सामाजिकों को नित्य नूतन की ताजगी का अंदाज देता है। इससे रचना कालजयी हो कर क्लासिक्स हो उठती है। इस लिहाज से चर्चित कवि नदीष्ण समीक्षक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा अंग्रेजी मूल से संस्कृत में तकरीबन चौरासी छोटे–मझोले कविताओं की बानगी ''अहम् ईक्षे'' एक अहम हस्तक्षेप माना जाना चाहिए। यह बात अलग है कि देश के नामचीन अदबी संस्था साहित्य अकादेमी, दिल्ली से प्रकाशित होने वाली मानीखेज पत्रिका के एक विद्वान् और सधे संपादक प्रस्तुत समालोच्य पुष्कल अनूदित कृति का जिक्र इसलिए अनदेखी करता मालूम पड़ता है कि इसके मूल भाषा का कवि समकालीन सियासत से जुड़ा है। लेकिन यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि आज की छिछली राजनीति के माहौल में समसामयिक सरोकारों–चाहे वह राजनीति का बिगड़ता मिजाज हो या ध र्म के साथ किसी भी प्रकार का ही क्यों न खिलवाड़ हो अथवा कवि ने जो आज के मानवीय रेशों के धागों में जोड़ पकड़ती गाँठों पर जो अफसोस जताया है, वह भी कोई कम महत्वपूर्ण सवाल नहीं है, जिसमें यत्र–तत्र भावों के रेशमी सपनों को भी देखने से कवि अपना मौका भी नहीं चूकता। हाल–फिलहाल मैककिंग से (द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली, 14 दिसंबर 2013) ''री–इमेजिंग इंडिया'' नामक संपादित किताब का किया है, उसमें पर्यावरण तथा मानव संसाधन विकास को लेकर ज्वलन्त समस्या को उठाया है उसकी चर्चा वैश्विक संदर्भ में होना आज बड़ा जरूरी जान पड़ता है। इस वजह से भी प्रस्तुत अनूदित रचना कर्म का बड़ा महत्त्व जान पड़ता है। इसका एक सबब यह भी जान पड़ता है कि ग्लोबलाइजेशन तथा सूचना प्रौद्योगिकी

के इस घातक दौर में न केवल भारतीय अपितु दुनियाँ की अदबी बिरादरी को आपस में मिल–जुल कर साहित्य और उसके कथ्यों से दोस्ती का हाथ बढ़ाना होगा, जिसके लिए अनुवाद किसी साहित्य के लिए माइटोकॉन्ड्रिया की तरह जीवनदायक शक्ति बन सकता है क्योंकि अभी तक जितने भी विदेशी भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी में संस्कृत कृतियों का अनुवाद किया गया है उसके पीछे औपनिवेशिक शोषण तथा सांस्कृतिक पहचान से कमोबेश खिलवाड़ ही करना था, साथ ही प्रशासनिक कूटनीतिज्ञता भी। इस दृष्टि से 'सर विलियमजोन्स' द्वारा अभिज्ञानशाकुन्तल (1879ई.) का अंग्रेजी अनुवाद अपवाद माना जा सकता है क्योंकि इसके अनुवाद से पश्चिमी देशों का भारत के प्रति फिर से आकर्षण बढ़ा। ''अहम् ईक्षे'' तो एक भारतीय मूल के अंग्रजी कवि की कविता का संस्कृत अनुवाद है, जिसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ–साथ उन तमाम आम जीवन के आस–पास की घटनाओं, परेशानियों तथा मानवीय सरोकारों को कवि अपने शब्दों के आँचल में समेटता नजर आता है जिसे आम जनता खुद–व–खुद अपने आप से जुड़ा मान सकती है। देरीदा जो किसी समालोचना को रचना का ताज पहनाता है। यदि इस दृष्टि से प्रस्तुत अनूदित कर्म को देखा जाए तो यह कविता गुच्छ का इन्द्र–धनुष अपने नाना बिम्बों के कारण संस्कृत अनुवाद के क्षितिज पर दमकता मालुम पड़ता है, क्योंकि विद्वान् अनुवादक ने शब्दों के अर्थों पर भोथरे अर्थ रूपी मक्खी को नही बैठाया है, बल्कि शब्द और अर्थ के बीच जो मूल भावना की संवेदनात्मक गहराई है, उसके रीदम को भी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से अनुभूत कर संस्कृत भाषा के सटीक तथा बहुआयामी–संप्रेषणीयता का आयाम देकर इसकी भाषिक जीवंतता के साथ–साथ अंग्रेजी तेवर को संस्कृत भाषा का सांस्कृतिक जामा पहनाया है। रचना की इस ताजगी भरी सूझबूझ की वजह से यह अनुवाद अपने आप में मूल संस्कृत रचना लगने लगती है और देरीदा के उपरोक्त कथन का नैकट्य भी यहाँ तलाश जा सकता है। गौरतलब है कि इस दृष्टि से नदीष्ण संपादक, समीक्षक को साहित्य के लोकतंत्रीय संघीय बौद्धिक व्यवस्था का ख़याल रखना चाहिए और कभी–कभी वैसी रचना के भाग्य का फैसला पाठकगत पाठ विमर्श पर भी छोड़ दिया जाना चाहिए। वह भी प्रस्तुत समालोच्य कृति का अनुवादक, जो संस्कृत भाषा के लोकधर्मी परंपरा का सर्वमान्य समादृत लेखक ही नहीं, 'संस्कृत–हिंदी साँझी संस्कृति का अटूट कड़ी' माना जाता है। देरीदा वैचारिक हठ के प्रसाद में सेंध मारने के लिए जो – ''आरबिट्री मीनिंग'' की व्यूह रचना

करता है, विचार के उसी सामंतवादी मानसिकता से सधे संपादकों को बचने की कोशिश की जानी चाहिए।

बहुपठित–चर्चित कवि एवं समालोचक अनुवादक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने अंग्रेजी कविता– Write me not / Aquick SMS/Professing that / You love me/I do not want /To be erased/ Thus quickly from/ Your memory/ I Would rather have your writter world /In Long hand / Year very own, जैसी कुछ पंक्तियों की बानगी कितने सरल तथा उभय भाषा धर्मी अर्थ नैकट्य के साथ अनुवाद कर संस्कृत कविता के बिम्ब तथा रूपक में अपनी चूर्णक शैली से जान फूँक दी है– न लिख मां/चलदूरवाणीलघुसन्देशेषु/तव मयि वर्तते प्रेम इति उद्घोषयत्सु/नेच्छाम्यहं स्वकीयं सद्यो लोपम्/तव स्मृतिभ्यः। अत एवाहं समीहे/त्वया स्वहस्राक्षरैर्विलिखितं/ दीर्घं पत्रम्। यल्लघुहस्तलिप्यां न स्यात्/दीर्घहस्तलिप्यामेव स्यात्।/यत् त्वदीयं स्वीयं स्यात्।(पृ.XIX)। वाकई में यहाँ भाषा का भारी भरकम दबदबा तथा शृंगार का अभिजात्यीय प्रभाव का मिजाज सर्वथा बदला मालुम पड़ता है। गौरतलब है कि कुछ प्रगतिशील लेखक संस्कृत भाषा तथा इसके साहित्य पर सामंतवादी मानसिकता का भी आरोप लगाते हैं। सेवन एक्सटेंशन आफ ह्यूमन कैटोस्ट्रोफी की ओर संकेत करती कविता– ''लुण्ठाकाः मनुष्याः ''में कवि लिखता है– ''नग्नीक्रियन्ते वनानि/निकृत्यन्ते वृक्षाः/उपरि भूमिर्विनश्याति/मानवताया नियतिराकुलीक्रियते/ प्रकृतेः फुफुसा/न शक्नुयु श्वसितुम। (पृ.10–11)। उसी प्रकार ''विशंतिः विशंतिः'' कविता क्रिकेट के मैच फिक्सिंग का खुलासा करती है। आतंकवाद जैसे वैश्विक समस्या के जड़ की जाँच पड़ताल को ''टी–कोशिकाः ''में पढ़ा जा सकता है। उसी प्रकार कूटयोजकः (Racketeer) कृष्ण व्यवहारः (Blackmailing), दंशाभिक्रम (Sting operations), दूरसंवेदनक्षमाणि अन्तरिक्षयानानि (Remote Sensing Satelities) तथा शशिभण्डारविनिमयः (Stock exchanging) आदि अभिनव शब्दों से संस्कृत की श्री वृद्धि हुई है।

सहायक प्राध्यापक
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली

तण्डुलप्रस्थीयम् के नायक निरंजन का व्यक्तित्त्व–एक अध्ययन

डॉ. रामहेत गौतम

संस्कृत साहित्य परम्परा में नाटक का महनीय स्थान है। जीवन के विविध पक्ष करूणा, वेदना, संवेदना, आत्मप्रताड़ना, संघर्ष, गाम्भीर्य और मार्मिक अनुभूतियों से सम्पूर्ण नाट्य साहित्य ओत–प्रोत है। आज भी कवि मनीषियों द्वारा जीवन वैविध्य को प्रकाशित करने के लिए नाट्य साहित्य की सृष्टि अबाधगति से की जा रही है। उसी क्रम में आधुनिक संस्कृत जगत् के गौरव आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत तण्डुलप्रस्थीयम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह 10 अंको का पूर्णतः काल्पनिक कथावस्तु वाला प्रकरण कोटि का रूपक है। कवि ने लोक जीवन का चित्रण करते हुए शोषित–पीड़ित एवं निर्धन परिवार के एक अल्पायु युवक के जीवन की कठिनाईयों को ही इस प्रकरण की कथा वस्तु बनाया है, जिसमें निरंजन को प्राकृतिक व सामाजिक समस्याओं का सामना बड़ी कुशलता से करते हुए चित्रित किया गया है।

नायक के विषय में कवि ने ''**अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्**''[1] वाली रूढ़ि को तोड़कर एक सामान्य शोषित युवक को अपने रूपक का नायक बनाया है। अमात्य, विप्र और वणिज न होने के वावजूद भी निरंजन में वे समस्त गुण हैं जो एक नायक के लिए अपेक्षित हैं। निरंजन एक आदर्श नायक है। क्योंकि वर्ण अथवा वंश श्रेष्ठता का आधार नहीं होता जैसा कि महाकवि अश्वघोष ने कहा है –

तस्मात् प्रमाणं न वयो न वंशः कश्चित् क्वचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके[2]

पात्रता तो गुणों से आती है। महाकवि भवभूति ने भी ठीक ही कहा है–

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः[3]

वस्तुतः व्यक्ति जितना विपरीत परिस्थितियों में निखरता है उतना अनुकूलता में नहीं निखर पाता। यहाँ नायक को मानसिक–पीड़ा, अन्तर्द्वन्दों,

मर्मभेदी घटनाओं की अर्गला में जकड़ा हुआ दिखाकर कवि ने एक सजीव एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करने का प्रयास किया है। ये मर्मभेदी घटनाएँ हृदय को करुणा के सागर में रससिक्त कर देने वाली हैं।

साहित्य समाज का दर्पण है जिसमें समाज में व्याप्त अच्छाई और बुराई दोनों प्रतिबिम्बित होती हैं। अच्छाई का उत्कर्ष और बुराई का अपकर्ष साफ–साफ दिखता है। आत्मोत्कर्षाभिलाषी जन हितानहित की प्रज्ञापूर्ण कसौटी पर कसकर गुणग्राही व दोषद्रोही हो जाते हैं। उनके लिए सद्पात्रों का व्यक्तित्त्व अनुकरणीय होता है। तण्डुलप्रस्थीयम् का नायक भी इसी प्रकार का एक सामान्य व सीधा–साधा व्यक्ति है, जो समाज के बहुसंख्यक ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितिजन्य आपदाओं से घिरे हुए हैं। इन आपदाओं से निजात पाना तभी सम्भव है, जब हम उस समस्या से भागें नहीं, उसके समाधान के लिए गहन चिन्तन–मनन करें और सम्यक् समाधान के उपाय में दृढ़संकल्पित होकर प्रवृत्त हो जायें।

निरंजन का व्यक्तित्व अनुकरणीय है। उसके व्यक्तित्व को समझने के लिए विन्दुवार चर्चा इस प्रकार है–

संवेदनशीलः– निरंजन प्राकृतिक एवं सामाजिक समस्याओं एवं मुद्दों के प्रति एक संवेदनशील युवा है। निरंजन देखता है कि उसका गाँव पेयजल की समस्या से जूझ रहा है –

पानीयं नास्ति ग्रामे ? तर्हि कथं जीवन्ति जनाः जलाभावे? [4]

इतना ही नहीं, सुरक्षा के अभाव में अपराधियों के आतंक से गाँव के लोग पीड़ित हैं। अंधेरा होते ही अपराधी सक्रिय हो जाते हैं।

तत्र पिशिताशनानां या इव चरन्त्यः प्रतीयन्ते ...... आदि वसमसावितस्ततो भ्रमति।[5]

उसका गाँव अशिक्षा के कारण अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों से ग्रसित है। कुछ धनाढ्य लोगों के हाथों में मूलभूत सुविधाएँ व साधन ग्रसित हो कर रह गये हैं। निर्धन जनता अभावग्रस्त है। अस्पृश्यता के नाम पर समाज के एक समूह को समाज की मुख्यधारा से अलग कर दिया गया है। एक अस्पृश्य व्यक्ति गाँव के मुखिया आदि के कुएँ से पानी तक नहीं ले सकता। यदि चोरी–छुपे पानी लेते हुए पकड़ा जाता है तो उसे कठोर से कठोर सजा दी जाती है, जिससे लोग उनके उपयोग के साधनों, कुआँ व तालाब आदि का उपयोग न करें।[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विदेह गाँव का प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश निरंजन के सम्वेदनशील अन्तःकरण को झकझोर देता है और निरंजन अपनी माँ, अपने समाज व गाँव को समस्याओं से निजात दिलाने के लिए संकल्प लेता है कि –

अधीत्य विद्यां सकलार्थदात्रीं
जलं विदेहेषु न चानयेयम्।
पित्रा यदि त्वां न च योजयेयं
निरंजनो नास्मि पितुः सुपुत्रः।।[7]

अर्थात् सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि का साधन विद्या (ज्ञान) को पाकर गाँव में पेयजल की व्यवस्था कराऊँगा और हे माँ! खोये हुए पिता जी को खोजकर तुम से मिलाऊँगा।

दृढ़निश्चयी– निरंजन अपने मानवीय दायित्त्वों के प्रति सम्वेदनशील व्यक्तित्त्व वाला और अपने कर्त्तव्य–मार्ग पर दृढ़ रहने वाला व्यक्ति है। क्योंकि वह जानता है कि–

विद्या तपो व विपुलं धनं वा,
सर्वं ह्येतत् व्यवसायेन शक्यम्।[8]

निरंजन का यह गुण जन सामान्य पर अपने दायित्त्यों के प्रति संवेदनशील होने का कान्ता–साम्मित प्रभाव छोड़ता है।

इस रूपक में कवि ने निर्धन लोगों की भूख की पीड़ा को निरंजन के माध्यम से अनुभूत कराया है। कवि का मानना है कि भूख से पीड़ित व्यक्ति को आरामदायक विस्तर,सुन्दर–सुन्दर वस्त्र,कीमती आभूषण,सुगंधित पदार्थ, गीत–संगीत के रम्य वातावरण और श्रेष्ठ रमणियाँ आदि ऐश्वर्य–भोग के साध ान नहीं भाते, उसे तो उस समय केवल भोजन ही अभीष्ट होता है–

शय्या वस्त्रं भूषणं चारुगन्धो
वीणा वाणी दर्शनीया च रामा।
नो रोचन्ते क्षुत्पिपासातुराणां
सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः।।[9]

नम्र :–अपने दायित्त्वों को समझने वाला व दायित्वों के प्रति समर्पित व दृढ़संकल्पित निरंजन स्वभाव से विनम्र भी है। निरंजन की विनम्रता का

प्रथम दर्शन प्रकरण की प्रस्तावना में ही सूत्रधार व नटी के साथ वार्तालाप में हो जाता है। नटी निरंजन की विनम्रता से प्रभावित होकर कहती है –

ननु सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यं वत्सेन।

अहो अतीव चारु लपत्ययं बालः।[10]

निरंजन स्वयं के बराबर आयु वाले लोगों के साथ भी नम्र व सम्मानजनक व्यवहार करता है। वह अपनी विनम्रता से सभी के दिल को जीत लेता है। उदाहरण के लिए एक दृश्य प्रस्तुत है जब निरंजन विद्याध्ययन के दृढ़ संकल्प के साथ पंचानन मिश्र जी के आश्रम पहुँचता है और आश्रम में चान्द्रायण व कृच्छ्रायण के सम्मुख पहुँचकर कहता है –

निरंजन – (उपसृत्य) नमो युवाभ्याम्।

कृच्छ्रायण – चान्द्रायण, नमस्करोत्ययम्।

चान्द्रायण – तेन किम् ?

कृच्छ्रायण – अद्य यावन्न कोऽपि मां नमश्चकार। श्रुत्वा मे चित्ते कुतकुतं जातम्।11

इतना ही नहीं विपरीत परिस्थिति में भी निरंजन अपनी विनम्रता का त्याग नहीं करता। आचार्य पंचानन मिश्र जी के उपेक्षित व घृणापूर्ण भाव के साथ वोले गये वचनों को सुनकर भी नम्रता का त्याग न कर, सौम्य भाव से बात करता है।

पंचानन – कथय रे ! कस्मिन कुले जातः, किम् गोत्रम्, का शाखा ते?

निरंजन – एतत् तु किमपि न वेद्मि भगवन्!

पंचानन – न वेत्सि ? तर्हि किमर्थमिह प्राप्त : ? अपसर तावत्।

निरंजन – स्वमातु : पुत्रोऽस्मि इत्येव वेद्मि। श्रूयते पुरा आसीज्जबालायाः पुत्रो जाबालः। सोऽपि न स्वगोत्रं, कुलं शाखां वा वेद। किन्तु गुरुणा सत्येऽभिहिते सत्यकाम इति नाम प्रदाय सानुग्रहं स शिष्यत्वेनाङ्गीकृतः। एवमेव भवन्तोऽत्युगृहणन्तु माम्।

पंचानम – अरे, अरे, दिङ्मात्रं दृश्यतामस्य बटोर्धाष्टर्यम् ! .... अरे शिष्याः, अयमन्त्यजः कश्चन गुरुकुले पदं न्यदधादिति प्रतीयते। उत्सारयत एनम्।

निरंजन – ——— (पंचाननम् प्रति) भो गुरुवर, साधयामस्तावत्।[12]

इस दृश्य से कवि ने यही प्रतिपादित किया है कि विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुण 'नम्रता' का त्याग नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार आचार्य पंचानन मिश्र जी के द्वारा आश्रम से बाहर निकाल दिये जाने पर निरंजन जाने लगता है। निरंजन की कार्यकुशलता को जान चुके आलसी, कामचोर व चाटुकार्यपट्ट चान्द्रायण और कृच्छ्रायण आश्रम के कार्यों में मदद के लिए निरंजन को रोकना चाहते हैं। चांद्रायण और कृच्छ्रायण के द्वारा निवेदन करने पर आचार्य पंचानन निरंजन को आश्रम में रुकने की अनुमति इस शर्त पर देते हैं कि – उसे आश्रम के गौसेवा, ईंधन लाना आदि सारे कार्य करने होंगे और अपना निवास शेष सभी के निवास से दूर बनाकर रहना होगा, स्वाध्याय के समय वह स्वाध्याय कक्ष से दूर बैठकर सिर्फ सुनेगा। स्वाध्यायकक्ष और गुरुकुल के किसी भी कक्ष में प्रवेश नहीं करेगा।[13]

इस प्रकार संसार को ज्ञान का मार्ग दिखाने वाले देवता होने का दावा करने वाले आचार्य पंचानन मिश्र द्वारा किये गये अमानवीय व्यवहार के वावजूद सकलार्थसाधिका विद्याभिलाषी निरंजन अपनी विनम्रता को नहीं त्यागता। कवि ने इस दृश्य के द्वारा पंचानन मिश्र के समान संकीर्ण विचारध ारा वाले शास्त्रज्ञों की प्रज्ञा पर प्रश्नचिह्न लगाया है। इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार के व्यवहार ने गुरु के गौरव को हमेशा कलुषित ही किया है। गुरु–शिष्य के मध्य तनाव लोक हित में नहीं होता। गुरु–शिष्य के मध्य मतभेद नहीं मतैक्य हो, इसलिए गुरु–शिष्य के मध्य मधुर सम्बन्धों की कामना करते हुए ऋषि कहते हैं कि–

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।[14]

पवित्रमन :– विद्याध्ययन के लिए संकल्पित स्थिरप्रज्ञ निरंजन का मन पवित्र है। वह अपनी मर्यादाओं व आदर्शों से कभी भी विचलित नहीं होता। जब आचार्य पंचानन मिश्र जी की पत्नी भानुमति 'माता जी' शब्द से सम्बोधि ात करने से मना करती हुई कहती है कि– **किमिति पुनः पुनर्मातर्मातरिति साम्रेडं व्याहरन् खेदयसि मे चित्तम् ? किमहं सर्वधा वृद्धा ? वृद्धेनोढास्मि, न तु मे वयोऽतीतम्।**[15]

गुरुमाता के वचनों को सुनकर शुचिमन निरंजन बड़े सौम्य शब्दों में 'माताजी' सम्बोधन को उचित मानते हुए कहता है – **गुरुभार्या तु मातैव।**[16]

इस दृश्य में कवि ने युवा विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करते हुए संदेश दिया है कि युवाओं के जीवन में इस प्रकार के कई दुरवसर आते हैं, उनसे बचें। अपने हितानहित का निर्णय मन से नहीं बुद्धि से करें। जैसा कि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि–

हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम्।[17]

निरंजन के व्यक्तित्त्व का यह शुचिता वाला गुण जन सामान्य को यही प्रेरणा देता है कि यदि दूसरा व्यक्ति अज्ञानतावश असद् मार्ग पर प्रवृत्त होने को उद्यत हो तो उस अवस्था में हमें अपने मन की शुचिता का त्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि–

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।[18]

प्रियंवद एवं कुशलवाग्मी :– पवित्रमन निरंजन सत्य एवं प्रिय वचनों से सभी के दिल को जीत लेता है। प्रथम अंक में उसकी प्रियवादिता की प्रशंसा करती हुई नटी कहती है– **ननु दर्शनीयोऽयं बालकः मधुरा तथास्य वाणी।**[19] **ननु सूनृतयैव गिरा कृतमतिथ्यं वत्सेन। अहो अतीव चारु लपत्ययं बालः।**[20]

शारदा और उसकी सखियाँ भी उसकी सत्यपूर्ण प्रियवादिता की प्रशंसा करती हैं–

अहं मन्ये नासौ विक्षिप्तो न वा वाचालः भूतार्थमेवासौ भणति।
धन्योऽसौ बालको यो भट्टिण्या एवं श्लाघ्यते।[21]

सत्यवादी एवं प्रियंवद निरंजन हमेशा सावधान रहता है कि उसके किसी भी वचन अथवा कार्य–व्यवहार से किसी को अकारण शारीरिक अथवा मानासिक पीड़ा न पहुँचे। कहा जाता है कि वाणी वह मन्त्र है जिसके सद्सम्यक उच्चारण से शत्रु भी मित्र बन जाता है; बिगड़ते कार्य बन जाते है।

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वेतुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं बचने का दरिद्रता।।[22]

निरंजन की वाणी में यह चमत्कारी शक्ति है। उसकी वाणी में सादगी,

सत्यता व सार्थकता है वह सबके हित की बात करता है। हर कोई उसकी छल, दम्भ, द्वेष व पाखण्ड रहित सद्वाणी पर भरोसा करने के लिए वाध्य हो जाता है। निरंजन के वाग्व्यवहार की चतुरजा की प्रशंसा करती हुई उसकी माँ धारिणि कहती है कि– **एवमेव प्रवंचयन्ति प्रवसन्तः पुत्राः स्वजननीः। तथापि विदेहेभ्यो गमनेन ते लाभस्तर्हि सुखं गच्छ। (इति वाष्यं विसृजति)**[23]

रक्तलोक :– निरंजन के रक्तलोक व्यक्तित्व से सभी सन्तुष्ट व खुश रहते हैं। निरंजन अपने सहपाठियों से बड़े सम्मानजनक तरीके से व्यवहार करता है। गुरुमाता जी की खुशी के लिए उनकी इच्छानुसार गीत सुनाता है। संगीत कला साधिका भानुमती कलाप्रेमी निरंजन के मुख से सुमधुर गीत सुनकर निरंजन की स्वरमाधुरी की कायल हो जाती है और प्रशंसा में कहती है–

कर्णरसायनं स्वरं पारायिष्ये श्रोतुम्।[24]

निरंजन बड़ों की खुशी का इतना ध्यान रखता है कि वह अपना अभीष्टतम विद्याप्राप्ति का कार्य भी वीच में ही रोककर गुरू पंचानन मिश्र जी की खुशी के लिए उनकी आज्ञानुसार परमगुरु विधुशेखर शास्त्री जी के जन्मदिवस पर जोशीमठ जाता है और परमगुरु से आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त माला आदि लाकर आचार्य पंचानन मिश्र जी को देता है।

यद्यपि निरंजन को जोशीमठ भेजने के पीछे सकारात्मक सोच न होकर उसको ठिकाने लगाना मात्र थी फिर भी वह इस दायित्व को दक्षतापूर्वक पूरा करता है।

एकाग्रचित्त :–निरंजन प्रत्येक कार्य जाग्रत मन बुद्धि से करता है। आचार्य पंचानन मिश्र जी उससे घृणा करते हुए भी उसकी दक्षता व प्रज्ञा को अन्दर ही अन्दर स्वीकार भी करते हैं।

पंचानन–किमत्र क्रियेत?यदि निरंजन इतो बहिः स्थित्वा श्रावं श्रावं मदुदीरितं महाविद्वान भवत्तर्हि प्राक्तनाः संस्कारस्तदीयास्तथाविधाः स्युः।[23] **प्राज्ञश्च स्मृतिमांश्चासौ,**[25]

इसप्रकार प्रज्ञापूर्वक किया गया कार्य व्यक्ति की दक्षता सिद्ध करता है और विरोधी व्यक्ति भी कार्यकौशल को स्वीकार करने पर मजबूर हो जाता है। जैसा कि कृच्छ्रायण आचार्य पंचानन मिश्र जी से कहता है – **बटुरयं**

महान् कार्यसाधक:[26]

आज का युवा कम समय व कम परिश्रम में ही अधिक से अधिक सफलता चाहता है। जिसके लिए वह रिश्वतखोरी आदि के अनुचित मार्ग को अपनाता है, जिनमें सफलता की सम्भावना तो कम होती है, असफलता व अपूर्णीय क्षति की आशंका हमेशा बनी रहती है। ऐसे लोग हताश होकर असद् कर्मो की ओर प्रवृत्त होते हैं, तो कुछ आत्महत्या जैसे भयावह कदम उठा लेते हैं। इस दृश्य के माध्यम से कवि ने युवाओं को संदेश दिया है कि सफलता प्रज्ञा और दक्षता से ही सुनिश्चित होती है अन्य उपायों से नहीं। दक्षता और आत्मकौशल से आत्मविश्वास वड़ता है जिससे लक्ष्य और आसान हो जाता है। व्यक्ति तनावमुक्त व प्रशन्नचित्त रहता है।

अछूत होने के कारण निरंजन का स्वाध्याय कक्ष में प्रवेश वर्जित है फिर भी वह दूर से ही मात्र सुनकर समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है। उसकी इस प्रतिभा की चर्चा आचार्य और उनके शिष्यों के मध्य होने लगती है–

पंचानन – हुम् । अस्मात् स्वाध्यायकक्षाद् वहिः स्थित्वा चतुर्ष्वेव वर्षेषु निरंजनः सर्वाणि शास्त्राणि समधिगतवानिति न प्रत्येतुं पारयामि। मिथ्यैव युष्माकं मतिरित मन्ये।

कृच्छ्रायण – भगवन् सर्वमसौ स्मरति। असौ एकावधानी स्थात्। अस्माभि : प्रत्यक्षमनुभूतम्।

चान्द्रायण – अथ किम्, अथ किम्, सर्वाणि शास्त्राणि तस्य हस्तामलकवद् भासन्ते।

मन्द्रायण – भगवन् अस्माकं त्वायुः क्षपितं गुरूकुलेऽस्मिन्। निरन्जनो निष्प्रयासमल्पेनैव कालेन महापण्डितो जातः वयं च तथैव मन्दा अज्ञानिनस्तिष्ठामः।

पंचानन – किमत्र क्रियेत ? यदि निरंजनः इतो वहिः स्थित्वा श्रावं श्रावं मदुदीरितं

महाविद्वानभवत्तर्हिप्रातुनाः संस्कारस्तदीयाः तथाविधाः स्युः यूयं संस्कारहीनाः।[28]

यद्यपि आचार्य पंचानन और आश्रम के अन्य शिष्य उससे द्वेष रखते हैं फिर भी उसकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं। यह सब किसी की कृपा से नहीं वल्कि उसकी अपनी एकाग्रता और समर्पण से ही सम्भव हुआ है। इस सम्पूर्ण

घटनाक्रम से कवि ने युवाओं को संदेश दिया है कि कार्यसाधकता किसी भी व्यक्ति में स्वतः ही नहीं आ जाती। उसके लिए स्थिरमन, कुशाग्रबुद्धि एवं प्रज्ञावान होना अत्यावश्यक है। जैसा कहा गया है कि–

शरीर – निरपेक्षया दक्षस्य व्यवसायिनः।

बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचन दुष्करम्।।[29]

अर्थात् जो व्यक्ति शरीर को कष्ट होने की चिन्ता नहीं करता। सोच–समझकर ही कार्य करता है। उसके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं होता। अर्थात् तन्मयता से कार्य करने वाला सर्वत्र सफल होता है

शास्त्रज्ञः– यह रूपक शास्त्रीय ज्ञान का भण्डार है। कवि ने जगह–जगह शास्त्रों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। कार्यकौशल, वाक्‌कला–प्रवीणता आदि समस्त प्रकार का कौशल लोक और शास्त्र के अनुशीलन से ही आता है। सम्पूर्ण प्रकरण में निरंजन के समस्त कार्य–व्यवहार व वाग्व्यवहार में उसका शास्त्रीय ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है। जनसामान्य के साथ प्रशासकों के व्यवहार के औचित्यानौचित्य को लेकर निरंजन की राजकुमारी शारदा के साथ वाग्व्यवहार हो या गुरूकुल में प्रवेश के समय आचार्य पंचानन मिश्र जी द्वारा गोत्र व वंश पूछे जाने पर निरंजन द्वारा वैदिक ऋषि जबाला का उदाहरण देकर विद्यार्थी के वंश को प्राथमिकता देने की परम्परा का खण्डन इन सबके लिए प्रज्ञा अपेक्षित है जो शास्त्रानुशीलन से ही प्राप्त होती है। इससे कवि ज्ञापित करना चाहते कि शास्त्रों में निर्दिष्ट वताकर फैलाये गये दुष्विचारों का खण्डन शास्त्रों के तर्कों से ही संभव है। गौसेवा करते वक्त पाँच गायों से पाँच ज्ञानेन्द्रियों की तुलना, पाँच की संख्या वाले अन्य दार्शनिक तत्त्वों जैसे– पाँच कर्मेन्द्रियों पाँच ज्ञानेंद्रियों व पाँच महाभूतों आदि के विचारपूर्ण दृश्यों के माध्यम से कवि ने दर्शनशास्त्रीय ज्ञान को प्रतिपादित किया गया है। पाँच नाट्य सन्धियों व सन्ध्यांगों की चर्चा में नाट्यशास्त्रीय ज्ञान भी लाक्षत होता है। निरंजन विविधशास्त्रों का कुशल ज्ञाता है। उसके शास्त्रीयज्ञान को प्रशंसा में कृच्छ्रायण और चान्द्रायण कहते हैं कि–

वस्तुतो गुरवोऽपि न तथा ग्रन्थग्रन्थीः शिथिलयिंतु प्रभवन्ति तथायम्।[30]

सर्वाणि शास्त्राणि तस्य हस्तामलकवद् भासन्ते।[31]

विविध शास्त्रों का अनुशीलन कर शास्त्रसार को प्रज्ञा की कसौटी पर परखते हुए अनुकरण व आचरण करना उचित है।

कलाप्रियः– इस रूपक में कवि ने मनुष्य की कलाप्रियता का चित्रण किया है। प्रकरण का नायक निरंजन गायन कलाप्रेमी है। वह व्यस्त दिनचर्या से कुछ फुरसत के पलों में कुछ न कुछ गुनगुनाता रहता है। जैसे कि –

ग्रामे विदेह संज्ञे, पानीयं कथमहो लभे बन्धो।

भ्राम्यत्येषा विकला गौरी गौर्मे तृषार्दितेह।।[32]

देवी दर्शन के वक्त भी वह गाता है –

सुखदं स्याज्जननि ते दर्शनम्।

समस्त दुःख भंजनं समस्तदोषनाशनम्।

भवेन्निरंजनायं तत् सत्पथप्रकाशनम्।।[32]

निरंजन की गायनकला की प्रसंशा करती हुई राजकुमारी शारदा की सखी प्रज्ञा कहती है कि – **अहो कण्ठमाधुर्यम्**[33]

भानुमती कलाप्रेमी निरंजन के मुख से सुमधुर गीत सुनकर निरंजन की स्वरमाधुरी की प्रशंसा में कहती है – **कर्णरसायनं स्वरं पारायिष्ये श्रोतुम्।**[34]

कलाप्रियता मानव का स्वाभाविक गुण है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ विशेष कला अवश्य होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कलात्मक पक्ष से सुख पाता है। अपनी कलात्मकता को कुण्ठित करने वाला व्यक्ति सदा असन्तुष्ट व अशान्त मन रहता है। मन की व्यग्रता विविध रोगों का कारण बन जाती है। अशान्त मन से किये गये सारे कार्य असफल हो जाते हैं।

व्यग्रचित्तो हतो जपः[35]

अतः शास्त्रानुशीलन एवं नृत्य गीत, वाद्य, एवं चित्र कला आदि शान्तिपूर्ण उपायों से जीता गया मन सदा शान्त रहता है।

मनः शान्त्यायुधैर्जितानां तु शश्वच्छांतिर्निगच्छति।[36]

स्वस्थ्य प्रसन्न मन से समाधि की सिद्धि होती है। सामाधियुक्तचित्त वाले का ध्यानयोग सफल होता है। ध्यान की सिद्धि से मुक्ति का मार्ग प्रसस्त हो जाता है।

स्वस्थ्य प्रसन्नमनसः समाधिरूपपद्यते।

समाधियुक्तचित्तस्य ध्यानयोगः प्रवर्तते।

ध्यानप्रवर्तनाद्धर्माः प्राप्यन्ते यैरवाप्यते।

दुर्लभं शान्तमजरं परं तदमृतं पदम्।।[37]

गायनकला कुशल निरंजन का कण्ठ जितना सुरीला है रूप भी उतना ही सुन्दर व आकर्षक है। निरंजन को देखते ही नटी कहती है –

ननु दर्शनीमोऽयं बालकः [39]

शारदा भी निरन्जन के प्रथम दर्शन पर कहती है – **दर्शनीयोघ्यं किशोर** :[40]

देशभक्तः– इस रूपक में देश प्रेम का भी चित्रण मिलता है। निरंजन देशभक्त युवा है। वह अपनी जन्मभूमि विदेह ग्राम की सूखा और भुखमरी जैसी प्राकृतिक समस्याओं एवं अशिक्षा, आतंक और अस्पृश्यता आदि सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील होने के साथ–साथ उनके समाध ाान के लिए दृढ़ संकल्पित भी है। नवयुवा तेजस्वी व शूरवीर निरंजन विदेह ग्राम के हित रक्षार्थ ग्रामाधिपति के सौनिकों से अकेले ही लड़ता है। मनसाराम सूचना देते हुए कहता है – **निरंजन नितरामेकाकी युध्यते तत्र ग्रामाधिपस्य सैनिकः।**40 निरंजन जैसा सशक्त मनोबल सम्पन्न व्यक्ति सर्वत्र सफल रहता है। मनोबल युक्त व्यक्ति निर्जन प्रदेश, जंगल के दुर्गम्य स्थल, घोरसंकट, उतार–चढ़ाव के दौर में व युद्ध के समय भी सदा निर्भीक रहते है–

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।

उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्।।[42]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तण्डुलप्रस्थीयम् के माध्यम से कवि ने भूख प्यास से आकुल, अज्ञानता के घोरान्धकार में पड़े तिरस्कृत शोषित लोगों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है। पंचानन मिश्र जैसे ढोंगियों के प्रति आक्रोश भी दिखाया है। निरंजन के रूप में एक आदर्श युवा की कल्पना कर कवि ने वर्तमान के अत्यूर्जावान युवाओं का पथप्रदर्शन किया है। कवि की कामना है कि प्रत्येक युवा निरंजन के समान निरोगी, पुष्टशरीर, वलवान् व साहसी हों। मानसिक रूप से सुदढ़, तीव्र बुद्धिबाला हों। प्रत्येक युवा शास्त्रीय, वैज्ञानिक व व्यवहारिक ज्ञान का ज्ञाता वक्ता होने के साथ–साथ उसे व्यवहार में लाने वाला भी हो, जैसे कि निरंजन का ज्ञान मुख से कम व्यवहार में ज्यादा छलकता है। निरंजन की भाँति प्रत्येक युवा अपने बुजुर्ग

माता–पिता, परिवार, समाज, गाँव व देश के प्रति सम्वेदनशील होने के साथ ही उनके प्रति समर्पण भाव के साथ कर्त्तव्य में प्रवृत्त हो। परस्पर द्वेश न होकर मैत्रीभाव हो। वचनों में प्रेम, सौम्यता व मधुरता हो। प्रत्येक वचन आघात रहित हो। बुद्धिजीवी लोग दूषित परम्पराओं को त्यागकर अपने ज्ञान–कौशल से भारत के युवाओं के आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करें। जिससे भारत तीव्रतर गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो।

सन्दर्भ

1. दशरूपक
2. बुद्धचरित 1/46
3. उत्तररामचरितम्
4. तण्डुलप्रस्थीयम् अक–1 पृष्ठ – 4
5. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक 1 पृष्ठ 8
6. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 10 पृ. 101
7. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक 1 श्लोक – 6
8. महाभारत शांति पर्व/120/45
9. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 8 पृष्ठ – 77
10. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 1 पृष्ठ – 4
11. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 3 पृष्ठ–26
12. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 3 पृष्ठ – 32
13. तण्डुलप्रस्थीयम अंक 3 पृ. 34 से 36 तक
14. तैत्तिरीयोपनिषद् 6/19
15. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 4 पृष्ठ 45
16. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 4 पृष्ठ 45
17. वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड/21 /3
18. विदुर नीति 4/40
19. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक 1 पृष्ठ 3
20. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 1 पृष्ठ 4
21. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 2 पृष्ठ 20
22. चाणक्य नीति 3/133
23. तण्डुलप्रस्थीपम् अकं – 1 पृष्ठ 10,11
24. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 4 पृष्ठ 46
25. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 37
26. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 41
27. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – 3 पृष्ठ 32

28. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 37
29. भोजप्रबन्ध/ 8
30. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 40
31. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 37,
32. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक 1 पृष्ठ 2
33. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –2 पृष्ठ 22
34. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –2 पृष्ठ 22
35. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ 46
36. पद्मपुराण 1/29/32
37. बुद्धचारित 28/24
38. बुद्धचरित 12/105,106
39. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक –4 पृष्ठ
40. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक – पृष्ठ
41. तण्डुलप्रस्थीयम् अंक 10 पृष्ठ 102
42. विदुर नीति 7/67

सहायक प्राध्यापक –संस्कृत,
डॉ.हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र.

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का जनवादी कवित्व

डॉ. शशिकुमार सिंह

बीसवीं एवं इक्कीसवीं सदी के संधिकाल के आस–पास के जिन कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी अजस्र रचनाधर्मिता से संस्कृत–साहित्य को समृद्ध किया है उनमें आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ परिगणित होता है। आचार्य त्रिपाठी की सशक्त एवं स्फूर्त लेखनी न सिर्फ संस्कृत जगत् में कीर्तिमान् स्थापित की है अपितु संस्कृतेतर भाषाओं में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में कामयाब रही है। उन्होंने काव्य–सृजन की प्राचीन व पारम्परिक पद्धति को नये रूप में प्रस्तुत कर उसमें और अधिक सरलता एवं रोचकता के रंग मधुमय भरे हैं। गद्य, पद्य, नाट्य, उपन्यास, काव्यशास्त्र, डायरी, समीक्षा, यात्रावृत्तान्त, गजल आदि विविध विधाओं में अपनी रचनाशीलता को विस्तार देते हुए आचार्य त्रिपाठी ने ऐसा वितान खड़ा किया है जिसके मनोरम छॉव में साहित्यानुरागी पर्याप्त संतोष एवं भरपूर आनन्द का सहज ही अनुभव प्राप्त करता रहता है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की रचनाओं में उनका जन–सामान्य के प्रति गहरा अनुराग और उनसे यथार्थ सहानुभूति का भाव अन्तर्निहित है। जिसके कारण इनके कवित्व का जनवादी पक्ष स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है। यद्यपि आचार्य त्रिपाठी की प्रत्येक रचना श्रेष्ठ एवं मर्मस्पर्शी है परन्तु कोमल अन्तःकरण की मनोरम अभिव्यक्ति का निकष है, उनकी कृति लहरीदशकम्। जिसमें मानव जीवन के विविध रूपों की बांकी झांकी आंकी गयी है, जो बसन्तलहरी, निदाघलहरी, प्रावृड्लहरी, धरित्रीदर्शनलहरी, जनता लहरी, रोटिकालहरी, नर्मदालहरी, मृत्तिकालहरी, अद्यापिलहरी और प्रस्थानलहरी दशविध् लहरियों में विभक्त है।

'जनता लहरी' इनकी अनुपम और अद्वितीय रचना है जिसमें दुःखी,

शोषित और पीड़ित जनता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है। कवि ने निरीह जनता को अपना आराध्य मानते हुए उसे अपने मानस का अधिष्ठाता बताया है। जन–सामान्य से निर्मित निकाय को सामान्य भाषा में लोक शब्द से भी अभिहित किया जाता है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार जनपद में निवास करने वाले लोग ही 'लोक' कहलाते हैं। जनपद का अर्थ है देश।

"लोको नाम जनपदवासीजनः। जनपदश्च देश एव।"[1]

और आचार्य त्रिपाठी के दृष्टि में लोक का अनुकीर्तन ही काव्य है–

लोकानुकीर्तनं काव्यम्।[2]

तथा आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक में विभक्त तीनों लोकों के परस्पर अनुषक्ति से उत्पन्न सकल समुल्लास ही जीवन है। वही सकल समुल्लसित जीवन ही साहित्य में प्रतिफलित होता है।

त्रयाणां च सकलः समुल्लासो जीवनम्।[3]

तच्च साहित्ये प्रतिफलति।[4]

'जनतालहरी' में जन–सामान्य के दुःखमय जीवन का मर्मस्पर्शी प्रतिफलन है। तत्कालीन परिस्थिति में देश की जनता की पीड़ा और संत्रास कवि के कोमल मन को झकझोर कर रख देती है। सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनेताओं की कर्त्तव्य विमुखता और धनिकों व बाहुबलियों द्वारा किया जाने वाले अत्याचार से त्रस्त जनता की दयनीयता से द्रवित ह्रदय वाला कवि स्वयं को इस तरह जनता से जोड़ लेता है कि वह जनता की आराधना हेतु तत्पर हो उठता है। जनता की यह आराधना उसे ईश्वर की पूजा के समान प्रतीत होने लगती है। कवि का मानना है जन–जन में परमेश्वर विद्यमान है और वह परमेश्वर ही नाना रूपों में जनता के चिद्धाम में निवास करते हुए लीला करता है।

एकं सद् बहुधा वदन्ति यदिदं विप्राः परं व्योमगं
यच्चैतन्यमखण्डमेकमखिलं ब्रह्माण्डभाण्डे स्थितम्।
तन्नानात्वविभक्तमप्रतिहतं भिन्नैस्तथा नामभी–
रूपैर्व्यक्तिभिरत्र चैव जनताचिद्धाम्नि लीलायते।।7।।[5]

जनता स्वभाव से ही स्थिति, लय और आविर्भाव की हेतु होती है।

योगक्षेम का विधान करने वाली राष्ट्र की जनता ही सही अर्थों में स्तुत्य है।

अस्माकं तु त्रिसर्गतः स्थितिलयाविर्आव हेतुः पर,
योगक्षेमविधायिनीह जनता राष्ट्रस्य सा स्तूयते।।2।।[6]

इसी भाव को रामचरितमानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी इस रूप में कहते हैं–

सीयराममय सब जगजानी। करहूँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।[7]

कवि का मानना है कि उसके ह्रदय में सह्रदयविभावित गुणवती जनता ही आसीन है। निश्चित रूप से वही उसके भीतर से वाणी के रूप में अपने आपको व्यक्त करती है।

एषा सा सहजं विभावितगुणा मे मानसे संस्थिता
व्यक्तिं स्वस्य करोति चैव जनता वाग्भिर्ममैषा ध्रुवम्।।[8]

परन्तु वह जनता जब दुर्दशा को प्राप्त होती है तो उसके अनुरागी का खिन्न होना भी स्वाभाविक ही है। जनानुरक्त आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का भी अन्तर्मन दुःख से भर जाता है। कवि की दृष्टि में जनता उस निरीह गाय के रूप में प्रतीत होने लगती है जो दुग्धदोहन करके वृद्धावस्था में वधिकों के हाथों सौंप दी जाती है।[12] जनता के द्वारा निर्वाचित होकर नेतागण जनता को उसके हाल पर छोड कर राजधानी प्रस्थान कर जाते हैं। नेताओं पर कटाक्ष करते हुए जनता के कुशल चितेरे कवि राधावल्लभ कहते हैं जनता के द्वारा निर्वाचित होकर क्षेत्र के नेता अपने–अपने क्षेत्रों से अगले निर्वाचन तक के लिए दिल्ली चले जाते हैं और जनता उनकी बाट जोहती रहती है–

दिल्लीं यात इतश्च प्रतिनिधिनिर्वाचितो यो जनै–
ग्र्रामे जानपदा प्रतीक्षणपरास्तिष्ठन्ति धैर्यान्विताः।[10]

यद्यपि नेता के विषय में किसी अंग्रेजी विद्वान् का कथन है–

Leader is that
Who knows the way
Shows the way
And goes the way.

परन्तु जनतालहरी के अनुसार नेता अपने नेतृत्व धर्म के मार्ग से पथभ्रष्ट हो चुका है वह घमण्ड में चूर और विनय से च्युत होकर नर पशु के समान

आचरण में निरत है। वह धरती पर शासन तो कर रहा है परन्तु उसके द्वारा यह धरती सम्भाली नहीं जा रही है।

उत्सिक्ता विनयाच्च्युता नृपशवो भाग्यैश्चलैर्विस्मिताः
क्रूराचारपरायणाश्च धरणीं नेतब्रुवाः शासति।
नीचैस्तैर्न धृता धरा च नितरां नीचैरियं नीयते
तामेतां तु समुद्धरेद्धि जनता स्वेनैव सत्त्वेन सा।।[11]

प्रकृति, स्वभाव और नीयत से निम्न होने के कारण कवि ने भ्रष्ट नेताओं को 'नीच' तक कह डाला हैं यहाँ नीच शब्द का अर्थ नीचा वर्ग होने से नहीं है। जनता के प्रति गहरी सम्वेदना रखने वाले आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का अन्तःकरण नेता और उससे त्रस्त जनता के मध्य चलने वाले द्वंद से विस्फारित हो उठता है और संभवतः कवि आचार्य त्रिपाठी जी यह सोचने के लिए विवश हो जाते हैं कि–

ये इन्तख़ाब भी अब हमें ही करना है
दिया जलायें या रिश्ता हवाओं से रक्खें।

और आचार्य त्रिपाठी स्वयं को जन–सामान्य का अभिन्न अंग बना लेते हैं। जनतारूपी निस्सीम गहरे महासागर पर वे स्वयं को एक क्षण भंगुर बुल–बुले के समान मानते हैं जो फूटकर इसी महासागर में विलीन हो जाता है और कुहर में कहीं न कहीं अपना अस्तित्व बनाये रहता है। उनका मानना है कि न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध, धर्म, शास्त्र पुराण आदि में व्यर्थ समय गँवाने से कोई लाभ नहीं जब तक जनता का चिन्तन, उसका अनुकीर्तन और जन–जन के हृदय में स्थित नारायणका दर्शन नहीं किया गया।[12]

कवि की उदारतापूर्ण सूक्ष्म–अवेक्षिका दृष्टि जनता के विभिन्न रूपों पर पड़ती है। कभी कठोर भूमि को खोदने वाले श्रमिक पर तो कभी लोहा गलाने वाले मजदूर पर, कभी लकड़ी छीलने वाले काष्ठकार पर, कभी कपड़े सिलने वाले दर्जी पर, और कभी खेत में पसीने की बूंदों से चिन्हित किसान पर पड़ती है तो कभी छीन ली गई भूमि वाले निरीह असहाय, शोषित व गरीब को अपने दृष्टिपथ पर लाती है।[13]

कवि ने जन–साधारण के ऊपर सामान्य दृष्टिपात् मात्र नहीं किया है बल्कि उनकी संवेदनाओं को, उनकी पीड़ा को, उनके सन्त्रास को आत्मसात् भी किया है और आत्मा का वही भाव उनके लेखनी के माध्यम से काव्य के रूप में परिणत हुआ है।

कवि आशावादी है, भारतीय लोकतंत्र में उसकी गहरी आस्था है। विकृत हो गये हुए समाज के प्रति देश के जिम्मेदार नागरिक होने के कारण उसका दुखी होना स्वाभाविक है। कवि को आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि जनता अवश्य एक बार एकजुट होगी और संगठित होकर अपने प्रति हो रहे अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठायेगी। समूह से उत्पन्न दूरंत वेग से भरी आंधी तुच्छ, अन्दर से खोखले परन्तु बाहर से बजूके के समान[14] आतताईयों, भ्रष्ट नेताओं, पाखण्डी धार्मिकों, और संवेदनहीन धनिकों को नष्ट कर देगी।[15] कवि की कामना है कि जैसे श्री कृष्ण ने ग्वालबाल वृद्ध सहित गोबर्धन को धारण करते हुए इंद्र के अहंकार का मर्दन किया था। उसी प्रकार जनता भी अपने शोषकों के अहंकार का समूल नाश करे। जनता अपनी सहज स्फूर्ति और शक्ति से स्वयं को दृढ़ता के साथ अनुशासित करे, और एकच्छत्र प्रसारित राष्ट्र रूपी गोबर्धन समस्त देश की जनता के सुख का वर्धक बने।

वृष्ट्यापूरजलौघमग्नपुलिने वृन्दावने यामुने
कृष्णः कालियमर्दनोऽप्यभयदो गोवर्धनं धारयन्।
देवेन्द्रस्य स सर्वमेव सहजं गर्वं च खर्वं हरन्।
आगोपालकबालवृद्धजनताजीवातवेऽजायत।।
तद्वत् कालियकर्मघोरनिपुणान् दुर्वारदुःखप्रदान्
नेतृंस्तान् जनता प्रशास्तु सहजस्फूर्त्या स्वशक्त्या दृढम्।
एकच्छत्रमिव प्रसारितमयं राष्ट्रस्य गोवर्धनो
सञ्जायेत समस्तदेशजनतासौख्यस्य संवर्धनः।।[16]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की जनता विषयक उपरोक्त तथ्य उनके प्रखर जनवादी होने का समर्थन करते हैं। जनता के मर्मांतक भावो की गहराई तक उतरना और तन्मय होकर, उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभवों को सार्वजनिक करना आचार्य त्रिपाठी के परिपक्व जनवादी कवित्व का विलक्षण निदर्शन है। उनके अनुसार लोकतंत्र में समाजवाद के नाम पर पूँजीवाद का बोलबाला जनता के साथ हो रहा छलावा है जो लोकतंत्र के लिए घातक है।

कभी–कभी तो हमें आचार्य त्रिपाठी के संस्कृत काव्य "जनता लहरी" और हिन्दी के प्रसिद्ध जनवादी कवि अदम गोण्डवी के मुक्तक काव्य "समय से मुठभेड़" के कुछ पद्यों में एक भाव रूपता प्रतीत होती दिखती है।

गच्छति पुरतो देशः पुनरिह पश्चात् प्रधृष्यते जनता।
कोऽयं समाजवादः प्रगतिर्वा कीदृशी सेयम्।।

एकत्राभ्रविचुम्बिभिः प्रसृमरैः सौधैः समुत्सार्यते
दुर्नीतिप्रचितैः परत्र विधमद्दवाग्निभिर्दह्यते।
अन्यत्र प्रतिगामिभूमिपतिभिः कुद्दालकैश्छिद्यते
दूर्वेव प्रतिरोहतीह जनता विन्ध्याद्रिभूमौ दृढा।।[17]

कवि आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के इस भावना की झलक अदम गोण्डवी की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है

तुम्हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है
मगर आंकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है ।
उधर जम्हूरियत की ढोल पीटे जा रहे हैं वो
इधर परदे के पीछे बरबरीयत है, नबाबी है।।
लगी है होड़ सी देखो अमीरी और गरीबी में
ये पूँजीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है।
तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारे जाम सोने के
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।।[18]

कवि राधावल्लभ त्रिपाठी और जनवादी कविताओं के हिन्दी विधा के प्रसिद्ध शब्दसाधक **अदम गोण्डवी** की यह भावसाम्यता तथा जनता लहरी में प्राप्य अनेकानेक जनभावानुप्राणित तथ्य त्रिपाठी जी के जनवादी कवित्व के प्रतिपादक आधार हैं।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी आधुनिक कवि परम्परा के सुधी और श्रेष्ठ कवि होने के साथ–साथ एक आदर्श प्राध्यापक, कुशल प्रशासक, एवं सच्चे अर्थों में मानवता की प्रतिमूर्ति है। मेरी अल्प बुद्धि से उनके सम्बंध में कुछ कहना लघ्वी काष्ठ नौका के द्वारा अथाह सागर को पार करने का साहस करना होगा। परन्तु आदरणीय आचार्य प्रवर राधावल्लभ त्रिपाठी जी के संदर्भ मैं सिर्फ इतना कहना चाहूँगा कि–

ज़िन्दगी अच्छी लगी तो आपकी अच्छी लगी
सत्य की अन्याय से रस्साकशी अच्छी लगी।
ज़िन्दगी करने का नुस्ख़ा आप से सीखे कोई
दर्द में भी आपकी ज़िन्दादिली अच्छी लगी।।

सन्दर्भ

1. अभिनव भारती भा 0–2 पृ. 213
2. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 1 ।1 ।1 ।
3. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 1 ।1 ।2 ।
4. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 1 ।1 ।3 ।
5. लहरीदशकम्, जनता लहरी, श्लोक सं. 7
6. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 2
7. रामचरितमानस,
8. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 27–28
9. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 40
10. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 41
11. लहरीदशकम्, जनता लहरी, श्लोक सं. 8 एवं 3,4,6
12. लहरीदशकम्, जनता लहरी, श्लोक सं. 45–46
13. लहरीदशकम्, जनता लहरी, श्लोक सं. 23
14. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 44
15. लहरीदशकम्, जनतालहरी, श्लोक सं. 47–48
16. लहरीदशकम्, जनतालहरी श्लोक सं. 25,26
17. समय से मुठभेड़

सहायक प्राध्यापक
संस्कृत–विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.)

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की भाव तरंगों का व्यक्तिकरण–'लहरीदशकम्'

डॉ. कौशल तिवारी

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में प्राचीन काव्यविधाओं के साथ–साथ नवीन काव्यविधाओं में भी रचनाएँ लिखी जा रही हैं। अर्वाचीन संस्कृत साहित्यकारों ने कुछ प्राचीन काव्यविधाओं को नवीन रूप में भी प्रस्तुत किया हैं। ऐसी ही एक काव्यविधा है–लहरीकाव्यविधा। प्राचीन संस्कृत साहित्य में ऐसे खण्डकाव्य उपलब्ध होते हैं जिनमें 'लहरी' शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसे शंकारचार्य कृत सौन्दर्यलहरी और आनन्दलहरी, पण्डितराज जगन्नाथ कृत अमृतलहरी, करुणालहरी, सुधालहरी, गंगालहरी आदि; ये लहरीकाव्य प्रायः देवभक्ति पर ही आधरित हैं, जैसे सौन्दर्यलहरी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी की, अमृतलहरी में यमुना की, करुणालहरी में विष्णु की तथा सुधालहरी में भगवान् भास्कर की स्तुति है। यही कारण रहा की संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने इन काव्यों की गणना स्तोत्र–साहित्य के अन्तर्गत ही की।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में लहरीकाव्यविधा ने अपना एक पृथक् स्थान बना लिया है। यहाँ ध्यातव्य है कि अर्वाचीन लहरीकाव्यों में मात्र देवभक्ति ही नहीं की गई है अपितु कवि अनेक विषयों को आधार बनाकर इन लहरीकाव्यों की रचना कर रहा है, जैसे अभिराज राजेन्द्र मिश्र रचित 'विस्मयलहरी' वेलणकर रचित 'विरहलहरी', भास्कर पिल्लै रचित 'प्रेमलहरी', श्रीभाष्यम् विजय सारथी रचित विषादलहरी, श्रीधर भास्कर वर्णेकर रचित 'मातृभूलहरी' आदि। युगानुरुप इस काव्यविधा का लक्षण देने का प्रयास भी आधुनिक संस्कृत–काव्यशास्त्रियों ने किया है। प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी ने लहरीकाव्यविधा का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है–

देवे देशे निसर्गे वा प्रिये वस्तुनि भक्तिमान्।
कविर्यत्कुरुते काव्यं लहरीत्यभिधीयते।।

स्वतोऽपि पूर्णपद्यानि चैकस्मिन् विशयेऽन्वितिम्।
दधते तानि काव्येऽस्मिन् कल्लोला इव वारिधौ।।[1]

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने खण्डकाव्य का ही एक भेद लहरीकाव्य को मानते हुए कहा है कि जैसे सागर में लहरियाँ एक दूसरे के साथ जुडी रहती हैं तथा नाना प्रकार की भंगियों को उत्पन्न करती हुई परस्पर अभिन्न रहती हैं, उसी प्रकार भक्ति एवं शृंगार के सन्दर्भ अथवा अन्यान्य प्रवृत्तियाँ जब परस्पर भिन्न होती हुई भी मूलभाव (central theme) को समपुश्ट करती हैं तो उसे लहरीकाव्य कहते हैं–

लहरीकाव्यमप्येतत् खण्डकाव्यं समुच्यते।
प्रतिपाद्यं यदा काव्ये लहरीसन्निभं भवेत्।।
परस्परं समासक्ता लहर्यो जलधौ यथा।
भंगिव्रगजं जनयन्त्यो यान्त्यद्वैतस्वरूपताम्।।
भक्तिशृंगारसन्दर्भाः काव्येऽन्येऽपि तथा यदा।
भिन्ना : सन्तोऽपि पुष्णन्ति मूलभावं पुनः पुनः।।
लहरीसन्निभा भाषाविच्छितिं जनयन्ति च।
नयनाऽसेचनं भूरि वितन्वन्ति निरन्तरम्।।[2]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी इस सन्दर्भ में कहते हैं कि चेतनारूप समुद्र में भावरूप तरंगे उठती हैं और परस्पर टकराती हैं, उनका व्यक्तीकरण ही लहरीकाव्य है–

पारावारे चेतसि उद्गच्छन्ति च मुहुः संघट्टन्ति ।
भावतरंगास्तेशां व्यक्तीकरणं भवेल्लहरी।।[3]

लहरीकाव्य के उपर्युक्त नवीन लक्षणों से स्पष्ट ही है कि लहरीकाव्यों का विषय केवल देव–स्तुति ही न होकर कोई भी भाव हो सकता है., किन्तु यह भाव सम्पुष्ट होकर काव्य में उभरना चाहिए।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत 'लहरीदशकम्' आधुनिक लहरीकाव्य–परम्परा में अन्यतम है। इसमें दस लहरीकाव्यों का संकलन किया गया है। कवि ने विषय–वस्तु के आधार पर ही इन लहरियों का नामकरण किया है, यथा–वसन्तलहरी, निदाघलहरी, रोटिकालहरी इत्यादि। कवि ने अपने चेतना समुद्र में उठ रहीं भावतरंगों के व्यक्तिकरण के लिए माध्यम चुनना था और लहरीकाव्य विधा से उत्तम माध्यम कोई और हो नहीं हो सकता था।

यहाँ वसन्त ऋतु का चित्रण परम्परागत संस्कृत कविता से भिन्न है। निरन्तर विनाश की और अग्रसर पर्यावरण एवं सतत् वृद्धि को प्राप्त प्रदूषण के मध्य वसन्त के अवतरण–काल में व्यथित कवि के मन में उठने वाले भाव सहसा यहाँ कविता का रूप लिए हुए दृष्टिगोचर होते हैं, यथा–

सायं त्ववाप्य समयं भ्रमणाय यातो
गच्छामि निर्जनपथे नतमस्तकोऽहम्।
द्वित्रान् स्थितान् निभृतमत्र विलोकयामि
वृक्षान् विशण्णह्रदयानिव सज्जनांस्तान्।।[4]

सायं के समय
निकलता हूँ
निर्जन पथ पर
सिर झुकाए
घूमने के लिए,
पाता हूँ वहाँ
दो–तीन वृक्षों को
खडे हों जैसे
खिन्न–मन सज्जन।।

कवि का भ्रमण के समय सिर झुकाए निकलना, वहाँ मात्र दो–तीन वृक्षों का विद्यमान होना तथा उनकी उपमा खिन्न–मन सज्जनों से देना स्वयमेव प्रदूषण की सारी कथा प्रकट कर देता है। यहाँ समसामयिक समस्याएँ भी वसन्त–वर्णन के ब्याज से प्रस्तुत की गई हैं। ये कविताएँ मात्र वसन्त ऋतु की मादकता का वर्णन करने के लिए नहीं लिखी गई हैं अपितु इनके माध्यम से कवि अपने पूरे युग को जी लेता है, यही सच्चे अर्थों में आधुनिकता है।

कवि ने एक स्थान पर मेघ की तुलना मंचस्थ नेता से की है जो गरजता तो है किन्तु काम नहीं करता। ऐसी स्थिति में यदि कवि मेघ को दूत बनाए तो कैसे बनाए–

कुतो यक्षः कुतो मेघः सन्देशप्रापणः कुतः ।
विच्छिन्नाभ्रविलयं तल्लयं याति मनोजगत् ।।[5]

यदि पर्यावरण की स्थिति ऐसी ही विकृत बनी रही तो सम्भवतः आगामी समय में गरजने के लिए भी मेघ उपलब्ध नहीं होगा।

एक पद्य में कवि ने अभिनव कल्पना की है–

रोमांचकण्टकैर्जुष्टा तुष्टा वन्या वसुन्धरा ।
लब्ध्वा पर्जन्यसंस्पर्शं समुच्छ्वसिति कोरकैः।।[6]

रोमांच के कॉटों से भरी
वन्य–वसुन्धरा
पाकर मेघ का स्पर्ष
श्वास ले रही है
पुष्पों की कलियों से।।

प्रावृङ्लहरी में प्रयुक्त श्यामनववधू, पूर्वरंग, परिघट्टना, प्रावेशिकी–ध्रुवा, छलितनाट्य आदि शब्दों के प्रयोग से कवि का नाट्यशास्त्रीय ज्ञान भी प्रकट होता है।

धरित्री दर्शन लहरी में किसी पथिक द्वारा की गई भारत से जर्मनी तक की यात्रा का वर्णन किया गया है। सम्भवतः कवि ने अपनी हवाई–यात्रा के ही अनुभव यहाँ काव्य के रूप में प्रस्तुत किये हैं। कवि को कहीं आकाश के मध्य लटका विमान त्रिशंकु के समान लगता है तो कहीं पक्षीराज गरुड के समान। विमान से दिखती पृथिवी का भी हृदयावर्जक वर्णन उपलब्ध होता है। विषयानुरूप कई शब्दों का संस्कृतीकरण भी किया गया है, जैसे–पारपत्र(पासपोर्ट), प्रवेशाधिकार(वीसा), व्योमबाला (एअर होस्टेस), यानाध्यक्ष(केप्टन)। यहाँ मेघदूत की कुछ पंक्तियों का प्रयोग सुन्दर बन पडता है,यथा यात्री को विमान देखकर कवि को वैसा ही अनुभव होता है, जैसा अनुभव मेघ को देखकर यक्ष को हुआ था–

कृत्वा पूर्णं विहितविधिना तं च यात्रोपचारं
शालामन्तः प्रचुरविषदां स प्रविष्टो विशालाम्।
आसीनोऽत्र स्थितमधितलं सम्मुखीनं विमानं
वप्रक्रीडापरिगणितगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।[7]

यहाँ ध्यातव्य है कि विमानयात्रा के अनुभवों को कविता के रूप में निबद्ध करने को 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र ने एक नवीन काव्य विधा मानकर उसका नामकरण 'विमानकाव्य–

विधा' किया है, यथा प्रभाकर नारायण कवठेकर की कविता 'भू–लोकविलोकनम्', हरिदत्त शर्मा की कविता 'चल चल विमानराज रे', 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र रचित 'विमानयात्राशतकम्' नामक खण्डकाव्य आदि।

भारतीय जनता को केन्द्र में रख कर कवि ने 50 पद्यों के माध्यम से जनतालहरी में भारतीय गणतन्त्र की वर्तमान स्थिति की भी खबर ली है। भारतीय जनता की स्तुति कवि क्यों कर रहा है, जबकि स्तुति–प्रशस्ति के विषय देवता, महापुरुष आदि अन्य प्राचीन विषय उपलब्ध हैं ही, इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए कवि कहते हैं कि हमारे लिए तो भारतीय जनता ही सर्वोपरी है अतः हम उसी की स्तुति कर रहे हैं–

केचिद् भक्तिपरायणा भवभयादर्चन्ति देवांस्तवैः
केचिच्चाटुरताः खलांश्चलधियो नेतृन् प्रभूंछ्रीमतः।
अस्माकं तु निसर्गतः स्थितिलयाविर्भावहेतुः परं
योगक्षेमविधायिनीह जनता राष्ट्रस्य सा स्तूयते।।[8]

कवि का यह वक्तव्य उचित ही है क्योंकि आधुनिक संस्कृत कवि कोई ऐसा दरबारी कवि नहीं है जो किसी प्रलोभन या विवशता के चलते किसी नेता या तथाकथित महापुरुष की स्तुति करे, अपितु वह तो अपने देश की मिट्टी से जुड़े व्यक्ति को ही अपने काव्य का नायक बनाना चाहता है।

कवि ने यहाँ उच्चपदासीन नेताओं, अधिकारियों में फैले भ्रष्टाचार पर तीखे व्यंग्य किये हैं। दिल्ली में जाकर बैठ गये किन्तु अपने क्षेत्र की सुध न लेने वाले नेता की उपमा कवि ने दक्षिण दिशा में गये अगस्त्य मुनि के प्राचीन आख्यान से दी है और बेचारी जनता विन्ध्य के समान प्रतीक्षारत है। किन्तु कवि की आशावाहिनी दृष्टि लोकतन्त्र में अब भी बनी हुई है–

होतारो वयमृत्विगस्तु जनताशक्तेर्महासंगमः
सुप्रातः सुदिवाः सुसन्धिसमयः सुश्वा जनो जायताम्।
यज्ञेऽस्मिन् प्रविभज्यतां प्रतिजनं निर्वाचने शासनं
ह्यालोकः प्रसरीसरीतु सुभगश्चालोकतन्त्राध्वनः।।[9]

उपनिषद् साहित्य में एक स्थान पर अन्नं को ही ब्रह्म कहा गया है–"अन्नं वै ब्रह्म"। यह एक आधिभौतिक सत्य का कथन है क्योंकि अन्न के बिना जीवन निर्वाह सम्भव नहीं है। इस के आलोक में ही कवि ने रोटिकालहरी लिखी है, जिसमें रोटी अन्न किंवा ब्रह्म की प्रतीक है–

यद् रसो वै च सेति श्रुतौ प्रोच्यते
ब्रह्मरूपं तथाऽन्नं च जेगीयते।
वर्तते सर्वमेतत् तु सर्वंकशं
गृहीतं विस्मृतं रोटिकागौरवम्।।[10]

प्रतिदिन के व्यवहार में हम भी देखते हैं कि जो भी व्यापार किया जा रहा है उस के मूल में रोटी ही है। अतः यदि रोटी को काव्य का विषय बनाया जाता है तो इसमें कोई दोष नहीं है। रोटी यहाँ नायिका का रूप ले लेती है, ऐसी नायिका जिसका आस्वाद कितनी भी बार क्यों न लिया जाए, फिर भी वह नये स्वाद वाली ही बनी रहती है(तुलनीय वैदिक पुराणी युवती उषा से)। शकुन्तला दुष्यन्त के लिए अखण्ड पुण्यों का फल हो सकती है किन्तु साधारण मनुष्यों के लिए तो रोटी ही अखण्ड पुण्यों का एकमात्र प्रकृष्ट फल है–

रोटिका राजते पूर्णमुक्ताकृतिः
स्वादिता चापि नित्यं नवास्वादिता।
मानवानामखण्डस्य पुण्यस्य सा
केवलं चैकमस्ति प्रकृष्टं फलम्।।[11]

कवि ने 55 पद्यों के माध्यम से नर्मदालहरी में नर्मदा नदी की देवी के रूप में स्तुति की है। एक स्थल पर ऋग्वेद के नासदीय सूक्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृग्गोचर होता है, जहां कवि कहता है कि हे नर्मदे! जब सृष्टि समुल्लसित नहीं हुई थी तब भी तुम्हारे जल का पारावार श्वास ले रहा था–

नो सद् बभूव न किल चापि बभूव वाऽसत्
सृष्टिर्यदा न च समुल्लसिता पुराऽऽसीत्।
निर्वात एव च समुच्छ्वसिति स्म चैकः
शून्यस्य गह्वरगतस्तव वारिराशिः।।[12]

कवि ने यहां नर्मदा नदी से सम्बन्धित आख्यानों, ऐतिहासिक वृत्तान्तों को भी उद्घाटित किया है, जैसे– बलि–आख्यान, सहस्रार्जुन–आख्यान,

रावण का वृत्तान्त, पाण्डवों के वनवास का वृत्तान्त, मण्डन मिश्र का वृत्तान्त आदि। कवि की नर्मदा के प्रति जो भक्ति है वह सर्वत्र अपना प्रवाह बनाए रखती है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि कवि ने नर्मदा नदी की संस्कृति को जीया है।

मानव कहीं भी रहे किन्तु उसमें उसके देश की मिट्टी की सौंधी महक सदैव महकती रहती है। मृत्तिका लहरी में वर्णित मिट्टी अपने देश, गाँव की भूमि, जडों की प्रतीक है। प्रत्येक मनुष्य मिट्टी की गोद में पला–बढ़ा है। मिट्टी के घर बनाना, खेल–खेल में मिट्टी खा लेना आदि बाल्यकाल की घटनाएँ किसके मन को आह्लादित नहीं कर देती हैं? यह लहरी पाठक को बचपन में ले जाती है, कुछ खट्टी–मीठी यादों को ताजा कर देती है–

प्रधावितं च शैशवेऽत्रमृत्तिकाचितेऽगणे।
विनिर्मितानि गेहकानि तानि सैकतानि वा।।
अलक्ष्यदन्तकुड्मलाः कुटुम्बिभिर्गवेशिताः।
अभक्षयाम मृत्तिकां तदा निलीय कोणके।।[13]

कवि ने यहाँ मिट्टी को अक्षुण्ण बताया है क्योंकि सभी वस्तुओं में निहित यह मिट्टी वस्तुओं के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती, वस्तुओं के भिन्न होने पर भी अभिन्न रहती है। यहाँ मिट्टी शाश्वत सत्य के रूप में उभर कर सामने आती है। कवि मिट्टी को ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित करते प्रतीत होते हैं।

अद्यापिलहरी में जीवन के सातत्य व गत्यात्मकता का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। यहाँ 50 पद्य हैं, जिनमें प्रायः 'अद्यापि' पद की आवृत्ति होती है। कवि के अनुसार पद 'अद्यापि' की आवृत्ति इस बात की सूचक है कि सम्पूर्ण जटिलताओं के बीच अभी भी आशा व विश्वास बचे हुए हैं। यह लहरी–काव्य तमाम विसंगतियों, विडम्बनाओं, निराशाओं के मध्य जीवन में आशा व आस्था की खोज करती है। यह मानव जीवन की जिजीविषा की प्रतीक है। कवि उस संजीवनस्पर्श को अपने शब्दों से खोज रहा है, जो जीवन के जटिल, कण्टकित मार्गों पर कहीं खो गया है–

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं य आसीत्
संजीवनश्च मनसश्च रसायनं यत्।

लुप्तोऽधुना जटिलजीवनजीर्णमार्गे–

ऽद्यापीह गीर्भिरिह तं च गवेशयामि।।[14]

यहाँ कवि कहीं अपने आस–पास के वातावरण की सुध लेते दिखलायी देते हैं तो कहीं पर्यावरण के विनाश के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं। कहीं मन्दिर–मस्जिद विवाद को व्यर्थ बताते हैं तो कहीं शाकुन्तल–कथा को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हैं। इन सब के बीच भी कवि की जिजीविषा समाप्त नहीं हुई है–

एते भवन्ति पलिता अधिमस्तकं मे

केशास्तथापि विरता न जिजीविषेयम्।

अद्यापि दक्षिणकरस्य दृढो ग्रहो मे

यावल्लिखामि कलमेन च कम्पहीनः।।[15]

संग्रह के अन्तिम लहरी–काव्य प्रस्थानलहरी के 52 पद्यों में कवि ने प्रस्थान वेला का चित्रण किया है। जहाँ एक ओर कवि अज्ञात को सम्बोधित करते हुए प्रस्थान की वेला में धीरज धरने को कहते है, वहीं दूसरी ओर कवि स्वयं चिन्ताकुल दिखलायी देते हैं–

अग्रे पदं यावदितः प्रकुर्या

कश्चित् पदं कर्षति मे तु पृष्ठात्।

सिन्धोः प्रवाहो गिरिणेव रुद्धो

नाग्रे प्रयातोऽस्मि न संस्थितोऽहम्।।[16]

कहीं यह प्रस्थान की वेला महाप्रस्थान के भाव को भी प्रकट करती दृष्टिगोचर होती है–

एषा जरोपैति यमस्य दूती

केशं गृहीत्वा पलितं स्वहस्ते।

शब्दापयन्ती किल कर्णमूले

प्रस्थानवेला नु समागतेति।।[17]

इस लहरीकाव्यसंग्रह का प्रकाशन प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है।

सन्दर्भ

1. दूर्वा पत्रिका, अंक–अपैल–जून 2005,पृष्ठ–94
2. अभिराजयशोभूषणम्,पृष्ठ–224
3. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र,पृष्ठ–338 (जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर)
4. लहरीदशकम्,पृष्ठ–4
5. वही,पृष्ठ–31
6. वही,पृष्ठ–42
7. वही,पृष्ठ–44
8. वही,पृष्ठ–66
9. वही,पृष्ठ–85
10. वही,पृष्ठ–90
11. वही,पृष्ठ–87
12. वही,पृष्ठ–105
13. वही,पृष्ठ–119
14. वही,पृष्ठ–127
15. वही,पृष्ठ–137
16. वही,पृष्ठ–145
17. वही,पृष्ठ–152

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र को अवदान

डॉ. बाबूलाल मीना

संस्कृत साहित्य जगत् के आधुनिक और लोकजीवन के कवि आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी का जन्म 15 फरवरी 1949 ई. को मध्यप्रदेश के राजगढ़ जिले में हुआ। त्रिपाठी जी के पिताजी डॉ. गोकुलप्रसाद त्रिपाठी एक सुयोग्य अध्यापक तथा प्रतिष्ठित विद्वान् थे। आपको शिक्षा का क्षेत्र औरअध यापन का कार्य अपने पिता जी से विरासत के रूप में मिला है। आपने शिक्षा और साहित्य जगत् में अपनी एक अनूठी और अक्षुण्य पहचान बनाई है। विशेषकर संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में आपका योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा। संस्कृत ज्ञानराशि को प्रसारित करने के लिए आपने हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं पर भी अपनी पकड़ को मजबूत बनाया है, जिससे आज के आधुनिक युग में संस्कृत का महत्त्व दूसरों को आसानी से समझाया जा सके। आप श्रेष्ठ कर्त्तव्यपरायण शिक्षक, शिष्यवत्सल,गुणग्राहक, मितभाषी, प्रखर प्रतिभा के ध नी, लोकजीवन के कवि, संस्कृत के प्रगतिशील चिन्तक, समीक्षक और समालोचक हैं।

कविवर आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी का रचनासंसार बड़ा ही उत्कृष्ट और विस्तृत है। इनकी अब तक शताधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आचार्य त्रिपाठी जी को उनकी उत्कृष्ट रचनाधर्मिता के लिए राष्ट्रिय और अन्तर्राष्ट्रिय स्तर के अट्ारह से भी अधिक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। वस्तुतः आचार्य त्रिपाठी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इनमें प्रतिभा की अनूठी विशेषताएँ हैं। ये एक श्रेष्ठ कवि, श्रेष्ठ वक्ता, श्रेष्ठ अध यापक, श्रेष्ठ लेखक होते हुए भी! प्रशासनिक क्षमताओं से परिपूर्ण हैं। जिसकी वजह से राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के कुलपति के पद पर आसीन हुए। इनकी प्रतिभा का विस्तार प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देता है। इन्हें कई

भाषाओं का ज्ञान है। इनका साहित्यिक क्षेत्र, हर दृष्टि से, एक सफल साहित्यिक, विद्वान्, समीक्षक एवं सहज कवि तथा यथार्थवादी प्रौढ़चेतना संपन्न–सहृदय सामाजिक के रूप में पूर्ण विकसित है। संस्कृत साहित्य जगत् में आचार्य त्रिपाठी जी की आभा सर्वत्र परिलक्षित होती है। ये एक ऐसे जागरूक कवि हैं, जिनको देश और विदेशों में होने वाली सभी घटनाओं की जानकारी है। विशेष रूप से आप संस्कृत साहित्य के विषय में अपने देश में और विदेशों में जो प्रतिक्रियाएँ परिलक्षित हो रही हैं, उससे पूर्ण रूप से परिचित हैं। आचार्य त्रिपाठी जी ने वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि इत्यादि संस्कृत के प्रमुख कवियों की प्राचीन परम्परा को आत्मसात् किया है। ये एक ऐसे कवि हैं जो आधुनिक समय की समस्याओं का समाधान संस्कृत साहित्य में खोजते हैं।

साहित्य जगत् में जब आचार्य त्रिपाठी जैसे विराट् व्यक्तित्त्व का प्राकट्य होता है, तब उसके लिए प्रचलित परिभाषाएँ भी छोटी दृष्टिगोचर होने लगती हैं। ऐसे व्यक्तित्त्व से परिभाषाएँ बनायी जाती हैं या प्रचलित परिभाषाओं को और अधिक उदार बनाना पड़ता है। कविवर डॉ. त्रिपाठी जी के लिए प्रगतिशीलता का अर्थ कालिदास के शब्दों में ही मिल सकता है –

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।'[1]

आचार्य त्रिपाठी जी एक प्रगतिशील चिन्तक तो हैं ही साथ ही, वे देश में व्याप्त कुछ विषमताओं को लेकर चिन्तित भी हैं। ये हमेशा अपने कार्य में निमग्न रहते हैं। अपना विषय, अपना विभाग, अपना लेखनक्षेत्र बस यही चिन्तन सदैव चलता रहता है। आचार्य त्रिपाठी जी संस्कृत की प्रगति और विकास के लिये सतत् रूप से प्रयत्नशील हैं। संस्कृत के प्रति इनकी कटिबद्धता और समर्पण भाव की वजह से ही, ईश्वर ने शायद आपको कुलपति–पद को प्राप्त कराया इनको युगबोध का विस्तृत ज्ञान है, जो इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में इनके द्वारा किये गये कार्य अत्यन्त विस्तृत हैं। आचार्य त्रिपाठी जी ने अब तक लगभग, स्वयं की आयु से भी दुगुनी कृतियों की रचना कर डाली हैं। जिससे इनके रचना संसार की महत्ता स्वयं ही सिद्ध हो जाती है। इनकी रचनाएँ संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं। जिससे इनका बहुभाषी होना सिद्ध होता है।

आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा रचित निम्नलिखित पुस्तकों में उनके नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के सूत्र–सिद्धान्त प्राप्त होते हैं :–काव्यशास्त्र और काव्य, नाट्य शास्त्र के बीजशब्द, भाग–1, अप्राप्त नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ, महाकवि भवभूति और उनका नाट्यलोक,कालिदास परिशीलन, नाट्यशास्त्र–सन्दर्भ सूची, कालिदास की समीक्षा परम्परा, भारतीय नाट्यस्वरूप और परम्परा, नाट्यशास्त्र के बीज शब्द, भाग–2, नाट्यशास्त्र और विश्व रंगमंच, सूत्रध ारवृत्त, संस्कृत रूपकों में प्रहसन, दूसरी परम्परा के नाटककार भवभूति,नाट्यशास्त्र विश्वकोश, संस्कृत साहित्य परिचय, संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, संस्कृत वाङ्.मय का वृहत् इतिहास, Lectucres on Natyasastra -Turning points in Indian Sanskrit Tradition, 2000.Vedic foundations of Indian Sanskrit Tradition, 2001.A new bibliography of Sanskrit Drama Ed. 1998.A bibliography of Alankarasastra, 2002. आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची, साहित्य शास्त्र परिचय, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा,मध्यप्रदेश का रंगमंच, शास्त्रार्थ विचारपद्धतिः, नाट्यमण्डपम्, भारतीय रङ्गसमुन्मेषः, सन्धानम्, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् और संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम् इत्यादि।

आचार्य द्वारा विरचित कुछ प्रमुख नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है :

1. नाट्यशास्त्र विश्वकोश :

आचार्य त्रिपाठी जी द्वारा विरचित 'नाट्यशास्त्र–विश्वकोश' संस्कृत साहित्य जगत् में विशेषकर नाट्यशास्त्र की परम्परा में भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, नाटक व रंगमंच से सम्बन्धित लगभग 2000 शब्दों की अवधारणात्मक विकास व तुलनात्मक विमर्श के साथ जो व्याख्या इस कोश में की गई है। वह इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का निदर्शन ही है और 'संस्कृत नाट्यशास्त्र' को एक महत्त्वपूर्ण देन है। इस कृति पर आपको के.के. विड़ला ट्रस्ट के 'शंकर पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है।

इस कोश–ग्रन्थ में आचार्य त्रिपाठी जी का विषय क्षेत्र नाट्यशास्त्र है और यह उनका रुचिकर विषय है। नाट्यशास्त्र विषयक गूढ़ अध्ययन एवं अनुसन्धान् के परिणामस्वरूप ही उन्होंने नाट्यशास्त्र की पारिभाषित शब्दावली के आधार पर नाट्यशास्त्र–विश्वकोश की रचना की है। उनका ये कोश चार भागों में है। नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली के विशद् विवेचन के साथ–साथ इस पुस्तक में वेद, उपनिषद्, संगीत, नृत्य आदि प्राचीन ग्रन्थों

व नाट्यशास्त्रीय परम्परा के प्रामाणिक संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। साथ ही नाट्यशास्त्र की भारतीय तथा पाश्चात्य परम्परा का ऐतिहासिक परिचय, अन्तः–सम्बन्ध एवं तुलनात्मक विश्लेषण भी इस ग्रन्थ में किया गया है।

नाट्यशास्त्र विश्वकोश जैसे विशाल शब्दकोश का निर्माण करना कठिन ही नहीं अपितु दुर्लभ कार्य भी है, किंतु आचार्य त्रिपाठी जी ने अकेले ही इस कार्य को अपने कठिन परिश्रम से सिद्ध कर दिया। इस विश्वकोश का प्रकाशन, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली से 1999 में हुआ है।

2. संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा :

संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का क्रमबद्ध विश्लेषण करने के लिए आचार्य त्रिपाठी जी ने ये पुस्तक लिखी है। काव्य रचना के स्तर, काव्य की उत्पत्ति, काव्य प्रस्थान और काव्य निकष, साहित्य की स्वायत्तता आदि अध्यायों में काव्यशास्त्र के बारीकी सूत्रों को सुशृंखलित रूप से स्पष्ट करने में यह पुस्तक पूर्णरूपेण सफल है। आचार्य त्रिपाठी जी ने काव्यशास्त्र के कुछ नवीन बिन्दुओं पर इस पुस्तक में सप्रमाण प्रकाश डाला है, जो उल्लेखनीय है :–इस पुस्तक के 'भारतीय काव्यचिन्तन के मूल आधार' नामक अध्याय में आचार्य त्रिपाठी जी ने स्पष्ट रूप से कहा है, कि–'भारत में नाटक और काव्य को पृथक् करके कभी नहीं देखा गया तथा आचार्य भरत के समय तक भी दृश्य तथा श्रव्य के पार्थक्य की धारणा भी इतने सुस्पष्ट रूप में नहीं आई थी।' अपने मत के पक्ष में वे आचार्य भरत को प्रमाण रूप में रखते हुए कहते हैं, कि–"नाट्यशास्त्र को लिखते समय भरत ने काव्य तथा नाट्य को पर्याय ही माना है, क्योंकि नाटक को पाठ्य अंश के लिए काव्य शब्द का प्रयोग भरत ने अनेक स्थानों पर किया है। 2

आचार्य श्री ने इसी पुस्तक में संस्कृत काव्यशास्त्र के पुनर्व्यवस्थापन की ओर ध्यान आकर्षित तो कराया ही है, साथ ही "आधुनिक विद्वानों ने जो काव्यशास्त्र को नाट्यशास्त्र का परिशिष्ट या अनुवर्ती माना है, ऐसी, भ्रान्तधारणाओं के निराकरण का प्रयास भी किया है।'3 आचार्य ने, भारतीय काव्यशास्त्र की जो सम्प्रदाय परम्परा है, जिसमें सामान्यतः छः सम्प्रदायों को माना जाता है। इस सम्प्रदायगत परम्परा को आचार्य उचित नहीं मानते हैं, उन्होंने सम्प्रदायगत विभाजन से भिन्न काव्यशास्त्र की विकास परम्परा पर प्रकाश डाला है।

3. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् :

आचार्य त्रिपाठी जी का यह एक मौलिक और नवीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ तीन अधिकरणों में विभक्त है, जिसमें तेरह अध्याय हैं। इसमें कुल 95 सूत्र हैं। यह ग्रन्थ सूत्रकारिकावृत्ति में संवलित है। आचार्य ने इस ग्रन्थ में काव्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा से लेकर अधुनातन परम्परा को आत्मसात् करते हुए काव्यशास्त्र के नये मानदण्डों की स्थापना की है। यह ग्रन्थ 2005 में सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के माध्यम से काव्यशास्त्र की प्राचीन और नवीनतम् रचनाओं की समीक्षा की जा सकती है। सूत्र–शैली में शास्त्रीय ग्रन्थ लेखन व पुनः अविष्कार भी इस ग्रन्थ में हुआ है। आचार्य ने, प्रशस्त काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा से खण्डन किया है। भारतीय, आधुनिक और पाश्चात्य काव्य और काव्यशास्त्र का प्रभाव यथास्थल अवलोकनीय है।

यह ग्रन्थ तीन अधिकरणों में विभाजित है। काव्यस्वरूपनिरूपण नामक प्रथमाधिकरण में 6 अध्याय हैं। काव्यस्वरूप नामक अधिकरण को तृतीय अध्याय माना गया है। इसके काव्यलक्षणनिरूपणम् शीर्षक प्रथम अध्याय में काव्य के लक्षण पर विचार किया गया है। काव्य से आशय छन्दोबद्ध या पद्यात्मक रचना से ही नहीं है। गद्य की समस्त विधाएँ, जिन्हें साहित्य कहा जाता है इसमें समाहित हैं। काव्य का लक्षण यहाँ यह किया गया है– 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्'। केवल स्थावरजंगमात्मक संसार ही नहीं, अपितु कवि चेतना के द्वारा विभाव्यमान समस्त भुवन ही लोक है। अभिनवगुप्त आदि की अपेक्षा लोक का व्यापक अर्थ में विवेचन करते हुए इसमें आचार्य त्रिपाठी ने कविकल्पना के संसार और मनोलोक का भी समावेश माना है। वस्तुतः दिक्काल में प्रसृत समस्त सृष्टि लोक है, जो कुछ प्रतीतिगोचर होता है वह लोक है ब्रह्मा आदि को उपचार से ही अलौकिक या लोकातिक्रान्तगोचर कहा जाता है। वास्तव में अलौकिक या लोकातिक्रान्त कुछ नहीं होता। इस दृष्टि से लोक के तीन रूप हैं–आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। ये तीनों रूप एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इन तीनों का समग्र समुल्लास जीवन है। जीवन की भी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। जीवन के पुरूषार्थ (धर्मार्थकाम) से इनका सम्बन्ध हैं। जीवन एक व्यक्ति का ही नहीं, समाज या राष्ट्र का तथा ब्रह्माण्ड का भी होता है। साहित्य या कविता में त्रिविध जीवन प्रतिफलित होता है। इसलिएआधि

भौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक जीवन के इन तीन रूपों में से केवल एक या दो में ही सर्वथा पर्यवसित काव्यरचना समग्र नहीं कहीं जा सकती। यह सम्भव है कि किसी रचना में आधिभौतिक संसार का निरूपण प्राधान्येन किया गया हो, किसी में आधिदैविक का या किसी में आध्यात्मिक का। परन्तु एक की प्रधानता से अन्य रूपों का निराकरण नहीं अपितु ग्रहण ही होता है। इस प्रकार काव्य में जीवन की समग्रता अनुकीर्तन की चार अवस्थाओं के अनुसार कहीं प्रतिफलित होती है, कहीं उन्मीलित, कहीं विकसित तो कहीं समुल्लसित। वैदिक परम्परा में वाणी के चार रूप निरूपित किये गये हैं–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। काव्यरचना प्रक्रिया में नामान्तर से इनका विनियोग यहां स्वीकार किया गया है।

अनुन्मीलन, अनुदर्शन, अनुभव तथा अनुव्याहरण ये अनुकीर्तन की चार अवस्थाएँ हैं। कविमानस में जीवन का प्रथम उन्मेष अनुंन्मीलन हैं जीवन के इस उन्मेष का कवि के द्वारा अपनी रचना–प्रक्रिया में दर्शन ही अनुदर्शन है। अनुदृष्ट स्थितियों के निरूपण के लिए शब्द और अर्थ के द्वारा वस्तु तथा रूप का आविष्कार अनुभव है। अनुभूत दशाओं का शब्दों से स्फुट कथन अनुव्याहरण है।

अनुन्मीलन, अनुदर्शन, अनुभव तथा अनुव्याहरण के विनियोग से आधि भौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विश्व काव्य में परिपूर्ण रूप से व्यक्त होते हैं। यही काव्य की परिपूर्णता है और यही अलंकार है। अत एव अलंकार ही काव्य है। ऐसा आचार्य त्रिपाठी जी का मत है।

इस अध्याय में वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण से लोकानुकीर्तन ही काव्य है इस लक्षण की युक्तियुक्ता प्रमाणित की गई है तथा अन्य आचार्यों के लक्षणों से भी उसकी अन्विति पर विचार किया गया है।

काव्यप्रयोजन नामक शीर्षक में काव्य के प्रयोजन पर विचार किया गया है। काव्य का प्रयोजन आचार्य त्रिपाठी जी ने मुक्ति माना है तथा आवरणभंग को मुक्ति कहा है। संकुचितप्रमातृत्व ही आवरण है। अन्य प्रयोजन जो इतर आचार्यों ने बतायें हैं, वे अकिंचित्कर हैं।

तृतीय अध्याय में ही काव्यकारण का निरूपण है। ग्रन्थकार ने जागृता प्रतिभा को काव्य का कारण माना है। प्रतिभा दो प्रकार की होती है–संस्काररूपा तथा जागृता। संस्काररूपा प्रतिभा तो सभी में होती है। पर सब की प्रतिभा स्पन्दमयी नहीं होती। स्पन्द कविप्रतिभा का स्वभाव है।

तृतीय अध्याय के चतुर्थ शीर्षक काव्यभेदनिरूपण है। काव्य के उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अवर ये चार भेद यहाँ बताये गये हैं। जीवन के सर्वांगीण रूप का निरूपण करने वाला महावाक्यात्मक काव्य उत्तमोत्तम है। उसके एकदेश का निर्देश करने वाला उत्तम, वस्तुविशेष या मनःस्थितिविशेष को प्रकट करने वाला मध्यम तथा पदार्थमात्रपर्यवसित काव्य अवर है। नानादिक्कालावच्छिन्न वाक्यों का पुरूषार्थप्रवर्तक समूह महावाक्य है। काव्य में कोई अलंकार अकेला नहीं आता। अलंकारव्यतिकर, अलंकारसम्भेद या अलंकारसम्प्लव की अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए यहाँ काव्य की समग्रता में अलंकार का प्रकार्य प्रतिपादित किया गया है।

आचार्य त्रिपाठी जी के मत में काव्य के इन चार प्रकारों के अनुसार कवि भी चार प्रकार के हो सकते है। उत्तमोत्तम काव्य का रचयिता कवि सिद्ध होता है, उत्तम काव्य का प्रणेता साधक, मध्यम की रचना करने वाला आभ्यासिक तथा अवर काव्य बनाने वाला कवि घटक हुआ करता है। इन कवियों का अपनी अपनी रचना प्रवृत्ति के अनुसार तत्तत् काव्य विधा में रचना की प्रवृत्ति होती है।

तत्वाभिनिवेशी, विषयनिष्ठ, विषयिनिष्ठ तथा सतृणाभ्यवहारी ये समीक्षक के चार भेद हैं। इनकी भी समीक्षाप्रवृत्ति तदनुसार उत्तमोत्तम काव्य या सिद्ध आदि कवियों के समालोचन में होती है। अन्य आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित भावक की कोटियों का इन्हीं में अन्तर्भाव या इनके द्वारा निराकरण हो जाता है।

प्रथमाधिकरण के शब्दव्यापारनिरूपण नामक पंचम अध्याय में त्रिविध वृत्तियों का निरूपण है। ग्रन्थकार ने शब्द का एक ही व्यापार माना है संकेत अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना आदि वृत्तियाँ इसी संकेत व्यापार के भेद हैं। ये वृत्तियाँ आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक जगत् को उन्मीलित करती हैं। वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य अर्थों का समवाय काव्य की श्रेष्ठता का साधक है। अंगांगीभाव, उपकार्योपकारकभाव तथा परस्परस्पर्धाधिरोह ये तीन इन वाच्यादि अर्थों के सहभाव की अवस्थाएँ हैं। इनमें परस्परस्पर्धादिरोह की स्थिति श्रेष्ठ है। व्यंग्य अर्थ की प्रधानता होने पर उत्तम काव्य होता है और प्रधानता न होने पर मध्यम या अधम–मम्मटादि के इस मन्तव्य का यहाँ सप्रमाण खण्डन किया गया है। कविता में सभी प्रकार के अर्थों में अलंकार रहता ही है। काव्य में रूप और वस्तु का सम्बन्ध भी तिलतण्डुलवत्, गोशृङ्गसदृश तथा नीरक्षीरसम इस प्रकार से तीन प्रकार का हो सकता है।

इनमें उत्तरोत्तर सम्बन्ध श्रेयान् है। परस्परस्पर्धाधिरोह के द्वारा ग्रन्थकार ने शब्द और अर्थ में द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध भी स्वीकार किया है तथा इस पर द्वन्द्वालंकार के प्रसंग में पुनः विचार किया गया है। काव्य में व्यक्त आधि ाभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सत्ताओं का पारस्परिक सम्बन्ध पद, पदार्थ और वाक्यार्थों की भांति होता है।

इस अधिकरण के षष्ठ् अध्याय में काव्य में शास्त्रसंगति का विचार किया गया है। काव्य में शास्त्रसंक्रान्ति तीन प्रकार की होती है – समवेता, संगता तथा बलादानीता। पहली सागर में तरंगों की उछाल के समान होती है जिस प्रकार सागर में तरंगे स्वतः आलोडित होती हैं, उसी प्रकार शास्त्रतत्त्व कविमानस में इनमें प्राचीन शास्त्रों के विचार भी उद्गत हो सकते हैं और अदृष्टपूर्व विचारतत्त्व भी। कविप्रतिभा अपना शास्त्र स्वयं रच लेती है और ऐसी प्रतिभा के द्वारा रचा काव्य स्वतः प्रमाण है। द्वितीय स्थिति भोजन में लवण के समान शास्त्रतत्त्व बाहर से सम्मिश्रित होकर भी पृथक् से पहचान नहीं रखते। तीसरी स्थिति में फटे वस्त्र पर लगाये गये पैबन्ध के समान शास्त्रतत्त्व कविता में अलग से झलकता है। इनमें पूर्व–पूर्व स्थिति श्रेयसी है।

काव्य में शास्त्र का समावेश काव्यसमयान्तःपाती बनाकर या कविता की अपनी शर्तो पर ही किया जाना चाहिए। पहली स्थिति में विचार तत्त्व रचना में वैसे ही आविर्भूत होता है। जिस तरह वनस्पतियों में प्ररोहकाल में रस स्वतः आ जाता है। दूसरी स्थिति में अन्न को पकाने के समय मिलाये जाने वाले विविध व्यंजनों या मसालों के समान रचना में विचार तत्त्व का आध ाान किया जाता है। तीसरी स्थिति तो उच्छिष्टरूप में परान्न के लिए स्वीकार की है।

काव्य और शास्त्र के परस्पर उपकार्योपकारकभाव सम्बन्ध को यहाँ स्वीकार किया गया है, पर काव्य शास्त्रपूर्वक ही होता है राजशेखर के इस मत का खण्डन किया गया है।

अलंकारविमर्श नामक द्वितीय अधिकरण में पहले अलंकार के स्वरूपर पर विचार हैं– आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिक विश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारणपर्याप्त्याधायकत्वमलंकारत्वम्। यह अलंकार का लक्षण किया गया है। भूषण, वारण तथा पर्याप्ति अलंकार की काव्यरचनाप्रक्रिया में इन त्रिविध स्थितियों का सम्बन्ध आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन त्रिविध सत्ताओं से किस प्रकार है यह यहाँ सप्रमाण गवेषित है। कविता में अलंकार अविभाज्य व अनिवार्य तत्त्व हैं तो अलंकार के लक्षण के अनुसार

उसमें आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक विश्व का उन्मीलन होना चाहिए यह सम्भव है कि किसी कृति में केवल आधिभौतिक की, किसी में केवल आधिदैविक की, तो किसी में केवल आध्यात्मिक की प्रधानता प्रतीत होती हो। कालिदास के तीनों रूपकों का सोदाहरण विश्लेषण करते हुए यहाँ यह प्रतिपादित किया गया है कि मालविकाग्निमित्र में आधिभौतिक विश्व की प्रधानता है, पर अन्य दो विश्व उसमें न्यग्भूत स्थिति में समाविष्ट हैं, विक्रमोर्वशीयम् में आधिदैविक जगत् में कवि की रचना प्रक्रिया अधिक रमी है, शाकुन्तल में वह आध्यात्मिक विश्व की ओर उन्मुख हुई हैं। अलंकारों में भी आभ्यन्तर और बाह्य अलंकारों का प्रयोग इन रूपकों में तदनुसार न्यूनाधि ाक्येन हुआ है।

इस अध्याय के कविव्यापारनिरूपण नामक शीर्षक में कविव्यापार का लक्षण किया गया है। अलम्भाव के आधान के लिए कवि के द्वारा सम्पाद्यमान प्रक्रिया कविव्यापार है। इसके चार भेद हैं–वृत्ति, रीति, मार्ग तथा रस। नियतवर्णगत व्यापार वृत्ति है। पदविशेषगत व्यापार रीति हैं। अर्थविषयक व्यापार मार्ग है तथा आस्वादविषयक व्यापार रस है।

अलम्भावनिरूपण नामक शीर्षक में अलम्भाव का स्वरूप अलम्भावस्तु पूर्णता इस सूत्र के द्वारा बताया गया है। अलम्भाव का अधिष्ठान मनुष्यचैतन्य है अथवा इसी में चैतन्य प्रतिष्ठित है। यह भी कहा जा सकता है कि चेतना का व्यापकीभवन और तन्मयीभवन इसी के दो पक्ष हैं।

चतुर्थ अध्याय में अलंकारविभाग बताया गया है। अलंकार के दो प्रकार यहाँ कहे गये हैं–आभ्यन्तर तथा बाह्य। पर्याप्ति, वारण, भूषण की प्रक्रियाओं के साथ आध्यत्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक ये तीन प्रकार भी अलंकार के हो जाते है। संरचना की दृष्टि से अलंकार के पदगत, पदार्थगत, वाक्यगत, प्रकरणगत तथा प्रबन्धगत ये पाँच भेद होते हैं तथा शब्द–व्यापार की दृष्टि से वाच्यगत, लक्ष्यगत तथा व्यंग्यगत ये तीन भेद। अलंकार काव्य में सदैव समवेत ही होते हैं। इनमें आभ्यन्तर अलंकार काव्य में उसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार अग्नि में उष्णता इनके बिना काव्य या साहित्य की सृष्टि सम्भव ही नहीं है। बाह्य अलंकार काव्य में उसी प्रकार रहते हैं, जैसे अग्नि में कान्तिमत्ता, आदि धर्म। ये भी काव्य में समवेत ही रहते हैं तथा ये आभ्यन्तर अलंकारों की अपेक्षा से बाह्य हैं, अन्यथा वे भी कविता के आभ्यान्तर और अविभाज्य अवयव ही हैं।

आभ्यन्तरालंकारनिरूपण के अन्तर्गत ग्यारह आभ्यन्तर अलंकार भेदोदाहरणसहित विवेचित हैं–प्रेमा, आह्लाद, विषादन, विभीषिक, व्यंग्य,

कौतुक, जिजीविषा, अहंकार, स्मृति, साक्ष्य तथा उदात्त। रसों का यथावकाश इनमें अन्तर्भाव हो जाता है। उदात्त अलंकार में वीर रस, प्रेम और आह्लाद में श्रृंगार तथा हास्य, विषादन में करूण, विभीषिक में बीभत्स और भयानक, व्यंग्य में हास्य, कौतुक में अद्भुत और अहंकार में रौद्र तथा साक्ष्य अलंकार में शान्त रस अन्तर्भूत हैं।

बाह्यालकांरनिरूपण नामक शीर्षक में बाह्य अलंकारों के चार प्रकार बताये गये हैं–संघटनाश्रित, विरोधमूलक, औपम्यमूलक तथा वृत्तिमूलक। इनमें अन्यथाकरण, छाया, स्वभाव या जाति तथा अतिशय ये चार संघटनाश्रित बाह्य अलंकार हैं। अपह्नुति विरोध, असंगति, विषम, द्वन्द्व और तनाव–ये छः विरोधमूलक वर्ग के बाह्य अलंकार हैं तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दीपक ये चार औपम्यमूलक वर्ग के। नादानुवृत्ति, यमक श्लेष तथा लय ये चार वृत्तिमूलक अलंकार हैं। इस प्रकार बाह्य अलंकार की कोटि में कुल अठारह अलंकार समाविष्ट हैं। जाति अलंकार के विचार में यह प्रदर्शित किया गया है कि आज की समीक्षा में जिसे यथार्थवाद कहा जाता है उसकी समग्र अवधारणा इस अलंकार में आ जाती है। जाति या स्वभावोक्ति अलंकार में वास्तविकता का चित्रण तथा यथार्थदृष्टि अपेक्षित होती है। जिन अलंकारों में कल्पना उड़ान भरती है, उन्हें साधना सरल है, जाति अलंकार को साधना कठिन। कल्पना की उड़ान भरते समय कवि अन्य कवियों से भी सामग्री ले सकता है, जाति अलंकार के निबन्धन में तो स्वयं का देखा–परखा अनुभूत सत्य ही व्यक्त हो सकता है। इसीलिए प्राचीन परम्परा में भी जातिकाव्य की प्रशंसा की जाती रही है। जातिकाव्य में अतिशय अलंकार बिल्कुल ही न रहता हे, ऐसा नहीं है। वस्तुतः जाति और अतिशय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी काव्य में एक जाति का पक्ष सम्मुख या उदग्र रहता है और अतिशय पृष्ठवर्ती हो जाता है, किसी में अतिशय की उदग्रता होती है पर पृष्ठभूमि में जाति नहीं होगी, तो ऐसा अतिशय भी हास्यास्पद या निरर्थक हो जायेगा। जाति अलंकार में प्रेमा, उदात्त जिजीविषा अवश्य होने चाहिए, नहीं तो काव्य जातिविभूषित न होकर जात्याभासविदूषित हो जायेगा।

पाश्चात्य समीक्षा के बिम्बसिद्धान्त की भी अन्तर्वर्तिता इस ग्रन्थ में उक्त अलंकारों में प्रदर्शित की गई हैं काव्यबिम्ब के दो प्रकार यहाँ माने गये हैं–जातिमूलक बिम्ब तथा अतिशयमूलक बिम्ब। सन्देह अलंकार का उत्प्रेक्षा में और भ्रान्तिमान् का रूपक में अन्तर्भाव हो जाता है। पाश्चात्य समीक्षा में प्रतिपादित प्रतीकविधान का अन्तर्भाव भी यहाँ रूपक अलंकार में ही प्रतिपादित किया गया है। इन सभी अलंकारों के प्रकरणगत और प्रबन्धगत भेदों के

विवेचन में यहाँ यह प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार किसी एक उत्तम रचना में आद्यन्त इनमें से कोई अलंकार पिरोया हुआ हो सकता है और इसके द्वारा तत्तद् रचना के अपने वैशिष्ट्य का उद्घाटन किया जा सकता है। इस दृष्टि से मालविकाग्निमित्र में अपह्नुति, विक्रमोर्वशीयम् में उत्प्रेक्षा तथा शाकुन्तल की समग्र संरचना में स्मृति, अतिशय जैसे अलंकारों की व्याप्ति दिखाकर इन अलंकारों के प्रबन्धगत स्वरूप का यहाँ विस्तृत विवेचन किया गया है। अनुप्रास अलंकार का निराकरण करके यहाँ नादानुवृत्ति और लय इन दो नवीन अलंकारों की बाह्यालंकारवर्ग में परिकल्पना प्रस्तुत की गई है। नादानुवृत्ति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की नाद के द्वारा अनुवर्तिता की दृष्टि से पाँच प्रकार हो जाते हैं। लय अलंकार प्रत्येक रचना में अनिवार्य है। संरचना के स्तर पर तत्काल आभासित होने के कारण ही इसे वाह्य अलंकारों में रखा गया है, अन्यथा यह हर साहित्य में अविभाज्यवृत्ति होकर रहता ही है।

यथावसर इन अलंकारों के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक प्रकारों का भी निरूपण यहाँ किया गया है। उपमा में उपमेय अथवा उपमान आधिभौतिक, आधिदैविक या आध्यात्मिक हो सकते हैं। उत्प्रेक्षा मूलतः आधि दैविक अलंकार है। सम्भावन के द्वारा कवि इसमें कभी आधिभौतिक जगत् में आधिदैविक का अवतरण कराता है, तो कभी आधिभौतिक का आधिदैविक तक आरोहण सम्भाव्य बनाता है।

तृतीय अधिकरण में पाठ्य और दृश्य इन द्विविध काव्यविधाओं के नाना प्रकारों का निरूपण है। श्रव्य के स्थान पर आचार्य त्रिपाठी जी ने यहाँ पाठ्य शब्द अधिक समीचीन माना है। पद्य की विधाओं में गजल, गीति, मुक्तकछन्द काव्य, समस्याकाव्य आदि तथा गद्य के भेदों में निबन्ध, आलोचना, कथा, उपन्यास, संस्मरण, जीवनचरित्र, आत्मकथा, रेखाचित्र, यात्रावृतान्त आदि नवीन विधाओं का भी विवेचन किया गया है। आचार्य त्रिपाठी जी के इस काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में अनेक उद्भावनाएँ और स्थापनाएँ विचार करने योग्य हैं, उन्होंने काव्यशास्त्र का लक्षण **"लोकानुकीर्तनं काव्यम्'**[4] किया है। यहाँ 'लोक' शब्द की उन्होंने विस्तृत व्याख्या की है, जिसके अन्तर्गत सब कुछ समाहित है। लोकातिक्रान्त वे कुछ नहीं मानते हैं। आचार्य त्रिपाठी जी लोकानुकीर्तन को काव्य मानते हुए लोक के तीन भेद करते हैं –

"स च लोकस्त्रिविधः आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिकश्च।'[5]

इनका मानना है, कि आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ये

लोक के तीन रूप हैं। यह तीनों एक दूसरे से जुड़े हुये हैं, इन तीनों का समुल्लास ही जीवन है और जीवन की भी तीन अवस्थाएँ होती हैं। जीवन के पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। जीवन एक व्यक्ति का नहीं, अपितु राष्ट्र या समाज का तथा ब्रह्माण्ड का भी होता है। साहित्य या कविता में भी यही त्रिविध जीवन प्रतिफलित होता है। आचार्य त्रिपाठी जी एक अलंकारवादी आचार्य हैं। ये 'रेवाप्रसाद द्विवेदी' जी की भाँति अलंकार को काव्य की आत्म मानते हैं :–

'अलंकारः काव्यजीवनम्।'[6]

आचार्य द्विवेदी जी तथा त्रिपाठी जी दोनों ही अलंकार प्रस्थान के पोषक हैं। त्रिपाठी जी ने अलंकार पर विस्तृत रूप से विवेचन किया है, ये अलंकार के दो प्रकार मानते हैं–आभ्यन्तर तथा बाह्य। पुनः अध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक भेद से तीन प्रकार करते हैं। संरचना की दृष्टि से पद, पदार्थ, वाक्य, प्रकरण तथा प्रबन्धगत् ये पाँच भेद करते हैं। ध्वनिकार और वक्रोक्तिकार भी ध्वनि और वक्रोक्ति की अवस्थिति में इन्ही पाँच भेदों को दर्शाते हैं।

इस प्रकार ध्वनि और वक्रोक्ति की तरह अलंकार को काव्य का प्रमुख तत्त्व स्वीकार करते हुए आचार्य त्रिपाठी जी संरचना की दृष्टि से उसका विभाग पारम्परिक रूप में करते हैं और रस, ध्वनि और वक्रोक्ति जैसे सिद्धान्तों के स्थान पर अलंकार को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करते हैं। आचार्य ने, काव्यशास्त्रीय परम्परा को समादृत करते हुए नवीन तत्त्वों का उन्मीलन किया है। अलंकार तत्त्व जो पूर्व विवेचित और रस के बाद सबसे अधिक प्रचलित तत्त्व रहा है, उसकी पुनः प्रतिष्ठा आचार्य श्री ने की है। उन्होंने काव्यशास्त्र की परम्परागत् अवधारणाओं में परिवर्तन किया है। प्राचीन सूत्र–शैली में लेखन, किन्तु विचारों की नवीनता इस कृति का अनुपम वैशिष्ट्य है।

वस्तुतः 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नया काव्यशास्त्र है। यह वैश्विक परिप्रेक्ष्य अलंकारतत्त्व को भूषण, वारण और पर्याप्ति की त्रिविध प्रक्रिया की सृष्टि के त्रिविध स्तरों–आधिभौतिक, आधि ।दैविक तथा आध्यात्मिक के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्या के साथ यहाँ दिया गया है। काव्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा में ऐसी अनेक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं, जिनसे नये प्रतिमानों और नये मानकों का विकास किया जा सकता है। वस्तुतः भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त विश्वसाहित्य के मूल्यांकन के लिए अभिनव मापदण्डों की खोज में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आज के साहित्य

में हो रहे नये प्रयोगों की सार्थकता का भी आकलन इन मापदण्डों के द्वारा किया जा सकता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र का लगभग तीन सहस्र वर्षों का इतिहास इसकी गत्यात्मकता तथा अनवरत विकासयात्रा का प्रमाण है। इसकी परम्परा का व्यवस्थापन और पुनर्व्यवस्थापन प्रत्येक युग में बार–बार होता रहा है। राजशेखर और भोज दसवीं शताबदी में सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को पुनर्व्यवस्थापित करने का प्रयास करते हैं। बीसवीं शताब्दी में भी ऐसे प्रयास हो रहे हैं। 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' इसी प्रकार का एक प्रयास है इसमें प्राचीन कालजयी साहित्य का पुनःसन्धान भी किया गया है और विश्वसाहित्य में हो रहे नवोत्थान और नवप्रयोगों का परीक्षण भी इन दोनों के आधार से साहित्य समीक्षा के नये मानदण्ड विकसित करने का यहाँ उद्यम किया गया है। संस्कृत काव्यशास्त्र की अनेक कोटियों की पुनर्व्याख्या भी इस क्रम में की गई है। संस्कृत की प्राचीन और नवीन रचनाओं के साथ विश्व की अनेक कालजयी कृतियों का नवीन सिद्धान्तों के निकष के लिए प्रमाणस्वरूप या उदाहरणस्वरूप विमर्श यहाँ किया गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र में समादरणीय कविवर आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की प्रतिभा अद्वितीय है। इनकी विदग्धता, प्रतिबद्धता एवं संवेदनशीलता ने संस्कृत साहित्य में अद्वितीय एवं अविस्मरणीय योगदान दिया है। आधुनिक संस्कृत जगत् इनके इस योगदान के लिये सदैव ऋणी रहेगा। आशा है कि आपकी लेखनी से भविष्य में भी श्रेष्ठ रचनाएँ प्रसूत होती रहेंगी।

सन्दर्भः

1. मालविकाग्निमित्रम् ,1/2
2. संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्यपरम्परा, पृ. 6
3. वही, पृ. 19
4. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्– 1.1.1
5. वही, 1.1.2–1.1.3
6. वही, 2.1.1 3

संस्कृत–विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
प्रतापगढ (राज0)

लोकधर्मी परम्परा का काव्यस्वरूप

डॉ. संजय कुमार दुबे

संस्कृत साहित्य की लगभग पॉच हजार वर्षो की जो गौरवशाली विकास यात्रा हमारे आदि अपौरुषेय ग्रंथ वेदों से शुरू हुई वह समृद्ध काव्य परम्परा आज भी सक्रिय है जिसे हम लोकधर्मी कविता की परम्परा कह संकते है। इस परम्परा का उद्‌भव एवं विकास प्राचीन राजसभाओं की सॅकरी दुनिया में न होकर भारतीय जनमानस के इस विराट् संसार में हुआ।

यह कविता मध्यम वर्ग, निम्नमध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के लोगों से सीधा साक्षात्कार कराती है। एक समूची जिन्दगी की तस्वीर यहाँ हैं इसमें घर–परिवार, गृहिणी, दांपत्य, काम–धधों में लगे लोग, किसान, मजदूर, हलवाहे, लाचार बटोही ये सब अपने परिवेश के साथ प्रस्तुत हैं। यहाँ पारिवारिक सम्बन्धों, ऋतुओं, उत्सवों आदि का अनुभव वह नहीं है। जो कालिदास, माघ और अमरुक आदि की कविताओं में हमें प्राप्त होता है। यह कविता तो गाँवों में, खेत–खलिहानों में गली–मुहल्लों में रमती है। इस कविता की विषय वस्तु आम आदमी के संघर्ष की कहानी होती है जिसमें अगणित बाधायें और विभीषिकाओं का स्वाभाविक वर्णन होता है। जैसे–

कदाचित् कष्टेन द्रविणमधमाराधनवशा–
न्मया लब्धं स्तोकं निहितमवनौ तस्करवरशात्।
ततो नित्ये कश्चित् क्वचिदपि तदाखुर्बिलगृहे,
नयल्लब्धोऽप्यर्थो न भवति यदा कर्म विषमम्।।[1]

(कदाचित् कष्टपूर्वक अधम व्यक्ति की सेवा कर के मैने थोडा सा धन पाया भी, तो उसे चोर के डर से धरती में गाड दिया। फिर उसे कोई चूहा अपने बिल में ले जा कर गायब कर गया। कर्म विषय हों, तो मिला हुआ ध ान भी साथ नहीं रहता।)

इस स्वाभाविक वर्णन को भित्ति पर उकेरने का कार्य नाट्य करता है। क्योंकि आचार्य भरतमुनि नाट्यशास्त्र में कहते है कि 'लोकस्य चरितं नाट्यमित्यवोचः'[2] अर्थात् इस लोक का चरित ही नाट्य है। लोकस्वभाव को ध्यान में रखकर ही नाट्य की रचना और प्रस्तुति की जानी चाहिये। लोकभाषाओं की शक्ति और सीमा का विचार करके उनका भी यथोचित प्रयोग इसमें होना चाहिये–

लोकस्वभावं सम्प्रेक्ष्य नराणां च बलाबलम्।

सम्भोगं चैव युक्तिं च ततः कार्यं तु नाटकम्।।[3]

तदेवं लोकभाषाणां प्रसमीक्ष्य बलाबलम्।

मृदुशब्दं सुखार्थं च कविः कुर्यात् तु नाटकम्।।4

आचार्य भरत मुनि का आशय यही है कि लोक स्वभाव या सहज प्रकृत रूप नाट्य की विषयवस्तु बनता हैं। इस लोकस्वभाव को प्रस्तुत करने के लिये नाट्यप्रस्तुति में अपनाई गई प्रविधि को उन्होंने लोकधर्मी कहा है। इस लोकस्वभाव की सहज अविकृत प्रस्तुति में जब कुछ अंलकरण, कल्पना या विकृति (विशिष्ट कृति) जोड़ दी जाये तो नाट्यधर्मी होती है। नाट्य के लिये लोकधर्मी भी आवश्यक है और नाट्य धर्मी भी। नाट्य धर्म के बिना नाट्यधर्मी नहीं बन सकता क्योंकि लोकधर्मी तो मूलाधार है, और नाट्यधर्मी के बिना भी पूरा नाटक खडा नहीं हो सकता। इसीलिये नाट्य प्रस्तुति में दोनों आवश्यक है। आचार्य अभिनव गुप्त कहते है कि–

लौकिकधर्मस्य मूलभूतस्य नाट्यधर्मं प्रति विचित्रोल्लेखभित्ति स्थानीयत्वात्।

..............लौकिकधर्मव्यतिरेकेण नाट्ये न कश्चिद् धर्मोऽस्ति।[5]

लोक स्वभाव समस्त कलाओं की विषयसामग्री में विनियुक्त होता है। स्वभाव का अर्थ तदवस्थत्व या उसका अपना प्रकृत अथवा सहज रूप है। इस लोकस्वभाव को जब रंगमंच पर आंगिक, वाचिक, सात्त्विक, और आहार्य– इन चार प्रकार के अभिनयों से समन्वित करके प्रस्तुत किया जाता है तो वही नाट्य बन जाता है। –

योघ्यं स्वभावो लोकस्य सुखदुःख समन्वितः।

सोघ्ङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।[6]

लोक स्वभाव सारी कलाओं तथा काव्यों की वस्तु है। अभिनय और अंलकार आदि उसे रूप देते है। प्राचीन कोश ग्रन्थों में लोक के दो मुख्य अर्थ बताये गये है– भुवन या सारा संसार तथा जन या लोग– बाग। पर कलाचिन्तन के संदर्भ में लोक की व्याख्या भरतमुनि के टीकाकार आचार्य अभिनवगुप्त ने की है। उनका कहना है कि जनपदों में रहने वाले लोग लोक हैं। इनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का नाट्य जैसी कलाओं में ग्रहण करना लोकध र्मी है।

लोको नाम जनपदवासी जनः। जनपदश्च देश एव।[7]

वास्तव में जो लोक हमारी संस्कृति, धर्म, कला, और शास्त्र–चिन्तन का आधार बनता है, वह हमारा या मनुष्य समाज का सहज और अविकृत रूप है। भरतमुनि जब उनका आशय इसी लोकप्रमाण की, या नाट्यधर्म के रूप में लोकधर्मी की बात करते है, तो उनका आशय इसी सहज अविकृत रूप से है। मनुष्य में कर्त्तृत्व की अनंत सम्भावनायें हैं, जो उसकी अकृत्रिमता से फूटती हैं। कृत्रिमता इन सम्भावनाओं का अवरोध है। लोक वहीं है, जहॉ जीवन और जगत् अपने अकृत्रिमता में उपलब्ध हों। वही लोक का विराट् रूप भी है।

जिस प्रकार लोक के सहज प्रकृत रूप का नाट्य में अंगीकार करना लोकधर्मी है, उसी तरह कविता में लोक के ऐसे रूप का कथन स्वभावोक्ति है। जिस प्रकार नाट्य में लोकधर्मी भी अपेक्षित है, और नाट्यधर्मी भी, उसी प्रकार कविता में भी स्वभाव और वक्रता दोनों अपेक्षित हैं। स्वभाव की प्रध ानता वाला काव्य स्वभावोक्ति और वक्रता प्रधानता वाला काव्य वक्रोक्ति कहलाता है, पर नाट्यप्रस्तुति धर्मी के दोनों रूप कमोवेश जरूरी हैं। उसी तरह काव्य में भी उक्ति के दोनों रूप न्यूनाधिक्य में आवश्यक है। स्वभावोक्ति में लोक या जीवन रहता है और वक्रोक्ति उसे काव्य का मुहावरा देती है। इसलिये आचार्य अभिनवगुप्त उचित ही कहते हैं कि चाहे नाट्यप्रस्तुति हो या कविता, दोनों में ये दो पक्ष एक साथ रहते हैं। इनके एक हिस्से में यथावृत्त वस्तुमात्र का वर्णन होता है, जिसमें कवि अपनी बुद्धि से कोई रंजन या मुलम्मा नहीं चढाता। इसी में समाविष्ट काव्य नाट्यप्रस्तुति का वह हिस्सा भी रहता है जिसमें उक्त यथावृत वस्तुमात्र को कवि अपने कोण से देखता है–

यदा कविर्यथावृत्तवस्तुमात्रं वर्णयति नटष्च प्रयुड्.क्ते, न तु स्वबुद्धिकृतं रंजनावैचित्र्यं तत्रानुप्रवेशयति, तदा तावान् स काव्यभागः प्रयोगभागश्च लोकधर्माश्रयः तत्र धर्मी।[8]

संदर्भ

1. विज्ञानशतक पृ.71 चौखम्बा प्रकाशन वनारस ।
2. नाट्यशास्त्र 6/11।
3. नाट्यशास्त्र 19/149
4. नाट्यशास्त्र 19/152
5. अभिनवगुप्त कृत अभिनवभारती भा. 3 पृ.214।
6. नाट्यशास्त्र 01/119
7. अभिनवगुप्त कृत अभिनवभारती भा. 2 पृ.213।
8. नाट्यशास्त्र 19/152
9. नाट्यशास्त्र 13/71–72 पर अभिनव भारती।

अभिनव काव्यालङ्कार सूत्रः एक विवेचन

पी. आर. मलैया

आचार्य श्रीमद् राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा काव्यशास्त्रीय परम्परा में 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' नामक सूत्रग्रंथ की रचना करके काव्यशास्त्रीय परम्परा को अभिनव आयाम प्रदान किया गया है। आचार्य ने ग्रंथ के प्रारम्भ में काव्य को परिभाषित करते हुये उसे 'लोकानुकीर्तन' कहा है। लोक को उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार का कहा है तथा निरंतर परिवर्तनशील और विकासशील माना है। अन्तरिन्द्रियों एवं बाह्य इन्द्रियों से अनुभव किया जाने वाला लोक आधिभौतिक है। आधि दैविक की व्याख्या करते हुये वे कहते हैं कि मन से ज्ञानेन्द्रिय को प्रेरित करते हुये व्यक्ति द्वारा कल्पनाशक्ति से वस्तु का जो रूप देखा या रचा जाता है वहाँ आधिदैविक लोक उपस्थित होता है। आध्यात्मिक लोक को परिभाषित करने के क्रम में आचार्य आत्मा को प्रथम परिभाषित करते हुये कहते हैं 'वस्तुमात्रस्य प्रतीयमानं स्वरूपमेव तस्याऽऽत्मा। तस्मिन्नात्मनि यत् स्यात् तदध यात्मम्। अतएव वस्तुनः आन्तरिकं रूपमेवाध्यात्मम्।' अर्थात् वस्तु की देह (समग्रवस्तुपिण्ड) आत्मा है। (यह विचारणीय है)। इस आत्मा (वस्तुदेह) में जो आंतरिक रूप से उपस्थित है वह अध्यात्म संज्ञक है। इस प्रकार इन त्रिविध लोकों का कथन कर यह कहा है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म से लेकर स्थूलातिस्थूल तक समस्त वस्तुओं को यह लोकत्रयी स्वयं में समेटे है। इसी क्रम में आचार्य ने ब्रह्म (परमसत्ता) की लोकान्तर्वर्तिता को तर्क सहित प्रमाणित किया है। शास्त्रीय परम्परा में मान्य काव्य के लोकात्तरत्व की धारणा का समाधान करते हुये उन्होंने कहा है कि परम्परा में जिस 'लोक' के परिप्रेक्ष्य में लोकोत्तरता मानी गयी है वह आधिभौतिक लोक है जो काव्य का आधार तो होता है किन्तु काव्य का पर्यवसान उसी के निरूपण में नहीं होता, अपितु उसका अतिक्रमण होता है। यही काव्य का लोकोत्तरत्व है। तीनों (आधिभौतिक, आधि दैविक आध्यात्मिक) लोकों का अनुकीर्तन काव्य में होता है किन्तु सापेक्षतः

किसी एक की रचना में प्रधानता होती है। ये तीनों परस्पर संलिप्त रहते हैं। इसी संलिप्तता के द्वारा काव्य में पुरूषार्थ सिद्धि होती है आधिभौतिक से अर्थ की, आधिदैविक से काम की तथा आध्यात्मिक से धर्म एवं मोक्ष की सिद्धि होती है। इस लोकत्रयी का विकास एवं समुल्लास ही जीवन है।

अनुकीर्तन का अर्थ है पश्चात् कथन। लोक क्रम में पूर्ववर्ती है और उसका अनुकीर्तन पश्चात्वर्ती। शब्दों द्वारा लोक का पुनराविष्कार अनुकीर्तन है। यह गुणयुक्त, अलंकारयुक्त, रसाभिव्यञ्जक शब्द एवं अर्थ का संग्रह है। अनुकीर्तन द्वारा काव्य में जो पूर्णता आती है वही अलंकार है। अनुकीर्तन की चार अवस्थायें आचार्य ने बताई हैं– अनून्मीलन, अनुदर्शन, अनुभव एवं अनुव्याहरण। कविमानस में जीवन का प्रथमोन्मेष ही अनून्मीलन है, इस उन्मिषित काव्यवस्तु का कवि की आत्मचेतना में दर्शन ही अनुदर्शन है, वर्णनार्थ उस अनुदृष्ट काव्यवस्तु के स्वरूप का आविष्कार ही अनुभव है तथा उसका स्फुट शब्दों में कथन ही अनुव्याहरण है। यह लोकानुकीर्तन ही ऐतरेय ब्राह्मण में महर्षि महीदास द्वारा अनुकृति कहा गया है। यहाँ अरस्तु के मत से साम्य ध्यातव्य है।

रचना प्रक्रिया के विषय में वे केवल 'स्वतः स्फूर्त भावोच्छलन' के मत को नकारते हैं। मुक्तक में भावोच्छलन की तथा अन्य साहित्य विधाओं में विचार कर सायास रचनाकर्म की उपस्थिति वे स्वीकार करते हैं और यहाँ वे मेथ्यू अर्नाल्ड से सहमत होते दिखते हैं जिन्होंने काव्य को मूलतः जीवन की समालोचना माना है। आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, अभिराजराजेन्द्र मिश्र प्रभृति आचार्यों से वे असहमति व्यक्त करते हैं जो स्वतः स्फूर्त भावोच्छलन सिद्धान्त के पक्षधर हैं। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि काव्य अनून्मीलन के स्तर पर तो सदैव स्वतः स्फूर्त भावोच्छलन ही होता है, किन्तु अनुदर्शन, अनुभव एवं अनुव्याहरण के स्तरों पर उसमें शनैः शनैः जीवन समीक्षा का परिपाक होता है। यह परिपाक ही काव्य के रूप में मूर्त्त होता है कभी–कभी इस प्रक्रिया की अवधि इतनी अल्प होती है कि रचनाकार को स्वतः स्फूर्त भावोच्छलन ही काव्य प्रतीत होती है। जैसे अमोनिया ठोस से सीधे वाष्प में ऊर्ध्वपतित हो जाता है।

आचार्य कुन्तक ने शब्द और अर्थ के न तो न्यून और न अधिक मनोहारी अवस्थिति को साहित्य माना है। विद्यानिवास मिश्र जी ने विहित्व, प्रहितत्व, पिहितत्व, सन्निहितत्व, निहितत्व या अवहितत्व कहा है। भरतमुनि ने प्रतिशब्द छन्दयुक्त मानते हुये काव्य में छन्द की और छन्द में शब्द की उपस्थिति मानी

है। आचार्य इन सभी से अपनी सहमति व्यक्त करते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के 'साहित्य समाज (लोक) का दर्पण है' से वे असहमत हैं। दर्पण में वस्तु का दृश्य रूप ही प्रतिविम्बित होता है किन्तु आचार्य को आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों का ही प्रतिबिम्बन अभीष्ट है। आचार्य के अनुसार काव्य लोक का विशिष्ट रूप होता है। इस विशिष्ट रूप के आलोक में लोक अपने सामान्य रूप को सुधारता है एवं उसका पुनर्गठन करता है। काव्य में अशिव एवं अशुभ का वर्णन उसके निरास (निरसन) के लिये तथा शिव एवं शुभ की स्थापना के लिये होता है। काव्य और नाट्य में लोकानुसारित्व एवं वैचित्र्ययोगित्व दोनों समाविष्ट रहते हैं। यही उनका धर्म है।

इस प्रकार 'अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः। छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितां विदुषां प्रियम्' (भगवान व्यास), 'काव्यबन्धास्तु कर्त्तव्या षट्त्रिंल्लक्षणान्विताः (भरतमुनि), 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' (भामह), 'शरीरैतावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' (दण्डी), 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' (मम्मट)) इन सभी काव्यलक्षणों का समाहार 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्' लक्षण में हो जाता है।

आचार्य ने काव्य का प्रयोजन मुक्ति बतलाया है तथा सृष्टि एवं चेतना के त्रैविध्य के कारण उसके तीन–तीन प्रकार कहे हैं तथा उनको परस्पर अनुषक्त कहा है। उनकी दृष्टि में संकुचित प्रमातृत्व रूपी आवरण के नष्ट होने की स्थिति ही मुक्ति है। यह संकुचितता कवि एवं सहृदय (दोनों प्रमाता हैं) के चैतन्य का संकोच है। काव्य प्रयोजन इस संकुचितता से मुक्ति है। काव्य के श्रवण–पाठन तथा नाट्य के अवलोकन से सहृदय का चैतन्य संकुचितता से छुटकारा पाकर आनन्त्य अनुभव करता है। यही मुक्ति है। आचार्य परम्परा प्रतिपादित आत्यन्तिक शाश्वत मोक्ष (मुक्ति) के विचार से असहमत हैं।

काव्य का कारण जागरिता प्रतिभा है। प्रतिभा प्राणिमात्र में अवस्थित होती है। स्पन्दशीलता इसका स्वभाव हैं। यह स्पन्दशीला प्रतिभा ही कवि स्वभाव है जो सुकुमार, विचित्र एवं उभयात्मक भेद से तीन प्रकार का होता है। काव्य घटनानुकूल शब्दार्थ की उपस्थिति प्रतिभा का जागरण है। गुरूपदेश, लोक–शास्त्र का अवगाहन, काव्याभ्यास, काव्यगोष्ठियाँ, सहृदयों की संगति, विशेष प्रसंग अथवा घटना के कारण प्रतिभा जागरण होता है। आचार्य काव्य के चार भेद मानते हैं। उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अवर। सर्वांगीण जीवन का निर्देशक महावाक्य उत्तमोत्तम काव्य है जीवन के एक

देश का निर्देशक भाव उत्तम है, वस्तुस्थिति विशेष या मनःस्थिति विशेष को उजागर करने वाला काव्य मध्यम है, और जिसका पर्यवसान पदार्थ मात्र में होता है वह अवर है। विविध दिक्–काल से विभक्त वाक्यों के पुरुषार्थ प्रवर्तक समूह की संज्ञा महावाक्य है। इन विविध वाक्यों में अलग–अलग अलंकार होते हैं। समुच्चय रूपेण वे अलंकार काव्य के अलंकारत्व को सिद्ध करते हैं। यही काव्य का महालंकारत्व है। जीवन के एकपक्ष अथवा शास्त्र के एकदेश का निर्देशक, कल्पना विलास समन्वित, प्रसंग विशेष या दशाविशेष को व्यक्त करने वाला काव्य उत्तम तथा पदार्थ विशेष की विचित्रता को दर्शानेवाला अथवा मनोदशा मात्र को उजागर करने वाला काव्य मध्यम काव्य है। जिस काव्य में प्रतिभोन्मेष की न्यूनता तथा शब्दाडम्बर का बाहुल्य हो वह अवर काव्य है।

काव्य में पौरुषेयत्व – अपौरूषेयत्व का निरूपण करते हुये आचार्य की मान्यता है कि जहाँ साक्षात्कार की प्रधानता तथा प्रयास की गौणता हो वहाँ अपौरूषेयत्व है। (तथा जहाँ साक्षात्कार–पश्चात् प्रयास का प्राधान्य हो वहाँ पौरूषेयत्व मानना चाहिये।) इस साक्षात्कार तथा स्वतःस्फूर्त भावोच्छलन का साम्य ध्यातव्य है।

काव्यकोटियों के निरूपण पर आधारित कवि कोटियाँ चार हैं। उत्तमोत्तम काव्य रचयिता सिद्ध, उत्तम काव्य रचयिता साधक, माध्यम काव्य रचयिता आभ्यासिक तथा अवर काव्य रचयिता घटक कहे गये हैं। इसी क्रम में आचार्य ने राजशेखर के कविकोटिविभाजन को असंगत ठहराया है। उपदेश के बिना भी काव्य सृजन संभव होता है इस तथ्य के आधार पर औपदेशिक कोटि को उन्होंने नकार दिया है।

समीक्षकों की उन्होंने चार कोटियाँ बतलाई हैं– तत्वाभिनिवेशी, विषयनिष्ठ, विषयिनिष्ठ, तथा सतृणाभ्यवहारी। ये चारों क्रमशः प्रायः उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम एवं अवर काव्य की समीक्षा में प्रवृत्त होते हैं। यद्यपि कोई समीक्षक किसी भी कोटि के अनुशीलन में प्रवृत्त हो सकता है तथापि उत्तमोत्तम काव्य की सम्यक् समीक्षा तत्वाभिनिवेशी समीक्षक ही कर पाता है। शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार समीक्षा करने वाला विषयनिष्ठ समीक्षक होता है। स्वानुभूति के अनुसार समीक्षा करने वाला समीक्षक विषयिनिष्ठ समीक्षक कहलाता है, तथा सब प्रकार के काव्यों को साधु–साधु कह सराहने वाला समीक्षक सतृणाभ्यवहारी है।

राजशेखर ने समीक्षकों की चार कोटियाँ गिनाई हैं – अरोचकी, मत्सरी, सतृणाभ्यवहारी तथा तत्वााभिनिवेशी। आचार्य अरोचकी एवं मत्सरी कोटियों को समीक्षक स्वीकार नहीं करते। क्योंकि अरूचि एवं मात्सर्य से युक्त स्वभाव वाले का समीक्षाधिकार ही नहीं है। यह अधिकार कल्मषरहित स्वभाव वाले मनुष्य का ही है, जो अपनी योग्यतानुसार उपरोक्त चार कोटियों में स्थान पा सकता है।

शब्दव्यापार निरूपण करते हुये आचार्य शब्द का एक ही अखण्ड व्यापार संकेत (अर्थबोधकता) निरूपित करते हैं जिसकी तीन वृत्तियाँ–अभिध ा, लक्षणा तथा व्यंजना हैं जिनसे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध यात्मिक तत्व उन्मीलित होता है तथा वाच्य, लक्ष्य एवं व्यङ्ग्य अर्थों का प्रकाशन होता है। काव्य में जिस प्रकार लोकत्रयी की समुपस्थिति अभीष्ट होती है उसी प्रकार इन तीनों की सह–उपस्थिति काव्य की श्रेष्ठता की साध ाक होती है। इस सहभाव की तीन अवस्थायें – अङ्गङ्गिभाव, उपकार्योपकारक भाव तथा परस्पर स्पर्धाधिरोह हैं, जिनमें परस्पर स्पर्धाधिरोह श्रेष्ठ है।

काव्य में त्रिवृत्त्याश्रित अर्थों को व्याप्त कर अलंकार रहता है। परस्पस्पध ार्धिरोह कहने से शब्द और अर्थ के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध का प्राकट्य होता है। वे एक दूसरे को छूने, तथा आगे निकलने की प्रतिस्पर्धासंसिक्त होते हैं। अतः रचना समय में कवि भी द्वन्द्वग्रस्त होता है। यहाँ कथ्य और रूप के द्वन्द्वात्मक संबंध को आचार्य स्पष्ट कर रहे है। काव्य में शास्त्रसंक्रान्ति के विषय में आचार्य का कथन है कि काव्य शास्त्र पूर्वक नहीं होते हैं। शास्त्र ही काव्यपूर्वक होते हैं। काव्य और शास्त्र में परस्पर उपकार्योपकारक भाव सम्बन्ध स्वीकार्य है। शास्त्र की काव्य में संक्रान्ति तीन प्रकार से होती है। समवेत, आरोपित एवं बलपूर्वक। उत्तमोत्तम और उत्तम काव्य में यह समवेत होती है। मध्यम और अवर काव्यों में भी यह संक्रान्ति होती है किन्तु आरोपित अथवा बलपूर्वक। समवेत (अनिर्वाच्य) संक्रान्ति में शास्त्र काव्य का अन्तरावयव होकर आता है। आरोपिता संक्रान्ति वहाँ होती है जहाँ कवि प्रसंगानुसार, अध ययनानुसार अथवा स्वारस्यानुसार काव्य में शास्त्र का अभिनिवेश करता है। अधमा संक्रान्ति वहाँ कही जाती है जहाँ कवि प्रतिभादारिद्र्य एवं काव्य दोष को छिपाने हेतु शास्त्र का अभिनिवेश करता है।

अलङ्कार स्वरूपनिरूपण करते हुये आचार्य अलङ्कार को 'काव्य का जीवन' कहते हैं। अलङ्कार को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि 'आधि

भौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों विश्वों का उन्मीलन कर काव्य में भूषण, वारण तथा पर्याप्ति का आधान करने वाला तत्व अलङ्कार है। भूषण सौन्दर्यीकरण, वारण अतिरिक्त का, अनावश्यक का परिहार है तथा इन दोनों के सम्यक् प्रयोग से पर्याप्ति का अवबोधन होता है। अलङ्कार समस्त कलाओं, सभी साहित्यों में सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सबको परखने वाला मानदण्ड है। कवि द्वारा अलम्भाव को उत्पन्न करने हेतु सम्पादित की जाने वाली प्रक्रिया 'कविव्यापार' है। जिसके वृत्ति–रीति–मार्ग तथा रस के भेद से चार प्रकार हैं। नियत वर्णगत व्यापार वृत्ति है, पदविशेषगत व्यापार रीति है, अर्थविषयक व्यापार मार्ग है तथा आस्वादविषयक व्यापार रस है। उपनागरिका, परूषा एवं कोमला वृत्तियाँ है जो प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित हैं। प्राक्तन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित वृत्तियाँ हैं– वैदर्भी, पाञ्चाली एवं गौड़ी। कुछ लोग लाटीया नामक चौथी वृत्ति भी मानते हैं। रीतियों का नवीन प्रतिपादन इस प्रकार है– विश्लेषण करके कहना व्यासरीति, अनुकृति के आभास से विडम्बन रीति, मनोवृत्तिनिरूपण द्वारा चेतना प्रवाह रीति तथा पाठक को संबोधित करने से वार्तालापरीति।

अलम्भाव निरूपण करते हुये आचार्य पूर्णता (पर्याप्ति) को ही अलंभाव कहते हैं। यह काव्य एवं प्रमाता में होता है। कवि प्रतिभा एवं मानुषचैतन्य इसका अधिष्ठान हैं। विविध चित्तवृत्तियों का सङ्गुम्फन इस अलम्भाव में होता है। इससे चेतना व्यापक होती है। अलङ्कार दो प्रकार के होते हैं– आभ्यान्तर एवं बाह्य। जिसके बिना काव्य, काव्य नहीं रहता ऐसा काव्यरचना में अनुस्यूत अलंकार आभ्यन्तर अलंकार कहलाता है। कभी ये प्रकट होते हैं, कभी अव्यक्त किन्तु होते अवश्य हैं। बाह्य अलंकार से वे अलंकार अभिप्रेत हैं जो काव्य में समन्वित होते हैं तथा अधिकतर स्फुट होते हैं। काव्य में आभ्यन्तर एवं बाह्य अलंकार वस्त्र में ताने–बाने की भाँति पिरोये रहते हैं।

आचार्य ने ग्यारह आभ्यन्तर एवं अठारह बाह्यालंकार गिनाये हैं जो निम्नानुसार हैं– आभ्यन्तर अलंकार– प्रेमा, आह्लाद, विषादन, विभीषिका, व्यङ्ग्य, कौतुक, जिजीविषा, अहङ्कार, स्मृति, साक्ष्य एवं उदात्त

बाह्यालंकार– (i) संघटनाश्रित – अन्यथाकरण, छाया, जाति और अतिशय,

(ii) विरोधमूलक – अपह्नुति, विरोध, असंगति, विषम, द्वन्द्व और तानव,

(iii) औपम्यमूलक – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दीपक,

(iv) वृत्तिमूलक – नादानुवृत्ति, यमक, श्लेष और लय

सभी अलंकारों के लक्षण देकर उनकी यथोचित विवेचना आचार्य ने की है।

काव्य विशेष का विमर्श करते हुये आचार्य ने काव्य के दो प्रकार कहे हैं– पाठ्य और दृश्य। पूर्व में श्रव्यकाव्य से अभिहित काव्य रूप को उन्होंने नकार दिया है। उनके अनुसार जब कवि स्वयं रचना का पाठ कर सुनाते एवं सहृदय उसे सुनकर उसका आस्वादन करते थे तब श्रव्य–काव्य संज्ञा उचित थी। अब मुद्रित पुस्तकों से पढ़ना ही मुख्य हो गया है अतः पाठ्य काव्य संज्ञा ही उचित है। इसके अतिरिक्त गोष्ठियों आदि में जो काव्यश्रवण होता है उसका आधार भी कवि द्वारा किया गया पाठ होता है अतः 'पाठ्य' संज्ञा ही ठीक है। काव्यविधा का विभाजन भाषा, अर्थचमत्कृति, कविदृष्टि, बन्ध, रीति एवं इन्द्रियों के आधार पर होता है। पद्यात्मक रूप में समग्रजीवन निरूपण 'महाकाव्य' कहलाता हैं। गीता, इतिहास, पुराण लोककथा आदि के भेद से यह अनेक प्रकार का होता है। जीवन के एकदेश का निरूपण करने वाला काव्य 'खण्ड काव्य' है। चेतनारूप समुद्र में भावरूपी तरंगों की उत्पत्ति एवं टकराव का व्यक्तीकरण जिस काव्य में हो वह 'लहरी' कहलाता है। उसी का ध्रुवक एवं अन्त्यानुप्रास युक्त रूप 'गीत' है। कथा प्रसंग, घटना, और इतिवृत्तविन्यास से अनिबद्ध काव्य 'मुक्तक' है। अन्त्यानुप्रास से रहित तथा छन्दशास्त्र से उन्मुक्त रचना 'मुक्तच्छन्द' है। द्विपादिका निबद्ध गीति को 'गजल' कहते है। दी गई पदावली की पूर्ति 'समस्या' है। विचार विशेष या भावविशेष का गद्य में निबंधन 'निबंध' है जीवन के एकदेश का निरूपण करने वाला आख्यान 'कथा' है। गद्यनिबद्ध महाकाव्यमयी कथा 'उपन्यास' है। किसी घटना का स्मरण कर उसका यथावत् आख्यान करना 'संस्मरण' है। शब्दों द्वारा घटना का व्यक्ति के चित्र के सदृश निर्मित गद्यबंध 'रेखाचित्र' है। किसी महापुरूष का प्रेरणादायी चरित्र निरूपण 'जीवनचरित' कहलाता है। जीवनचरितं का प्रकार विशेष 'आत्मकथा' है (जिसे कथानायक स्वयं लिखता है)। यात्रा का जैसा अनुभव किया वैसा वर्णन यात्रावृत्त है। दृश्यकाव्य दो प्रकार का है– नाटक एवं एकांकी।

इस प्रकार आचार्य श्री त्रिपाठी ने अपने ग्रंथ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्र' में काव्यविमर्श के सभी तत्वों का अनुशीलन किया और काव्य की नई परिभाषा तथा अलंकार की नई समझ एवं विभाजन के रूप में काव्यालोचना का अभिनव मानदंड निर्मित किया है।

लोक चिन्तक : आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

डॉ. ऋषभ भारद्वाज

आधुनिक संस्कृत साहित्य अपने रचनाशिल्प एवं भावबोध से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। प्राचीन मान्यताओं से जूझकर नवीन मूल्यों को स्थापित करने का स्वप्न आज के साहित्य सर्जक के लिये खुली चुनौती है, क्योकि परंपरागत उन्हीं नवरसों, आठ स्थायी भावों एवं तैंतीस व्याभिचारि भावों से नयी संवेदना के चित्र खींचना बहुत ही दुष्कर कार्य है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ऐसे ही संस्कृत–जगत् के मूर्धन्य हैं, जिन्होंने भारतीय परंपराओं को आत्मसात् कर आधुनिक जगत् के साथ नयी–नयी संवेदनाओं के चित्र खींचकर साहित्य में रख दिये हैं जो इस समय और आने वाले समय में संस्कृत पाठकों को एवं संस्कृत सर्जकों को नयी नयी दिशाएँ प्रशस्त करते रहेंगे।

पारम्परिक भारतीय विद्याओं को आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की दृष्टि से परिशीलन कर उसे प्रांजल भाषा में परिभाषित करने वाले आधुनिक चिन्तकों में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम अग्रगण्य है। वे हिन्दी, अंग्रेजी, और संस्कृत भाषाओं में समान अधिकार रखते है। सम्प्रति त्रिपाठी जी की तीनों भाषाओं में 250 पुस्तकें और 300 शोध–पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आपने संस्कृत साहित्य की गद्य, पद्य,नाटक,चम्पू, और कथा जैसी विधाओं पर मुक्त स्वर में कलम चलाकर रचनाएँ की हैं। डायरी, विमान काव्य जैसी नयी विधाओं को स्थापित कर आर्ष ऋषि का कर्तव्य निभाया है। आचार्य त्रिपाठी जी के पद्यकाव्यों में सन्धानम्, सम्प्लवः गीतधीवरम्, संसरणम् लहरीदशकम् उत्कृष्ट कोटि की रचनाऐं है। लहरीदशकम् में कवि ने संस्कृत की परंम्परा से हटकर भिन्न शैली में रचना की है। रोटी और गरीब जनता को आधार बनाकर कवि ने अपनी कविता में स्वयं की सहृदयता और जनवादी कवि होने का प्रमाण दिया है।

वसंतलहरी में कवि ने वसंत ऋतु का अनोखा चित्रण उपस्थापित किया है। पारंपरिक संस्कृत कविता में जिस प्रकार ऋतुओं के दर्शन मिलते है, उससे हटकर आचार्य त्रिपाठी ने पर्यावरण प्रदूषण और उसके विनाश से वसंत का आगमन किस तरह कठिन हो गया है, इस पर गंभीर चिन्तन किया है। उन्होंने वसंत के समकालीन जीवन से जुड़ी अनेक परिस्थितियों के संदर्भ लेकर स्वानुभव से कविता की रचना की। कवि कहता है कि इस आधुनिक काल में वसंत का आगमन उसी प्रकार कठिन हो गया है जिस प्रकार शब्द स्मृति तक आकर पुनः लीन हो जाते हैं और चित्त के किसी कोने में तड़पते रहते है, जिस प्रकार कविता का अंकुर कवि के मन उगता है और फिर नष्ट हो जाता है।

कवि के कहने का एक और तात्पर्य हो सकता है कि मनुष्य के पास इस दुनिया की भोग विलास की समस्त वस्तुएँ उपस्थित हैं किन्तु उसे आनन्द और शान्ति नहीं मिल पा रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन रूपी वसंत में आनन्द को प्राप्त करने का इच्छुक है, लेकिन दुनिया की भोग–वासनाएँ, इच्छाओं की चकाचौंध उसे आनन्द को उसी प्रकार प्राप्त नही करने देती जिस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण वसंत के आनन्द को प्राप्त नहीं करने देता है–

शब्दा यथा स्मृतिमुपेत्य पुनर्विलीना,
सीदन्ति चित्तजगति क्वचिदेककोणे।
उद्भिद्यतेऽथ च विनाशमुपैति सद्यः
काव्याङ्कुरः कविमनःसु तथा वसन्तः।।[1]

कवि वैदिककाल की **"मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृत"** की सूक्ति को आधार मानकर चैत और वैशाख महीनों में वसन्त को खोजने के लिए तत्पर रहता है, लेकिन मधुमास मधु की अभिव्यक्ति नहीं करता है और माध व भी सूखा बीत जाता है। तथापि वह निराश नहीं होता निरन्तर उसकी खोज में प्रयत्नशील रहता है और उसे कभी न कभी वसन्त की सुगन्ध मिल ही जाती है **"आ प्रातरानिशमहं बहुकृत्यसक्तो, जिघ्रामि गन्धमिव चास्य यदाकदाचित्।"** कवि इस वसंत के आनन्द को प्राप्त कर सन्तुष्ट नहीं होता। वह चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस वसंत के आनन्द को प्राप्त करे। परन्तु यह संभव नही है? क्योंकि पूरा समाज दूषित हो गया है। नगरों में विशाल भवनों का समूह अपनी सीमाओं को तोड़कर प्रदूषण फैलाने में जुटा हुआ है। न तो सरकार ध्यान दे रही है न ही राजनेताओं का ध्यान जा रहा

है। कवि इस विषय को लेकर गंभीर चिन्तित है–

विस्थाप्य पूर्वलसितं सहकारकुञ्जं,
स्वैरं प्रसर्पतितरां गुरुसौधपुञ्जः।
अन्तर्निगीय स परः प्रकृतं समस्तं,
कामं विजृम्भत इवातिशयोक्तिकाव्ये।।[2]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी यथार्थवादी कवि हैं। वे शब्दाडम्बर और झूठी प्रशंसा से कोशों दूर रहते हैं। वे जिस वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं और जिस सिद्धान्त को वे लोगों के लिए प्रेरणादायी मान लेते हैं उसी को अपनी कविता की पंक्तियों में पिरो देते हैं। कवि स्वयं वसंत के वर्णन में वर्तमान यथास्थिति को लिखता है कि जब मुझे कभी समय मिलता है तो घूमने निकलता हूँ तो मुझे रास्ते में दो–तीन पेड़ उसी तरह दिखते हैं जिस प्रकार एकान्त में खिन्न मन वाले सज्जन खड़े हों। समय की आग से झुलसे जीर्ण पर्णों की अपनी कथरी उतारकर खड़े वे वृक्ष कवि को उसी प्रकार दिख रहे हैं जैसे अस्ताचल पर स्थित सूर्य की रश्मियों के प्रवाह में व्रत धारण करने वाले मुनि खड़े हों। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय पेड़ों की स्थिति सज्जनों की तरह अत्यल्प हो गई है।

कवि कहता है कि पेड़ों की निरन्तर कटाई से वसन्त जाल में फंसी मकड़ी की तरह तडप रहा है, वह त्रिशंकु की तरह लटका हुआ है। भूमण्डल पर समर की तीक्ष्ण आग से भूमण्डल पर उसकी शोभा झुलस रही हैं। वसन्त के समय को विगत और विलीन देखकर पेड़ खिन्न होकर पत्ते गिर रहे हैं और भूमि पर झुलस रही है। बूढ़ा विन्ध्याचल अपने शिखरों की पातों में घिरा हुआ है। वह हड्डियों का ढाँचा रह गया हैं, वह रूग्ण हुये पिता की तरह ध्यान से पेड़ों की पातों रूपी गोद में वसन्त रूपी अपने दुबले पौत्र को दुलार रहा हैं। वाहनों के आने जाने से सड़कें आकुल व्याकुल है। दिशाओं के मुंह पेट्रोल की गन्ध से भर गये है, रास्ते पर चलते लोगों के मुँह धुएँ से घिर गये हैं, बार–बार प्रदूषित वायु को निगल रहे हैं। धूल से आकुल विविध वाहन वसन्त की शोभा को कसकर पीसते हुए निकलते जा रहे हैं। इस नव नागर सभ्यता ने वसन्त को पूर्ण नष्ट कर दिया है। तथापि कवि अपनी कविता की रचना कर उसे वचाने का प्रयास कर रहा है। कविता लिखने का उद्देश्य कवि का यही है कि लोग इसको पढ़कर ही वसंत को बचाने के लिए जागरूक हो जायें–

धूमावृतानि वदनानि तथाध्वगानां,
वायुं प्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूयः।
धूल्याकुलानि विविधानि च वाहनानि,
निष्पिष्य गाढमिह यान्ति वसन्तशोभाम्।।[3]

कवि कहता है कि वातावरण प्रदूषणों से वसंत की स्थिरता नहीं रही है और जब वसंत नहीं है तो उसमें प्रेम–प्रसंग की बातें ही कहाँ? अब तो वसन्त में केवल प्रेमालाप की कल्पनाएँ रह गयी हैं। न तो वसन्तोत्सव मनाये जा रहे हैं न ही गीत गाये जा रहे हैं, केवल कवि ही अपनी कविताओं में वसंत को खोजते नजर आ रहे हैं। दूसरी ओर नजर आ रहे हैं, वेलामोत्सुक छात्र जो थोड़ा बहुत वसंत के संदर्भ में पढ़कर विरहाग्नि में जल रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता में सनी नयी युवतियाँ चंचल होकर उसी के अंधानुकरण में लग गयी है और अपने जीवन को पतन की खाई में ढकेल रही हैं –

छात्राश्च भित्तिषु लिखन्ति निरर्गलानि।
वाक्यानि शिष्टजनवक्रदृशेक्षितानि।
तापं तदक्षरगतं किल भावयन्त्यः,
किञ्चित् भवन्ति चपलाश्चटुलाश्चिरण्ट्यः।।[4]

कवि के कहने का तात्पर्य है कि, हमारे राष्ट्र में जो पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण हो रहा है! वह हमारी नौजवान पीढी को हानिप्रद है। उससे बचकर हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप चलकर हमारे नौजवान आगे बढ़ें और राष्ट्र की प्रगति में अपना योगदान दें। इस प्रकार से कवि ने पर्यावरण प्रदूषण की परिस्थिति में आज के वसंत का वर्णन कर समाज की वास्तविकता रो परिचित कराने का भरसक प्रयाास किया है। साम्राज्यवाद और आतंकवाद के मध्य आज कवि को वसंतावतरण की संभावना नहीं दिखती है क्योंकि हमारे राष्ट्र का धनी वर्ग/अधिकारी वर्ग रिश्वत के रूपये पाकर प्रमाद की मंदिरा पीकर अधिकारों के सुख में मतवाला बनकर, अपने करणीय कार्य न करता हुआ और अकरणीय कार्य करता हुआ सदा वसन्त के राग में बिहार कर रहा है। सोचिए? वसंत का सुख सामान्य जन को कैसे प्राप्त होगा?

यहां वसंत के वर्णन में कवि ने युग की यथार्थता को इतना स्पष्ट कर दिया है जैसे आइने में अपना मुख स्वच्छ और साफ दिखाई देता है।

निदाघलहरी में कवि ने जनता की दुर्दशा, व आतंकवाद का मर्मस्पर्शी

चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि ने इसकी रचना गीष्मकाल में की है। उस समय की सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के ताप से जल रहे पशुओं, जानवरों और मनुष्यों की वेदना से कवि वेहद दुःखी है। उस समय के समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाओं को पढ़कर कवि अपने आपको संभाल नही पाता है और उनको अपनी कलम से लिपिबद्ध करने लगते लगता है। कवि कहता है कि जल के अभाव में भूख प्यास से भटक रही जनता मरूस्थल में प्यासे पशु के समान मर रही है। राजस्थान में प्यास से व्याकुल नौ बच्चे मर गये है और गुजरात में भूसा के बिना गायें, भैंसे, मर गयी हैं। इस विकट स्थिति से निपटने के लिए शासन को चिन्ता नहीं है, केवल धर्मात्मा और नेता अपना प्रभाव दिखाने के लिए इस प्रकार आह्वान कर रहे हैं–

गोमाता म्रियते लोका, बुसं देयं तृणादिकम्।
इत्याह्वयति धर्मात्मा नेताश्चैवानुभाववान्।।[5]

आचार्य त्रिपाठी जी विद्यार्थी जीवन से सागर में (सागर विश्व विद्यालय) में रहे हैं। उन्होंने सागर नगर की और पूरे बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति तथा लोक–जीवन को समझा है, उस पर उन्होंने गंभीर चिन्तन किया है। प्रस्तुत लहरी में कवि ने सागर नगर की और उसके आस–पास के गाँवों की गीष्मकाल की वास्तविक स्थिति का चित्र कैमरे की तरह खींचकर रख दिया है। सागर नगर की विरासत तालाब है जिसके नाम पर नगर का नाम सागर पड़ा है। आज उसी तालाब में भैंसें लोट रही हैं, सुअर गंदगी कर रहे हैं, पूरे नगर के लोग नालियों से अपनी गंदगी को उसमें उलेड़ रहे हैं, पानी की बूँद भी नहीं बची हैं। तब स्नान की कल्पना कैसे की जा सकती है? नेता बार–बार तालाब को शुद्ध कराने के लिए आश्वासन दे रहे हैं। नेताओं के झूठे आश्वासनों से तालाब की स्थिति नहीं सुधरेगी। इसकी यह दशा इन्हीं की करतूत है।

गाँवों की कोई गृहिणी अपने निजी पानी को बचाकर बगियों में ग्रीष्म के ताप से लौकी और कुम्हड़े की वेलों को सींचकर बचा रही है, क्योंकि वो फल देंगे। जब गृहिणी चुल्लु भर पानी से पौधे को सींचती है, तब पेड़ पर बैठा पक्षी पानी पीने के लिए उद्यत है। गृहिणी पक्षी को देखकर वहाँ से जाती है, पक्षी पानी पीने के लिए आता है तब तक पानी सूख जाता है, पक्षी निराश हो जाता है। हमें सोचना पड़ता है कि उस समय पक्षी को किस स्थिति से गुजरना पड़ा होगा? कवि के द्वारा कथित यह छोटी सी घटना हमें उस अतीत

के उस भारत को सोचने के लिए विवश करती है जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहती थीं, जिसे सोने की चिड़िया कहा जाता था। आज उसी देश में स्टेशनों पर महिलाओं की लंबी कतार होती है वे आपस में कलह कर रही होती हैं। कोई राहगीर नल पर अपनी प्यास बुझाने के लिए जाता है, लेकिन उसे भी निराशा हाथ लगती है। तब नगर का मुखिया महापौर मारुति पर सवार होकर आता है और जनता को आश्वासन देता है कि जल की व्यवस्था अतिशीघ्र हो जायेगी–

सद्यो जलव्यवस्था स्यादित्याश्वासयति प्रजाम्।
मारुतिं च समारुह्य महापौरः समागतः।।[6]

नेताओं के झूठे आश्वासन कवि को आक्रान्त करते हैं। तब कवि कह उठता है कि इस भीषण संकट में लोग दावानल के ताण्डव से जल रहे हैं। हजारों लोग मर रहे हैं पक्षी, पशु और जानवर अपने–अपने प्राण त्यागने को तत्पर हैं, यदि सरकार अब कुँआ खोदती है तो उससे क्या होगा? क्योंकि **''अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत''** नेताओं के झूठे आश्वासन और उनके राजनैतिक क्रियाकलापों से कवि असन्तुष्ट है। वह कहता है वास्तव में जो परंपरा में कहा जाता है कि **''बुभुक्षितः किं न करोति पापम्''** अर्थात् भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं करता है'' यह गलत है। सत्य तो यह है कि जिनके पेट भरे हैं, वे कौन से पाप नहीं करते हैं ?

प्रावृडलहरी में कवि ने वर्षाऋतु के आगमन का मनोहारी चित्रण किया है। ग्रीष्म के ताण्डव से व्याकुल लोग इसी प्रतीक्षा में थे कि जब वर्षा आएगी और हम सबको मातृवत जल देगी जिससे हम तृप्त होंगे। वर्षा को माता की उपमा देना कवि की अपनी प्रतिभा है–

समायाता इमा वर्षाः श्यामाग्रैः स्वपयोधरैः।
पापयन्त्यः पयस्तूर्ण प्रजाभ्यो मातृवत्सलाः।।[7]

कवि ने अपनी प्रतिभा से, प्रकृति का मानवीकरण कर काव्य को चारू से चारूतर बना दिया है। कवि की कला देखने योग्य है–''वर्षा आ गई है और अपने विन्ध्य शिशुओं को मेघों के हाथों से चुल्लू बनाकर स्नान करा रही है–

जननी द्यौः सुखासीनमिमं विन्ध्यं शिशुं मुदा।
मेघहस्तैश्चुलुकितैः स्नपयत्यत्र मोदितम्।।[8]

वर्षा ने पृथ्वी की कायापलट कर दी है। विभिन्न प्रकार के फूलों से सुसज्जित नीली साड़ी पहने हुये सी पृथ्वी नव–वधु की तरह शोभित हो रही है। पेड़ों पर कोपलें आ गई हैं, विन्ध्याचल पुनः रोमांचित हो गया है। छत्तीसगढ़ के क्षेत्र में स्त्रियाँ धान को रोपने में उद्यत हो गई हैं। वर्षा बार–बार होने से धान के छोटे–छोटे पौधे उखड़ जाते हैं तदन्तर लोग दूसरे पौधों को उस प्रकार रोप रहे हैं जिस प्रकार निर्वाचन में जनता शासन करने वाले नेताओं को उखाड़ कर दूसरे लोगों को सत्ता पर बैठाती है।

कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि इस लोकतन्त्र शासन में जिन नेताओं को जनता सत्ता पर बैठाती है, वही नेता जनता से मुंह मोड़ कर शासन के पैसों से मनमानी करते हैं और आराम फरमाते हैं। तब जनता उनसे असन्तुष्ट होकर उनको उखाड़ फेंकती है। क्या पद और सत्ता कभी स्थायी होते है ?

धरित्रीदर्शनलहरी में कवि ने, जर्मनी की विमान यात्रा तथा उससे होने वाले पृथ्वी के मनोरम दर्शन का आलौकिक वर्णन किया है। कवि ने भारतीय संस्कृति के मूल सूत्र **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** को पूर्णतः धारण किया है। वह सम्पूर्ण पृथ्वी को देखने का इच्छुक है। उसके प्रति कवि को अगाध प्रेम है, स्वयं कवि लिखता है–

कश्चिद् यात्रापरिगतरुचिर्भारते पान्थ आसीद्
विश्वस्मिन् यो भ्रमणरसिको द्रष्टुमुत्को धरित्रीम्।
प्राच्याधीतो कलितरुचितो दिष्टयोगं नियोगं
लेभे गन्तुं प्रथितसुभगं प्राच्यशर्मण्यदेशम्।।[9]

कवि अपनी यात्रा को सागर से ही काव्य में निबद्ध करता है। जब वह दिल्ली के हवाई अड्डे पर पहुँचता है, तब वहाँ की वैभवशीलता को देखकर स्तब्ध रह जाता है। तदन्तर विमान में बैठकर यात्रा को प्रारम्भ करता है। विमान के उड़ने का कवि ने कितना मनोहारी और आलंकारिक वर्णन किया है। वह देखने योग्य है–

रिङ्गन् रिङ्गन वलयपरिधौ भूमिभागे विमानः
स्थानात् तस्मादुपरि सहसैवोत्थितपश्चान्तरिक्षे।
क्रान्त्वा भूमिं प्रगुणितरयो भूय एवोन्मुखः खे,
श्यामः पादौ बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।[10]

कवि ने कालिदास के मेघदूत से अंतिम पंक्ति को लेकर विमान के उड़ने का अपूर्व सौन्दर्य प्रस्तुत किया है। विमान का पहले जमीन पर धीरे ध ीरे चलना फिर आकाश में उड़ना और बेग का बढ़ना इत्यादि विमान की स्वाभाविक गति के वर्णन होने से काव्य अत्यंत मनोहारी बन गया है। कवि विमान में चलते–चलते पृथ्वी के नाना रूपों को देखता है और अपनी कल्पनाओं से उसे कविता में पिरोता जाता है। बर्फ की चादर ओड़े पृथ्वी चाँदी की तरह शुभ्र कांति से शोभायान देह पर शृङ्गार के लिए रेखाओं से की गई रचना सी लगती है।

जनतालहरी में कवि ने उस दीन दुखी जनता की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जिनपर हमारा धनी एवं अधिकारी वर्ग निःसंकोच शोषण में लगा है। कवि के कविता लिखने का उद्‌देश्य यही है कि हमारी गरीब जनता जागरूक हो और भ्रष्ट तन्त्र को समाप्त करे। मंत्री से लेकर सन्त्री तक जो शासन कर्ता है और उनमें जो भ्रष्टाचार, बेईमानी व्याप्त है उसको समूल नष्ट करने के लिए जनता उद्यत होकर आन्दोलन करे।

कवि के लिए जनता जनार्दन का रूप है। वह कहता है कि कोई भक्ति परायण होकर देवताओं की स्तुति करे, कोई चाटुकारिता में निरत होकर दुष्ट नेताओं की और धनी व्यक्तियों की स्तुति करे। मुझे तो योगक्षेम काविधान करने वाली राष्ट्र की जनता ही इष्ट है जिसके श्रम के बल पर इस दुनिया की व्यवस्थाएँ चल रही है, क्योंकि यह जनता उस नारायण का सूक्ष्मांश है। भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्‌गीता में कहा है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्‌देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।[11]

यदि जन–जन के हृदय में स्थित नारायण को नहीं जाना, उसकी पीड़ा को नहीं समझा, तो हमारे शास्त्रों का अध्ययन, पुराणों की धर्मचर्चा से क्या लाभ?

शास्त्रस्याध्ययनं वृथाऽधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा
वैफल्यं तु गता कथाऽपि सकला पौराणिकी शाश्वती।
नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितो
नो ज्ञातो यदि नो कृतोऽस्ति जनतोद्‌वोधाय यत्नोऽथवा।।[12]

इस पद्य में कवि का गीता और उपनिषदों का गहन अध्ययन स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्वामी विवेकानंद और महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन से कवि बहुत ही प्रभावित दिखलाई पड़ता है।

हमारी दीन जनता अहर्निश परिश्रम करके राष्ट्र के विकास में महनीय योगदान दे रही है। उसी जनता को गगनचुम्बी इमारतें हटाने में लगी हैं, दुर्नीति से सुलगाई आग से उसे जलाया जा रहा है तो दूसरी ओर वह भू स्वामियों के द्वारा कुदालों से उखाड़ी जा रही है। यह कैसा लोकतन्त्र शासन है? और यह कैसा हमारा राष्ट्र का विकास है? जिसमें देश आगे बढ़ रहा है जनता हर तरीके से पीछे खींची जा रही है। सरकार की दुर्नीति पर कवि का कड़ा प्रहार द्रष्टव्य है–

गच्छति पुरतो देशः पुनरिह पश्चात् प्रधृष्यते जनता
कोऽयं समाजवादः प्रगतिर्वा कीदृशी सेयम्।।[13]

भोली–भाली जनता सुख का नाम नहीं जानती है। निरन्तर खेतों में श्रम करते हुए अपने पसीने की बूदों से स्नान करके, खेत रूपी यज्ञ में सदैव कर्म और मेहनत की हवि करके अन्न उत्पन्न करती है, हम उसी अन्न को खाकर उस पर अत्याचार कर रहे है, वह चक्की के दो पाटों के बीच डाले गये अनाज की तरह पिस रही हैं। भारतीय दीन जनता की दशा उस गाय की तरह है जो बछिया भूखी होने पर भी माँ निचोड़ कर दुही जाता है और बूंढी होने पर बधिकों द्वारा बूचड़ खाने में ले जायी जाती है तथा निर्दयता पूर्वक मारी जाती है। भारतीय जनता की गाय से तुलना करना कवि का अभिनव चिन्तन है–

वत्सत्वेऽति बुभुक्षितां स्वजननीं दूरस्थितामीक्षते
याऽऽपीनं बिनिपीड्य दोहनपरैर्दोदुह्यते यौवने।
वार्धक्य बहुखेदिता च वधिकैः सूनागृहं नीयते,
सैषा गौरिव भारतीयजनता व्याहन्यते निर्दयम्।।[14]

कवि ने सच्चे अर्थ में जनता की वेदना को समझा है। मैं समझता हूँ कि जैसा चिन्तन भारतीय जनता का आचार्य त्रिपाठी जी ने किया है वैसा आज तक कोई कवि नहीं कर सका होगा। कवि बेहद आक्रान्त है उन धर्म प्रचारकों पर, जो मिथ्या धर्म का प्रचार कर जनता को डस रहे हैं। कवि उन

पर अपना क्रोध प्रकट कर रहा है जो नेता खादी का कुर्ता पहनकर बगुले की तरह, जनता की सेवा का व्रत लेकर अपनी और अपने परिजनों की सेवा में लगे रहते हैं। नेताओं और ढोंगी धर्म प्रचारकों पर कवि का तीखा कटाक्ष कितना औचित्यपूर्ण है पाठक स्वयं निर्णय कर लेंगे–

आत्मानं तु निषेवते स जनतासेवाव्रतं धारय–
न्नुच्चैः प्राप्य पदं च पश्यति जनं न्यक्कारसार्भं भृशम्।
शुभ्रः खद्दरवस्त्रमण्डिततनुस्तृष्णां तु नो मुञ्चति,
काषायं न जहाति चेतसि धृतं काषायकन्थो यथा।।[15]

रोटिका लहरी में कवि ने "रोटी" पर कविता लिखकर अनोखे काव्य की रचना की है। ऐसी कविता न तो प्राचीन कवियों द्वारा लिखी गयी न ही आध् ाुनिक साहित्यकारों द्वारा। आचार्य त्रिपाठी जी के काव्य की मूलभूत विशेषता यही है कि वे उस विषय पर अपनी कलम चलाते हैं जिस पर अभी तक काव्य नही लिखे गये है और जिनकी इस आधुनिक युग में जनता को, समाज को, और सम्पूर्ण राष्ट्र को आवश्यकता है। कवि यथार्थवादी है। वह रोटी जैसा विषय लेकर काव्य की रचना करता है, क्योंकि रोटी ही इस दृश्यमान जगत का कारण है। यदि आधुनिक संस्कृत चिन्तक यह कहते हैं कि रोटी पर कविता लिखने की क्या आवश्यकता है? प्रत्युत्तर में कवि कहता है कि तुम जिस बलबूते पर यह कह रहे हो, वह रोटी खाकर ही कह रहे हो। यदि तुमने रोटी नहीं खाई होती है तो यह कहने का समार्थ्य ही कैसे होता ?

रोटिका काव्यवर्ण्यं कथं शक्यते
कर्तुमित्येष यो भाषते दूषकः।
धिक्कृतिं रोटिकाया बलेनैव स,
प्रेरयत्येव सत्यं तथा नेक्षते।।[16]

प्रस्तुत लहरी में कवि ने "अन्नं वै ब्रह्म" और "रसों वै सः" जैसे वेदान्त वचनों से प्रेरणा लेकर रोटी के रूप सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन किया है। कवि कहता है कि शंख की तरह शुभ्र और पाण्डुर छवि वाली भाप से भरने के कारण जो फूलकर चन्द्रमा की तरह गोल दिखती है भला वह खाने के लिए किसे आकर्षित नहीं करेगी? जो मोती की तरह सुशोभित होती है जिसे खाने

पर नित्य नये–नये स्वाद मिलते रहते हैं। सुन्दरी के कपोल पर सुशोभित तिल की छवि से रोटी पर पड़ी चीटियों से तुलना करना कवि का नव चिन्तन प्रशंसनीय है।

कवि रोटी के महत्त्व को प्रकट करता हुआ यो कहता है कि वह महाश्वेता इस जगत् का परिणाम है, वह सृष्टि की आद्यशक्ति है।यदि भोजन की थाली में रोटी न हो, तो व्यंजनों की शाही राशि और सब्जियों की सम्भार व्यर्थ हो जाती है। संसार की बगिया तभी फूली रहती है, सुन्दरी की देह पर साड़ी तभी तक शोभित हाती है जब तक पेट में रोटी होती है। दुनिया के भोग विलास की सभी सुविधाएँ मनुष्य को प्राप्त हों। यदि उसे दो समय सुख से रोटी न मिले तो उस वैभव से क्या लाभ है? कवि प्रवचनकर्ताओं और दार्शनिकों पर चुटकी लेता हुआ कहता है जो पण्डित रोटी की प्रशस्ति को व्यर्थ कहकर प्रवचन से धनसंग्रह में जुटे हैं, उनकी तोंद में रोटी ही इस कार्य के लिए प्रेरणा दे रही है। नैयायिकों की प्रभा, मीमांसकों का अर्थवाद तथा वेदान्तिकों के ब्रह्म के मूल में रोटी ही है। चाहे किसी काव्य गोष्टी का आयोजन हो या मेले का उत्सव या फिर कोई सामाजिक समारोह; उसका मूल रोटी ही है। सचमुच इस दुनिया में लोग रोटी के लिए क्या–क्या नहीं करते हैं और क्या नही सहते हैं। इस पद्य में अनुप्रास के सौन्दर्य ने चार चाँद लगा दिये हैं, काव्य–माधुर्य की अनन्त वृद्धि हुई है –

किं न लालप्यते रोटिकायाः कृते,
कि न तातप्यते रोटिकायाः कृते।
किं न सासह्यते किं न मोमुह्यते,
किं न शोश्रूयते किं न बोभूयते।।[17]

कवि ने रोटी पर काव्य लिखकर युग के सत्य का यथार्थ निरूपण किया है। हमारे इस विशाल राष्ट्र में इस समय लाखों लोग रोटी के अभाव में मर रहे हैं। अतः रोटी पर काव्य लिखने की अति आवश्यकता है। निश्चित ही यह कविता जन–जन को लाभकारी सिद्ध होगी।

नर्मदा लहरी में कवि ने नर्मदा नदी को देवी के स्वरूप मे प्रकट करते हुए उसे चवुर्विध पुरूषार्थ और अनेक सिद्धियों को देने वाला बताया है। आचार्य शङ्कर जैसे दिग्गज भक्त ने आपकी गोद में बैठकर सिद्धियों को

प्राप्त किया और काव्यों का वितान रचा। राजा सहस्रार्जुन कार्तिकेय की रम्य नगरी महिष्मती आपकी गोद में बसी थी। द्यूत कीड़ा में राज्य से हटाये गये पाण्डवों ने आपके तट पर वनवास बिताया था। आपने मध्यप्रदेश की धरती पर प्रकट होकर गुजरात और महाराष्ट्र को समृद्ध किया। गाँवों–गाँवों से बहकर तुमने लोगों को धर्म और नीति की शिक्षा दीक्षा देकर उनको मोक्ष का मार्ग सुलभ किया है। आपकी परमकृपा से यह राष्ट्र अभिवृद्धि कर रहा है।

इस प्रकार कवि ने नर्मदा की उत्पत्ति से विलय तक के पौराणिक आख्यानों तथा पुरातात्त्विक गवेषणाओं का जगह–जगह संकेत कर उसके महत्त्व को प्रदर्शित किया है और साथ उसके प्रदूषण पर गंभीर चिन्ता व्यक्त की है क्योंकि देवी स्वरूपा प्रसिद्ध नदियों के साथ हमारा राष्ट्र जबरदस्त अन्याय कर रहा है। इनकी शुद्धि हेतु शासन को और प्रत्येक व्यक्ति को प्रयास करना चाहिए।

मृत्तिकालहरी में कवि ने मिट्टी की महिमा का अपूर्व वर्णन किया है। मिट्टी एक ऐसी दिव्य शाश्वत वस्तु है जिससे और जिसके ऊपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना होती है। उसका एक रूप है लेकिन वह इस जगत् को नाना रूपों में प्रकट करती है। यह मिट्टी ही शाश्वत है जो बनती है मिटती है तथापि मिट्टी ही रहती है और उसके द्वारा निर्मित यह दृश्यमान जगत् उसी की तरह निर्मित होता है और पूर्णतः नष्ट हो जाता है–

प्रजायते प्रवर्धते प्रभिद्यते प्रलीयते,
समस्तवस्तुजातमत्र भङ्गुरे प्रपञ्चके।
इयं न भिद्यते न वा प्रहीयते न लीयते,
विनाशमेति नैव वा समस्तवस्तुषु स्थिता।।[18]

इस लहरी के अंतिम पद्यों में कवि ने मिट्टी की शाश्वतता को स्वीकारते हुए स्वयं को उस शाश्वत सत्ता का अंश माना है। अतः कवि न तो वैभव की कामना करता है, न ही पुर्नजन्म की। कवि न तो ऊँचे पद प्राप्त करने का इच्छुक है, न ही वह अपनी वाहवाही के लिए लोगों के चरण चूमता है। वह तो निष्कपट कहता है कि मेरी उन्नति और जीवन के विकास में सबसे बड़ा योगदान इसी मिट्टी का है जिस पर मैं दोनों पाँव रखे खड़ा हूँ। अद्यापिलहरी में कवि ने सभी पद्य में "अद्यापि" शब्द की आवृत्ति कर विभिन्न

संदर्भों के आधार पर संसार की सारी विसंगतियों और निराशाओं के बीच जीवन में आस्था की खोज की है। कवि कहता है भले वह हमारी संस्कृति, धर्म और परंपराएँ ह्रास हो गयी हैं लेकिन आज भी आशा और विश्वास बचे हुये हैं जो कवियों को काव्य लिखने के लिए, दार्शनिकों को चिन्तन करने के लिए और राष्ट्र सेवी व्यक्तियों को राष्ट्र रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं। कुल्हाड़ियों की धार से काटा जाता हुआ यह जीवन रूपी वृक्ष अभी भी सहज और फैलती शाखाओं से उग रहा है और विकसित हो रहा है। यह इस सृष्टि का चमत्कार ही है–

आहन्यमान इव विघ्नशतौपलैस्तै–
रुच्छिद्यमान इव दुःखकुठारधारैः।
रोहत्यसौ विकसति प्रचितैः स्वशाखै–
रूर्ध्वं प्रयाति खलु जीवनवृक्ष एषः।।[19]

प्रस्थान लहरी में कवि ने यात्रा के समय उठने वाली भावतरंगों को रूपायित किया है। यात्रा में जब व्यक्ति जाता है और पुनः घर आने के लिए कितना लालायित रहता है इस पर कवि ने अपनी स्वानुभूति को कविता में निबद्ध किया है। **"प्रस्थानवेला समुपागतेयं"** इस पंक्ति को प्रत्येक पद्य पर दुहराया गया है। प्रस्थान के प्रसंग में महाप्रस्थान के भाव को कवि ने गंभीरता से समावेश किया है। कवि कहता है कि प्रस्थान का समय आ गया है अब शोक उचित नहीं है, आँसुओं की धारा को बंद करो और शोक से पार उतर जाओ। यहाँ कवि के कहने का दूसरा तात्पर्य यह है कि अब जाने का समय आ गया तो शोक किस बात का ? क्योंकि जगत से जाना तो प्रकृति का नियम है। इन दोनों संदर्भों का मिला जुला सौन्दर्य जीवन के शास्वत सत्य का सन्धान करता है –

प्रस्थानबेला समुपागतेयं,
शोको न युक्तोऽस्ति तथापि तेऽयम्।
नेयं न दुःखान्नयनेऽश्रुधारं,
सारं च सारं तर शोकधारम्।।[20]

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, कवि ने अपनी

कविता के माध्यम से इस युग के यथार्थ सत्य का निरूपण किया है। इस वर्णन में कवि संस्कृति के ह्रास पर, जनता की दीन दशा पर तथा नेताओं द्वारा कहे जाने वाले झूठे आवश्वासनों से आहत है। वह शोक व्यक्त करते हुए, उन पर तीखे प्रहार करते हुए संस्कृत काव्यधारा को यथार्थ के धरातल पर स्थापित करता है। नई दृष्टि से लिखा गया यह काव्य निश्चित ही संस्कृत सर्जकों को प्रेरणा स्त्रोत बना रहेगा। यह काव्य अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण है, ज्ञान विज्ञान से ओत प्रोत है इसमें कई दृष्टियों से विमर्श, अध्ययन और शोध ा होने की आवश्यकता है।

स्मितरेखा (गद्यसाहित्य)

आचार्य त्रिपाठी जी के गद्य साहित्य में विक्रमचरित, उपाख्यानमालिका, अभिनवशुकसारिका, अन्यच्च, ताण्डवम्, अनुभववीथी, आत्मनाऽऽत्मानम् और स्मितरेखा आदि ग्रंन्थों के नाम उल्लेखनीय है।

इनमें स्मितरेखा कथा संग्रह लोकचिन्तन के नये–नये सोपान उद्घाटित करता है। इसमें पाँच संवदेनशील कथाओं का संग्रह है। प्रथम कथा रूप्ययकम्" एक रूपया में कवि ने अपनी वस यात्रा में एक वृद्ध की दीन–दशा का सजीव चित्र खींचा। एक वृद्ध है जिसके पास एक रूपया कम होने से बस का कण्डेक्टर और ड्राइवर उसे बस से उतार देते हैं। पूरा जन समूह इस परिदृश्य को आँखों पर पट्टी बाँधकर धृतराष्ट्र की तरह देख रहा है कवि इससे आहत है, दुःखी है और आक्रान्त भी। वह कहता है कि धन्य रे मानव! क्या मानवता पूर्णरूप से मर गयी है?

दूसरी कथा **"अभिनन्दनम्"** है। इस कथा में कवि ने शिक्षा–जगत में शिक्षकों के अन्दर सम्मान और अभिनन्दन की लोलुप्ता पर कड़ी फटकार लगायी है। आज के शिक्षक अपने कुछ शिष्यों को इकट्ठा कर अभिनन्दन ग्रन्थ छपवाकर अपना कद ऊँचा करना चाहते हैं। वह हमारी संस्कृति के आध ार स्तम्भ गुरू–शिष्य परंपरा पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती हैं। वह न आज शिष्य है न ही गुरु। इससे कवि व्यथित है कि हमारी पवित्र गुरु–शिष्य परंपरा अब बच पाती है कि नहीं ?

तीसरी कथा है **"वायवाः"** यह अत्यंत रोचक कथा है इसमें एक पीएच. डी. छात्र की मौखिक परीक्षा का यथार्थ निरूपण है। इस कथा में कवि ने

साहित्य जगत के दूषित वातावरण, मूलरूप से संस्कृत के संसार पर गंभीर चिन्ता व्यक्त की है। जो हम सभी पाठकों को एक नई चेतना देती है।

चतुर्थकथा **"परावर्तनम्"** है। कथा प्राचीन मठों और आश्रमों की व्यवस्था पर केन्द्रित है। यह आश्रम भी समान्य समाज की तरह ही रह गये है, वहाँ राग–द्वेष, पदों की लिप्सा ने किसी मठाधीश को नही छोड़ा है। सभी कहीं न कहीं अपने स्वार्थ की अग्नि में दूसरो के विनाश की आहुतियाँ देकर धधक रहे है। उन्हें समाज के विकास और व्यवस्था की चिन्ता नहीं है। पॉचवी कथा **"करूणा"** में थाई देश की संस्कृति का चित्र खीचा गया है। इसमें बौद्ध मठों, की अराजकता और बौद्ध भिक्षुओं के पतन का वर्णन किया गया है कथा में भिक्षुओं के जन–जीवन, आचार–व्यवहार पर कवि ने बड़ी पैनी नजर डालकर अन्वेषण किया है। कथाकार ने स्मित–रेखा की पांचों कथाओं में लोक–दृष्टि को केन्द्र में रखा है जो मानव जाति को सजग करती है।

प्रेक्षणसप्तकम् (नाटक)

नाट्यविद् आचार्य त्रिपाठी जी की प्रेमपीयूषम, तण्डुलप्रस्थीयम्, सुशील नाटकम्, भुवनदीप और प्रेक्षणसप्तकम् महत्त्वपूर्ण नाट्य रचनाएँ है। इनमें प्रेक्षण सप्तकम् नाट्यशास्त्र के लक्षणानुसार दृश्यकाव्य के अवान्तर भेदों में अन्यतम विधा है। जिसे इस समय नुक्कड़ नाटक की संज्ञा दी जाने लगी है। नाट्य शास्त्र के पुरोधा आचार्य त्रिपाठी जी ने भी प्रेक्षणसप्तकम् की रचना कर इस विधा को समृद्ध किया। इसमें सात प्रेक्षणकों का संग्रह है। "सोम प्रेक्षणकम्" प्रथम प्रेक्षणक है। इसमें नारी की सामाजिक दुरवस्था का यथार्थ निरूपण किया गया है। प्रेक्षणक की प्रमुख पात्र विमला के जीवन को आध ार बनाकर, कहा इक्कीसवी सदी की शिक्षित नारी भी अभिशाप से बच नहीं रही है। अभी समाज को शिक्षित होने की आवश्यकता है। नाट्यकार ने भारतीय नारी की सहनशीलता त्याग तथा प्रेम के आदर्श को बहुत अच्छे ढंग से उपस्थित किया है। यह दोनों स्थितियाँ कवि के लोक–चिन्तन को उद्घाटित करती है। मेघसंदेशम् दूसरा प्रेक्षणक है। इस पर महाकवि कालिदास के मेघदूत की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। तथापि प्रेक्षणक में समसामयिक समस्याओं पर नई दृष्टि डाली गई है। नाटककार ने पर्यावरण के बिगड़ते असन्तुलन पर गंभीर चिन्ता व्यक्त की है। धीवरशाकुन्तलम् तीसरा प्रेक्षणक है। यह अभिज्ञानशकुन्तलम् की कथावस्तु पर आधारित है। इसमें ध

ीवर को नायक के रूप में एवं उसकी प्रेमिका को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भोले–भाले मछवारे के प्रति धूर्त राजपुरूषों के अवांक्षित व्यवहार के माध्यम से आज के राजनेताओं–मालगुजारों को समाज विरोधी क्रियाकलापों का अनूठा चित्र उपस्थित किया गया है। मुक्ति चौथा प्रेक्षणक है। यह हास्यपूर्ण और मनोहारी है। इसमें उपनिषदों में विमृष्ट मुक्ति से कुछ हटकर मानव जीवन को नवीन दर्शन का उपदेश देता है। नाटकाकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि परिवार एवं समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निवर्हन करना मानव का अन्तिम पुरुषार्थ है। मशकधानी भी हास्यपूर्ण प्रेक्षणक है। इसमें कवि ने मच्छरों को आधार बनाकर धनाढ्यों, राजनेताओं तथा सामन्तों पर करार प्रहार किया है। समाज के दीन, हीन, गरीब, असहाय लोगों को धनीवर्ग मदान्ध होकर किस तरह शोषण कर रहे है। उनको कैसे इस धनीवर्ग से बचाया जा सकता है इसके लिए कवि व्यथित है। "गणेश पूजनम्" छटवा प्रेक्षकणक है। इस समाज में व्यप्त भ्रष्टाचार को समाज के सामने उजागर करने में कवि का प्रयास सफल रहा है। प्रजातंत्र शासन की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए भरसक प्रयास किया है। गणेश जी के नाम पर चंदा इकट्ठा कर धर्म ने नाम पर व्यापार करते हैं उन पर कवि का करार प्रहार है। **प्रतीक्षा** अंतिम प्रेक्षणक है। यह मध्यवर्गीय परिवार की दशा–दिशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। मध्यमवर्गीय परिवारों की सामाजिक आर्थिक और शैक्षणिक समस्याओं पर कवि ने गंभीर चिन्तन किया है। उक्त संक्षिप्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सातों प्रेक्षणक अपने–अपने विषयों को गंभीरता से विवेचित करते है। वह पूरी मानव जाति के प्रेरणास्प्रद हैं।

टिप्पणी–आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी– लोक चिन्तक" प्रकाशित शोध–पत्र लहरीदशम् में समाज चित्रण का संशोधित स्वरूप है। लहरीदशकम् में समाज चित्रण शोध–पत्र ज्ञानायनी पत्रिका में आचार्य राधावल्ल्भ त्रिपाठी विशेषांक (वर्ष–5, अंक–2–3, सन्–2007) में प्रकाशित हुआ था। उसमें आचार्य त्रिपाठी जी के चिन्तन का आधार लहरीदशमकम् था। इस शोध–पत्र में लहरीदशकम् के साथ, स्मित रेखा और प्रेक्षणसप्तकम् को लिया गया है।

संदर्भ

1. वसन्तलहरी–1
2. वसन्तलहरी–6
3. वसन्तलहरी–18
4. वसन्तलहरी–35
5. निदाघलहरी–8
6. निदाघलहरी–18
7. प्रावृड्लहरी–1
8. प्रावृड्लहरी–3
9. धरित्रीलहरी–1
10. धरित्रीलहरी–7
11. श्रीमद्भगवद्गीता–18/61
12. जनतालहरी–4
13. जनतालहरी–25
14. जनतालहरी–27
15. जनतालहरी–35
16. रोटिकालहरी–41
17. रोटिकालहरी–29
18. मृत्तिकालहरी–13
29. अद्यपिलहरी–50
20. प्रस्थानलहरी–01

संस्कृत–विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)

भारतीय आख्यान परम्परा एवं उपाख्यानमालिका

डॉ. प्रतिभा शर्मा

संस्कृत वाड्मय में आख्यान एवं उपाख्यानों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद में आख्यानों का बहुत महत्व है। इनको ही परकालीन, इतिहास, काव्य, महाकाव्य आख्यान ग्रंथ और नाटकों का बीजरूप माना जाता है। जो बाते बीजरूप में ऋग्वेद में प्राप्त है वे ही ब्राह्मण ग्रंथों आदि में सुपुष्पित एवं फलित वृक्ष के रूप में विकसित होने लगी हैं। इनका ही रामायण, महाभारत और पुराणों के युग में अत्यन्त विस्तार हो गया है। इस दृष्टि से आख्यान तत्त्व ऋग्वेद का महत्वपूर्ण विषय है।

आख्यान एवं उपाख्यानों के विषय में ''चौमासा'' पत्रिका में विभिन्न विद्वानों ने भी अपने-अपने आलेख प्रस्तुत किये है जिनमें भगवती लाल पुरोहित, डॉ. राजमति दिवाकर आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी आदि विद्वान प्रमुख हैं।

आख्यान पद की व्याकरणिक व्युत्परित है- आङ्.+ख्या+ल्युट् (अन)। ''आ'' समग्रता का सूचक उपसर्ग है। ''ख्या'' प्रकथने धातु है जिसका अर्थ है - कहना या कथन करना। ल्युट (अन्) भाववाची प्रत्यय है। इस प्रकार जो समग्रता या विशिष्टतापूर्वक कथन किया जाये वह आख्यान है। पाणिनी ने प्रतिवचन (उत्तर) के अर्थ में आख्यान का उल्लेख किया है -

''अनन्व्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः'' पुरानी कथा करने की पद्धति यही रही है कि कोई श्रोता प्रश्नात्मक जिज्ञासा करे और वक्ता उत्तर देते हुये कथा कहें इसीलिये पाणिनी ने आख्यान को उत्तर के अर्थ में प्रयुक्त किया है। कोशकारो में श्री तारानाथ जी ने अपने वाचस्पव्यम् में एवं वामन शिवराम आप्टे जी ने अपने कोशग्रंथ में आख्यान को ''पुरावन्तकथन'' कहा है तथा इसके प्रमाण में आचार्य विश्वनाथ द्वारा नाट्यालंकारों में परिगणित आख्यान

के "लक्षण–आख्यान पूर्ववृतोक्तिः" को उद्धृत किया है। आख्यान को परिभाषित कर देने के लिये आचार्य विश्वनाथ का महाकाव्य लक्षण के प्रसंग में यह कथन विशेष महत्व रखता है–

"नामास्य सर्गोपादेयकथयया सर्ग नाम तु।

आस्मिन्नर्षे पुनः सर्गाः भवन्त्याख्यान संशकाः।।

आख्यान का अर्थ है – कहना या कथा कथन। "आख्यान और कथा एक ही है" आख्यान का लघुरूप उपाख्यान होता है। रामायण और महाभारत को आख्यान कहा गया है। आख्यान के भीतर उपाख्यान होते है इनमें कोई उपाख्यान का विस्तार लेकर स्वतंत्र बनकर फिर से आख्यान हो जाता है। महाभारत के आख्यान में प्रसंगवश उपाख्यान जुड़ते जाते है। आख्यान और उपाख्यान में पारस्परिक परिवर्तनीयता होती है। कभी कोई उपाख्यान आख्यान बन जाता है कोई आख्यान उपाख्यान। राम की कथा रामायण के रूप में आख्यान है जब वही महाभारत में प्रसंगवश सुनाई जाती है तो रामोपाख्यान कहलाती है। उपाख्यान स्वतंत्र रूप से गायन, पाठन और अभिनय के साथ प्रस्तुत किये जाते है तो ये आख्यान बनते जाते है। महाभारत में नल, सावित्री, शकुन्तला आदि संस्कृत सर्जको को नई–नई दिशाएँ प्रशस्त करते रहेगें।

ऋग्वेद में पुरूरवा, सुपर्ण एवं मैत्रावरूण आदि आख्यान मिलते है। मनुस्मृति में पितृश्राद्ध के अवसर पर किये जाने वाले कार्यो के विवरण में लिखा है –

"स्वाध्यायः श्रावयेत् पित्रये धर्मशास्त्राणि चैव हि।

आख्यानानीतिहासाशंच पुराणानि खिलानिंच।।"

उक्त श्लोक की टीका करते हुये कुल्लूकभट्ट" मन्वर्थमुक्तावली में लिखते हैं –

"आख्यानानि सौपर्ण मैत्रावरुणादीनि।

काव्यशास्त्रीय आचार्य भामह ने गद्यकाव्य के दो भेद किये हैं –कथा और आख्यायिका। पहले की कथा कल्पित और दूसरे की ऐतिहासिक।

हेमचन्द्र के अनुसार जब किसी उपाख्यान को पाठ्य, गायन एवं अभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो वह आख्यान कहलाता है। राजाभोज के अनुसार जब कोई ग्रन्थिक किसी कथा को मंच पर अभिनय,

पठन एवं गायन के साथ प्रस्तुत करता है तो वह आख्यान कहलाता है –

"आख्यानकसंज्ञां तल्लभते यद्यभिनयन् पठन् गायन।

ग्रंन्थिकाः एकः कथयति गोविन्दवदवहिते सदसि"

वस्तुतः हेमचन्द्र एवं राजाभोज का आख्यान लक्षण एक जैसा है। दोनो मंच पर अभिनय पठन एवं गायन के साथ प्रस्तुत करने की बात करते है। राजाभोज के उपाख्यान का सोदाहरण लक्षण इस प्रकार देते है –

"उपाख्यान पर प्रबोध के लिये उपदेशपरक होता है

जैसे – नवसावित्री या षोडश राजोपाख्यान"–

नवसावित्री षोडशराजोपाख्यानवत्प्रद्यावन्तः।

अन्य प्रबोधनार्थ यदुपाख्यानं ध्युपाख्यानम्।।

आचार्य राधाबल्लभ त्रिपाठी जी वैदिक आख्यानों के प्रयोजन पर लिखते है कि– भारतीय संस्कृति में मानव और देव परस्पर संबद्ध है। प्रकृति की अधिष्ठात्री देवमयी शक्तियाँ मानव का भरण पोषण करती है और बदले में व्यय हुई शक्तिजनित रिक्तता को यजन के द्वारा मानव पूरा करता है। इन्द्र तथा अश्विन विषयक आख्यान इसके दृष्टान्त हैं। अपाला–आमेयी का आख्यान नारी चरित्र की उदातता तथा तेजस्विता का विशद प्रतिपादक है। रामाययरूण वैष्णव और वृशजान का आख्यान पुरोहित की गरिमा का आख्यान करता है। सौमरिकाण्व का आख्यान संगति के महत्व को प्रतिपादित करता है। उंतक का आख्यान गुरूनिष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, पुराण तथा रामायण महाभारत में वर्णित कथाएँ उपदेशपरक है – अनैतिकता के गर्त में गिरने से बचाने के लिये कतिपय ऋषियों की चारित्रिक त्रुटियों तथा अनैतिक आचरणों का कथन भी इस ध ारा के साहित्य में प्राप्त है।

आचार्य त्रिपाठी जी लिखते हैं कि आख्यान यदि गुरूकुलों में पढ़ाये जाता थे। तो इनके अध्यापन की विधि वेदांगों से भिन्न थी। इनमें पाठ्य और गेय दोनो अंश होते थे तथा गेय को तन्तुवाद्य गायन के साथ सीखना होता था।

उपाख्यानमालिका का परिचय

"उपाख्यानमालिका" एक मालिका की भांति पिरोया हुआ कथाग्रंथ है। इस कथाग्रंथ में दो खण्ड है – प्रथम खण्ड में संस्कृत कथा है तथा द्वितीय

खण्ड में समस्त कथानकों का हिन्दी अनुवाद है। यह ग्रंथ चार कथाओं से परिपूर्ण ग्रंथ है जिसमें प्रथम तीन कथाओं के वाचक "ऋषिकल्प सूतजी" हैं, जो नैमिषारण्य के पावन प्रांगण में उपस्थित मुनिजनों को ये कथानक सुनाते है। वह प्राचीनता और नवीनता के संघर्षपथ को दर्शाती है।

प्रस्तुत कृति उपाख्यानमालिका चारों उपाख्यानों (विचित्रोपाख्यान, मायाविन्युपाख्यान, अभिनवशाकुन्तलम् उपाख्यान् मदनदहनम् उपाख्यान) पर आधारित है। इसका प्रथम उपाख्यान "विचित्रोपाख्यान" चार अध्यायों में विभाजित है।

विचित्रोपाख्यान

प्रथम अध्याय में हस्तिनापुर के बीच में एक घना जंगल है। जिसमें जरद्गव नाम का एक भालू रहता है, वह भालू कहाँ से आया है। कब से उस गुफा में रह रहा है, यह कोई भी नहीं जानता, इसी जरद्गव की खोज में फ्रांसीसी कन्या (मिनी, मृगालिनी) भारत आई थी।

द्वितीय अध्याय में मिनी नामक कन्या जरद्गव को खोजते हुये घने जंगल में प्रवेश करती है। यह मिनी नामक कन्या भी विचित्र ही थी। वस्तुतः उसके विचित्र आचरण के कारण ही उपाख्यान का नाम विचित्रोपाखन पड़ा।

तृतीय अध्याय में मिनी नामक कन्या कौन है, कहाँ जन्मी, कहाँ से और कैसे विचित्रदेश में आई ? मिनी, जार्ज लुइस और शीबा की पुत्री थी। लुइस शोधकार्य करने के लिये भारत आ गया। कुछ ही दिनों बाद शीबा की मृत्यु हो गई। मिनी ने जरद्गव को बताया कि माता की मृत्यु हो जाने पर पिता के जीवन से एक दुखद अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्थ अध्याय में विचित्र और संकटपूर्ण परिस्थितियों में मिनी की प्राणरक्षा करने में तत्पर जरद्गव से यह दो बार मिलती है। दूसरी बार मिलने पर जरद्गव और मिनी दोनो अपनी अपनी विभिन्नताओं के साथ परस्पर संघर्षपूर्ण मैत्री की राह में आगे बढ़ते है। मिनी और जरद्गव दोनो के परस्पर विरोधी विचार तथा प्रेम पद्धतियाँ भी पृथक–पृथक हैं।

यहाँ जरद्गव पुरातन भारतीय जीवन शैली, दर्शन अध्यात्म आदि का तथा मिनी आधुनिक पाश्चात्य जीवन शैली, ज्ञान विज्ञान का प्रतीक बनकर उद्भाषित हुई है। जरद्गव के पूछने पर मिनी कहती है –

"यादृशो देशास्तादृशम् परिधानम्। निवसामि त्वया सह।
त्वत्साहचर्येण विपरिवर्तते में मनः।।"

इस प्रकार जरद्गव कहता है –

इदंतावदनुकरणम्। "अनुकरणेन किं स्यात् ? मनस्तु पाश्चात्सं, वेषः पौरस्त्य इति न युक्तम्"

मायाविन्युपाख्यानम्

प्रस्तुत मायाविन्युपाखयानम् में सूतजी बोले – मुनियों मैं गाँव चला गया था। मैं गाँव में परिसर में पहुँचा तो वहाँ सबकुछ परिवतित हो चुका था। जहाँ सोते–बैठते थे वहाँ गर्मी के दरकी सूखी धरती थी और वृक्षों के स्थान पर ढेरों पक्के मकान बन गये थे।

सूतजी नदी को खोज रहे थे; वह पानी से भरी नदी कहाँ चली गयी। एक व्यक्ति ने मुझसे आकर कहा वह इस टेकरी के पीछे बाँधी जा रही है।

सूतजी नदी को खोज रहे थे तभी एक बूढ़ा व्यक्ति आया और सूतजी को अपना दामाद बताकर अपने घर ले जाता है उस घर में एक स्त्री थी जो सूतजी की पत्नी थी। जैसा रूखा उसका बोलना था, वैसा ही रूखा उसका आकार भी दिखता था। कुछ समय पश्चात् वर्षा ऋतु आ गई। अब सूतजी की पत्नी (मायाविनी) भी सूतजी को नेह भरी दृष्टि से निहारने लगी। अब वह पहले की तरह कटुवचन नहीं कहती थी।

हे मुनियों! उस घर में कितने युग, कितने साल व कितने दिनों तक रहा, यह नहीं कह सकता। उसके बाद वहाँ गाँव में अचानक बाढ़ आ गयी, वह बाढ़ मुझे कहाँ बहाकर ले गयी, कुछ पता नहीं चला। जब संज्ञा आयी तो न बाढ़ थी न ही मायाविनी चारो और नैमिषारण्य की पावन भूमि थी। यहाँ पर प्रस्तुत उपाख्यान मायाविन्युपाख्यानम् समाप्त होता है।

अभिनवशाकुन्तलम्

प्रस्तुत उपाख्यान "अभिनवशाकुंतलम्" में सूतजी कथावक्ता ने अपने छात्र जीवन की सहज अनुभूतियों को यथार्थ प्रेम के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

सूतजी बोले–शैशव में मेरे पिता ने मुझे गुरूकुल में डाल दिया था, एक दिन में मैं ईधन लेने वन में गया, वहाँ मैने शकुन्तला को देखा उस दिन में मेरा शकुन्तला के साथ मित्रता का संबंध बन गया था।

एक दिन गुरूकुल में राजा साहब आते हैं वह वहाँ कुछ दिन रूकते हैं राजा साहब शकुन्तला को देखते ही उस पर मुग्ध हो जाते हैं।

वह शकुन्तला को जबरदस्ती पाना चाहता है। प्रत्यक्ष मैने देखा फिर भी यह सब किसे बताऊँ? जो रक्षक हैं वे ही भक्षक हो गये हैं –

स शकुन्तला तां बलाच्चिकीर्षति प्रत्यक्षदृष्टमपि वृत्तमेतत् कस्मै निवेदयामि? ये रक्षकास्य भक्षका जाताः।

राजा साहब का शकुन्तला के प्रति व्यवहार जानकर शकुन्तला के पिता उसे किसी अन्य स्थान पर भिजवा देते हैं जहाँ उसकी रक्षा हो सके। कुछ समय पश्चात रघुवीर किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हो जाता है यहीं पर एक बार फिर रघुवीर का शकुन्तला से साक्षात्कार होता है शकुन्तला भी किसी कन्या महाविद्यालय में प्रोफेसर रहती है। रघुवीर शकुन्तला से कहता है कि मैं अभी भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। रघुवीर शकुन्तला के आगे अपना विवाह प्रस्ताव रखता है जिसे शकुन्तला स्वीकार कर लेती है।

सूतजी ने कहा–मुनियों मैं यही पर विराम लूंगा यही पर प्रस्तुत उपाख्यान "अभिनवशाकुंतलम" समाप्त हो जाता है। इस उपाख्यान में साहित्य और जीवन का ऐसा ताना बाना बुना गया है जो पाठक के समक्ष सहज अनुभव संसार की खिड़कियाँ खोलता है और अतीत तथा वर्तमान दोनो से उसका साक्षात्कार कराता है।

मदनदहनम्

प्रस्तुत उपाख्यान 'मदनहनम्' में शिव व उमा के आदर्शो का वर्णन है तथा आज के आधुनिक समय में नारी की सोच में जो परिवर्तन हुये है उसका वर्णन भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है –

शिव अपने कार्यालय में बैठे हुये थे। सामने फाइलों का गठ्ठर रखा था। उमा हर रोज की तरह आई। शिव के कक्ष में घुसते ही उसने मन ही मन शिव की पूजा की। उमा ने कविता की पंक्तियाँ टाइप कर शिव की फाइल में पत्र रख दिया जब शिव ने वह पत्र पढ़ा तो वह उमा पर अत्यंत क्रोधित हुये इसी कारण उमा ने शिव के कार्यालय की नौकरी छोड़ दी। जब शिव ने यह सुना कि उमा ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया तो वह सोचने लगे कि मैने उमा को डाँट दिया था इसी कारण उमा ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है और कारण जानने के लिए उमा के घर पहुँच जाते हैं और उमा के पिता को बताते हैं कि उमाजी मेरे कार्यालय में काम करती थी मैं पहले आपके पड़ोस में ही रहता था। उन्होंने नौकरी किस कारण से छोड़ दी ? क्या

स्वास्थ्य ठीक नही है ? यह जानने के लिये चला आया। उमा के पिता नगेन्द्र शर्मा से यही कह पाये। नगेन्द्र जी ने कहा बहुत अच्छा किया आपने, जो आप आ गये।

> **"अथैकदासौ स्वयमेव हिमप्रस्थनगरं गत्वा उमायाः पितरौ ददर्श। उमादेव्या केन कारणेन सेवा व्यक्ता, अपि सा अस्वस्थ्येति प्रष्टुमागतोऽस्मि। इत्यूचे। उमायाः पिता नगेन्द्र शर्मा प्राह–साधु कृतं यद् भवन्तः समागताः।"**

अब उमा एक विद्यालय में नौकरी करती है। उमा विद्यालय के वार्षिकोत्सव में महोत्सव में एक नृत्य नाटिका तैयार करवाती है। वार्षिकोत्सव महोत्सव के मुख्य अतिथि कमल सिंथेटिक्स के डायरेक्टर शिव ही होते है जिनके कार्यालय में उमा पहले कार्य करती थी। कार्यक्रम की सफलता की बधाई देने आये शिव अपना प्रेम प्रकट करते हुये उमा को जीवन साथी बनाने का प्रस्ताव रखते है, लेकिन उमा शिव का प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है यही पर यह उपाख्यान समाप्त होता है। यहां उमा की अस्वीकृति नारी की वर्तमान परिवर्तित होती हुई छवि का धोतक है।

इन उपाख्यानों की जमीन पौराणिक है, पर इन्हें ऐसा अपरिमित विस्तार दिया गया है कि ये उपाख्यान भारतीय उपमहाद्वीप के वर्तमान जीवन में सहज ही प्रक्षेपित हो रहे है। जनजीवन की समस्याओं की ओर इंगित करते हुये लेखक ने मन को झकझोरने वाली ऐसी झलकियाँ प्रस्तुत की है जिनमें परिव्याप्त विसंगतियाँ विडम्बनाएँ और विविध मनोदशाएँ मर्मस्पर्शी अनुभूतियाँ प्रदान कर रही हैं।

संदर्भ

1. अदादि प्रकरण धातु संख्या 1060 पृ. 191 सिद्धांत कोमुदी भाग तीन चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी।
2. अनन्यस्यापि प्रश्नोख्यानयोः 8/2/105, पाणिनी अष्टाध्यायी सूत्रपाठ चौखम्बा संस्कृत ऑफिस वारायणी 1995
3. वाचस्पत्यम् प्रथम भाग वाचस्पति श्री तारानाथ भट्टाचार्य चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वारायणी 1969

4. संस्कृत–हिन्दी शब्द–कोश पृ. 13 वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल वनारसीदास 1977
5. साहित्यदर्पण 6/325
6. मनुस्मृति 3/232
7. चौमासा पत्रिका, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी का आलेख
8. काव्यालंकार–1/25.28 भामह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 2002
9. भगवतीलाल पुरोहित के आलेख पृ.क्र. 15, चौखम्बा पत्रिका से उद्घृत
10. भवतीलाल पुरोहित के आलेख पृ. 16, चौख़म्बा पत्रिका से उद्घृत
11 चौमासा पत्रिका, पृ.12 फरवरी 2008 मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल
12 चौमासा पत्रिका, आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी का आलेख पृ. 31
13 उपाख्यानमालिका डॉ. राधाबल्लभ त्रिपाठी पृ. 26
14 उपाख्यानमालिका डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ. 26
15 उपाख्यानमालिका डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ. 59
16 उपाख्यानमालिका डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ. 78

C/o देवेन्द्र कुमार अग्निहोत्री
I-7, विवेक कॉलोनी, कैंट,गुना(म0प्र0)–473001

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के नाटकों में सामाजिक चेतना

श्रीमती रुचि (दीक्षित) भार्गव

साहित्य समाज का दर्पण है। लेखक अपने साहित्य के माध्यम से समाज का प्रतिबिम्व प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में समाज में संघर्ष तथा संक्रमण की अनेक स्थितियाँ दृष्टिगत होती हैं। समाज में व्याप्त जातिवाद और साम्प्रदायिकता की भावना के कारण सामाजिक एकता का अभाव तथा सम्प्रदाय–विरोधी नए समाज का निर्माण हो रहा है। अर्थ की प्राथमिकता के वशीभूत नैतिक–मूल्य पतन की गर्त में जा रहे हैं।

आचार्य श्री राधावल्लभ त्रिपाठी जी सरस्वती की कृपा के धनी है, आधुनिक संस्कृत साहित्य के साहित्यकारों में आपका प्रमुख स्थान है। संस्कृत भाषा के साथ हिन्दी, आँग्ल आदि भाषाओं पर भी समान रूप से अपकी लेखनी की पकड़ मजबूत रही है। कई अनगिनत काव्यगोष्ठियों एवं विद्वत गोष्ठियों में पद को सुशोभित किया है। अभी तक एक सौ आठ संस्कृत काव्यों का प्रकाशन हो चुका है, इन प्रकाशित कृतियों में आचार्य जी का नाट्य साहित्य में उनका एक विशिष्ट स्थान है। आचार्य जी की रचनाएँ जैसे–प्रेमपीयूषम् सुशीला, प्रेक्षणकम्, तण्डुलप्रस्थीयम् तथा प्रेक्षणकसप्तकम् में सामाजिक समस्याओं को मजबूत आधार के साथ दृश्य–पटल पर उतारा गया है। जब इन नाटकों का अध्ययन करते हैं तो सारी घटनाएँ आँखों के आगे ऐसे घूमने लगती हैं, जैसे यह यहीं घटित हो रही हैं। इस प्रकार की रचना के द्वारा समाज में चेतनता के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा मिलता है। इन रचनाओं में जन सामान्य की विकृत मानसिकता, भावना, राष्ट्र की विसंगतियों के प्रति तीक्ष्ण कटाक्ष किए गए हैं। इन रचनाओं में प्राचीनता को नवीनता का रूप दिया गया है। जो वर्तमान समाज को वरदान है। इन सभी रचनाओं में जो समस्याओं का वर्णन है उनकी निवृत्ति का मार्ग भी सांकेतिक रूप में प्रशस्त किया गया है।

'प्रेमपीयूषम्' नाटक में महाकवि भवभूति को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है नायिका राजकुमारी शशि प्रभा हैं। नायक–नायिका दोनों ही उत्कृष्ट चरित्र के परिचायक हैं। नायक स्वाभिमान का प्रतीक है स्वाभिमानी व्यक्ति किसी की चाटुकारिता में विश्वास नहीं रखता। अपने इस चरित्र पक्ष के कारण राजा (समाज) द्वारा तिरस्कृत होना पड़ता है आर फिर यह स्पष्ट किया है कि समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति किस प्रकार से अपना आत्मबल खो देता है और पुनः उसकी प्राप्ती कितनी रूठिनाई से होती है इसका वर्णन प्रेम पीयूषम् में है। इस रचना में शिक्षा का महत्त्व भी प्रतिपादित है।

बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना, पतिव्रत धर्म का पालन, गुरू आज्ञा पालन, धैर्यपूर्ण व्यवहार (राजा यशोवर्भन का, जब राजा ललितादिव्य द्वारा आक्रमण की सूचना मिलती है तब) गुरू के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

दाम्पत्य जीवन के उतार–चढ़ाव, प्रेम की परिणिति विवाह के रूप में तथा किसा प्रकार से दाम्पत्य रूपी वट वृक्ष को प्रेम रूपी अमृत से सिंचित करके खुशहाल जीवन का उदाहरण भी इसमें मिलता है।

स्त्री–पुरूष को एक दूसरे का पूरक कहा गया है; पुरूष के जीवन का स्त्री एक अभिन्न अंग है। इस नाटक के द्वितीय अंक में भवभूति कहते हैं :–

"नारी नार्म नरस्य शेवधि रहे। देदृ यथा जीवनं" (1) –प्रे.पी. द्वितीय अंक पृ.–14

चतुर्थ अंक में युवा पुत्री के अंतर्मन की स्थिति एक माँ किस प्रकार से जानकर उसके अशांत मन को शांत करती है इसका उदाहरण इंदुमति व शशिप्रभा के संवाद के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसी अंक में वृक्षपूजा एवं मदनमहोत्सव का वर्णन है, पंचम अंक में बलिप्रथा का उद्धरण देखने को मिलता है, जिसमें भवभूति के द्वारा बलिप्रथा के विरोध को दर्शाया गया है।

आश्रम व्यवस्था की स्थिति भी ज्ञात होती है। अच्छा आचरण, शुद्ध व्यवहार आदि का प्रदर्शन इस रचना में प्राप्त होता है। षष्ठम् अंक में शिक्षा के प्रसार का वर्णन है। इसी अंक में राजा यशोवर्मा की राज्य के प्रति लिप्सा का प्रदर्शन है; जिसके लिए वह स्वार्थ के वशीभूत राज्य प्राप्ति के लिए शशिप्रभा को ललितादित्य को सौंपने के लिए तैयार हो जाता है। और यह जानकर कि वह विवाहित है, वह चिंतित हो जाता है।

अंतिम अंक में सारी स्थिति जानकर जो अभी तक राजा ललितादित्य

छिपकर सुन रहे थे, अपने को प्रकट करता है और उन्हें उनके वचन से मुक्त करके संधि प्रस्ताव अमान्य करके उनका राज्य उन्हें सौंप देता है। इस अंक में कर्त्तव्यनिष्ठा का उदाहरण मिलता है। यह एक सुखांत नाटक है।

सुशीला प्रेक्षणक :– बच्चुलाल अवस्थी जी के एक श्लोक पर आधारित रचना है। जिसे आचार्य जी ने विस्तृत स्वरूप प्रदान किया है।

हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्यभुजङ्गदष्टं
देशातन्रे स्वयमहं गाणिकाऽस्मि जाता।
पुत्रं पतिं समधिगम्य च वृक्षदग्धं
शोचामि गोपगृहिणी कथमल्पतक्रम्।। (2)

आज समाज का जो परिवर्तित रूप है, वह कहीं मर्यादा का अतिक्रमण किए हुए है तो कहीं उच्छृंखलता को धारण किए हैं। यह प्रेक्षणक अनेक समस्याओं का दर्पण कहा जा सकता है। आर्थिक विपन्नता, नारीशोषण, सवर्ण होने का नुकसान या क्षति सामाजिक, पारिवारिक संघर्ष, परिवार का महत्त्व, आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। आत्महत्या जैसे घृणित कार्य को भी रोकने का प्रयास इसमें दृष्टिगत है।

पारिवारिक महत्व को स्पष्ट करते हुए सुशीला का कथन है कि "मेरे पास पारिवार था, सुख था पर मैं। सुखी होना नहीं जानती थी, मेरा पति मेरे पास था पर मैं कुछ न मानती थी; मैं क्या से क्या हो गई, मैंने कितने रूप धरे। मैं क्या हो सकती थी और क्या हो गई, पर नहीं, मैं वहीं हूँ , जो मैं थी।"

आचार्य जी की इस रचना में यह स्पष्ट है कि पारिवार में एक सुरक्षा की भावना निहित रहती है; उसी में संतुष्टि होती है। इससे अलग होकर सिर्फ कठिनाईयाँ खड़ी होती हैं।

इस पूरे प्रेक्षणक में जो कथा वस्तु है उसमें स्त्री स्वभाव एवं परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। स्त्री को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में लाने के लिए बहुत प्रयत्न किए जाते हैं लेकिन पुरूष प्रधान समाज उसे आज भी भोग्या की दृष्टि से ही देखता है, जब स्त्री पति से अलग हो जाती है तब समाज में उसका स्थान नहीं होता वह सर्व–भोग्या मानी जाती है, नाटक में नायिका अनजाने में ही पुत्र के समक्ष भोग्या बन जाती है जब यह ज्ञात होता है तो वह प्रायश्चित करना चाहती है। यह एक बिडम्वना ही है। नाटक के कई संवादों में स्त्रीयों की परिस्थिति का बोध

होता है। नाटक सुशीला में सुशीला को एक समर्पित पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया है।

सुशीला नाटक की पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर 'चूल्हे पर खाना पकाती महिला की धुंधली तस्वीर' भी नारी के अस्तित्व को उभारने का प्रयास करती दिखाई पड़ती है।

इस रचना के माध्यम से 'स्त्री सशक्तिकरण की आवाज' को सशक्त करने का प्रयास किया गया है। सुशीला के द्वारा विषम परिस्थिति में भी हार न मानना यह संदेश देता है कि नारी अब अबला नहीं बल्कि वह आवयश्कता पड़ने पर दुर्गा, काली, रणचण्डी बन कर पापियों का संहार भी कर सकती है।

प्रेषणसप्तकम्:— यह सात पुष्प के गुच्छ के समान है। इस रचना के अन्तर्गत सात एकांकियों का संकलन है जिसमें जीवन के संघर्षों, विकारों, वासनाओं, कुंठाओं, कल्पनाओं, अच्छाइयों एवं बुराईयों का सफल रूपांकन है। आचार्य जी ने इसमें प्रत्येक वर्ग को आधार बनाया है। इस संग्रह में सामाजिक कुरीतियों, नारी की विविध व्यथाओं, नारियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण, राजनैतिक भ्रष्टाचार, धार्मिक आडम्बर आदि विसंगतियों पर प्रभावकारी रूप से एक नई सोच विकसित करने का प्रयास गिया गया है।

1. **सोमप्रभम्** — प्रेक्षणक मे माँ—बेटी के स्नेहात्मक संबंधों का वर्णन है। मार्मिक अनुभूति है तथा योतुक के लालच में बहू को जलाकर मारने अर्थात् वधुदहन की समस्या को ज्वलंत रूप से प्रस्तुत किया है। पुत्री द्वारा माँ की रक्षा उसकी तत्परता की परिचायक है। इस प्रकार इस प्रेक्षणक में शोषक और शोषितों की जटिलता वर्णित है।

2. **धीवरशाकुन्तलम्** की कथा कालिदास की अभिज्ञान शाकुन्तलम् पर आधारित है इस एकांकी में नायक एक मछुआरा है इसमें राजनैतिक भ्रष्टाचार तथा, स्त्री विक्रय जैसी समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

3. **मेघ संदेश** — यह भी कालिदास जी के मेघदूत से प्रेरित है एक बालक के विश्वास की जीत की कथा है। पात्रों के नाम भी प्रकृति से प्रेरित हैं लता सौरभ। नीम के वृक्ष को बादल के मित्र के रूप में दर्शाया गया है। पानी की बूँदें चाहिए मोती नहीं **अहं मुक्तानां वृष्टि नवा...छामि जल वृष्टिमेवकामये''**(3)

4. मुक्ति में संदेश दिया गया है कि अपने पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों की पूर्ति के बाद ही मुक्ति है। सूत्रधार को जंजीरों में बंधा दिखाया है, वह जंजीरे उसकी मानसिक गुलामी की प्रतीक है। प्रतीकों के माध्यम से कोई भी बात सीधे सामाजिकों के हृदय पर प्रभाव डालती है। जिसका प्रभाव बहुत अधिक समय के लिए होता है। आचार्य जी ने प्रतीकों का प्रयोग बहुत सुन्दरता से किया है। इसके नांदी में राष्ट्रीय भावना का समावेश है।

स्वतंत्रयेऽपि समागते विदलितो नो पारतंत्रयात्मको
भावो भास्वति सत्यपि प्रभवति क्लेषायगाढं तयः।
संकल्पः किलमुक्तरो प्रति जनं चेतः सुसज्जायतां
मुक्तरेशं तथा भवत्वभिनयः सत्यान्वितो मुक्तिदः।। (4)

5. मशकधानी में हास्य की सहायता से राजनैतिक भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। यह एक हास्य व्यंग्य है। हास्य व्यंग्य से भरपूर यह कृति न केवल पाठकों का मनोरंजन करती है अपितु कौतुहल की स्थिति भी उत्पन्न करती है। वर्तमान में राजनीति का नैतिक पतन हो चुका है। इस नैतिकता विहीन राजनीति के प्रति प्रत्येक नागरिक को चैतन्य करने का प्रयास है। इस एकांकी के अंत में जन सामान्य के क्रोध को सूत्रधार के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जब वह श्रेष्ठी के मूर्खतापूर्ण व्यवहार से परेशान होकर धैर्य का साथ छोड़ते हुए कहता है कि "क्या आप जानते हैं हमारे राष्ट्र में अराजकता का मुख्य कारण इसी प्रकार के व्यक्तियों के हाथों में सत्ता होना है", "किं जानासि अस्मिन राष्ट्रे सर्वथा अराजकता जाता इति।" (5)

6. गणेशपूजनम् में धर्म के प्रति नास्तिक व्यक्तियों की स्वार्थिकता का चित्रण है। अपने स्वार्थ के वशीभूत बुलाकीराम जैसे कई लोग धार्मिक उत्सव को अश्लीलता का पर्याय बनाने से भी नहीं चूकते अधिक चंदा वसूलने के लिए लोगों को अश्लील वीडियो पिक्चर का प्रलोभन देते हैं। यह कलुषित मनोवृत्ति को उजागर करने वाली रचना है। इस प्रकार के लोगों का मुख्य उद्देश्य लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करना होता है।

7. प्रतीक्षा एकांकी में मध्यवर्गीय परिवार की झलक देखने को मिलती है नायिका कल्पना एक मात्र रोजगार वाली पुत्री है पुत्र बेरोजगार हैं, छोटी बहन पढ़ रही है पिता रिटायर हैं पूरी गृहस्थी का भार कल्पना के ऊपर है, सुबह से शाम तक ऑफिस में काम करना ही उसकी दिनचर्या है। इसी में यदि पुत्री देर रात तक घर वापस न आए तो उस पिता की मानसिक स्थिति

का चित्रण है अनिष्ट की आशंका से सभी घरवालों की मनोदशा का चित्रण है। पुत्री को सुरक्षित देखकर पिता आश्वस्त होते हैं। पुत्री के प्रश्न, 'क्या एक स्त्री होना अभिशाप है?' यह एक ज्वलंत प्रश्न है। पिता का उत्तर है कि पुत्री "अति स्नेह पापशंकीतिन्यायेन यदन्यथा अनयथा चिंतितंतन्नप्रत्यविश्वासात् अपितु आत्मनों दौर्वल्यादेष तदलमन्यथा गृहीत्वा।" पृ.71 प्र.स. प्रतीक्षा। (6)

इन सभी एकांकियों में यदि कल्पना है तो यथार्थ भी है, हास्य है तो व्यंजना भी है, और मनोरंजन के साथ संदेश भी है। आचार्य जी की संवाद शैली अत्यंत चुटीली है। कठिन से कठिन संदेश बहुत ही सरल भाव में प्रस्तुत कर देते है।

तण्डुलप्रस्थीयम्– नाटकों में समाज की वास्तविकताओं का चित्रण किया जाता है तण्डुलप्रस्थीयम् में आदर्श प्रेम की स्थापना का वर्णन है। नाटक में नाट्यतत्वों के अतिरिक्त धार्मिक व सामाजिक इतिहास का वर्णन भी किया गया है। इस कृति में जाति व्यवस्था, जमींदारीप्रथा रहन–सहन, खान–पान, अंर्तजातीय विवाह, विवाह पद्धति, शिक्षा–पद्धति, सबंधों के स्वरूप, धार्मिक आस्था, गो सेवा, अतिथि सत्कार, राजतंत्रीय शासन, न्याय व्यवस्था के दोष, सामाजिक–आर्थिक विषमताएँ आदि पर प्रकाश डाला गया है।

इसमें मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण है जो कई कठिनाई का सामना करता है तब इस परिवार का पुत्र निरंजन अपने खोए हुए पिता को वापस लाने तथा शिक्षा ग्रहण करके व अपने गाँव में जल समस्या के निराकरण का संकल्प लेता है इस नाटक से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि पवित्र साध्य के लिए पवित्र साधन का प्रयोग ही करना चाहिए, छल, कपट, भ्रष्टाचार से कोई भी प्राप्त वस्तु अधिक समय तक स्थिरता प्राप्त नहीं करती वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इस प्रकरण के प्रारंभ में मंगलाचरण द्वारा भी यह स्पष्ट किया गया है कि धैर्य व दृढ़ इच्छा शक्ति से कोई कार्य असंभव नही रहता।

अलक्षितो ब्याप्य निरंजनो .... (तण्डुलप्रस्थयम्, पृष्ठ–1)

अंत में उपरोक्त चारों नाटकों पर सूक्ष्म दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि इन नाटको में इस प्रकार के दृश्यों का चित्रण है कि जो समाज से जुड़े कटु सत्यों को उजागर करते हैं। समाज में व्याप्त समस्याओं ने ही नाटकों का आकार ले लिया है। आचार्य जी के नाटक वर्तमान समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं इन रचनाओं में कहीं भी कुछ अप्रत्याशित प्रतीत नहीं होता है। इन

नाटकों में आधुनिक युग के विभिन्न मूल्यों को कुशलता पूर्वक दर्शाया गया है। इन रचनाओं में यथार्थ के कठोर धरातल पर जूझते जन सामान्य का चित्रण है, जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा जिसका आचार्य जी की रचनाओं में उल्लेख न हो इस प्रकार से यह नाट्य रचनाएँ सामाजिक चेतना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण व अनमोल कृतियाँ है। अपने तथ्य और कथन को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो जनसामान्य के लिए सरल, सहज और बोधगम्य है।

संदर्भ

1. नारी नाम नरस्य शेवधिरहो, प्रेमपीयूषम् द्वितीय अंक पृ.–14
2. ह्त्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं, सुशीलाप्रेक्षणक अंक प्रथम
3. अहम् मुक्तानां वृष्टिः – मेघसंदेशम् प्रे.स. पृष्ठ–20
4. स्वतंत्रयेऽपि समागते – मुक्ति प्रेक्षणसप्तकम् पृष्ठ–37
5. किं जानासि अस्मिन् राष्ट्रे – मशकधानी पृष्ठ–51
6. पुत्रि अतिस्नेहः पापशङ्कीति – प्रतीक्षा प्रे.स. पृष्ठ–71
7. अलक्षितो व्याप्य निरंजनः – तण्डुलप्रस्थीयम् पृष्ठ–1

शोध छात्रा, भार्गव कॉलोनी
गुना (म.प्र.) 473001

दमयन्ती नाटक में नारी शक्ति का गौरव

डॉ. माधवी श्रीवास्तव

किसी भी युग अथवा देश की सामाजिक व्यवस्था एवं तत्संबंधी दृष्टिकोण का वास्तविक मूल्यांकन स्त्रियों के अध्ययन के अभाव में अपूर्ण ही समझा जायेगा। नारी के बिना सम्पूर्ण विश्व सारहीन है। विश्व की किसी भी संस्कृति के विकास का मापदण्ड है नारी। भारतीय संस्कृति को विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति में से एक माना गया है, और इसका एक कारण प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी को दिया गया ऊँचा स्थान है।

पौराणिक और प्रागैतिहासिक काल से आरम्भ करते हुए यदि अब तक स्त्रियों के विषय में विचार करें तो सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा से लेकर, वैदिक काल की अपाला, घोषा, सावित्री जैसी महान स्त्रियाँ एवं उपनिषद काल में भी गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियाँ, मध्यकाल और पूर्व–आधुनिक काल की अहिल्या बाई, रजिया सुल्तान, लक्ष्मी बाई और चाँद बीबी जैसी शासक सम्पूर्ण नारी शक्ति को बेहद सुंदर और सशक्त रूप से परिभाषित करती हैं।

उत्थान एवं पतन प्रकृति का नियम है, मध्यकाल में नारी की स्थिति कमजोर एवं दयनीय दृष्टिगोचर होती है। समाज में व्याप्त धार्मिक अन्ध ाविश्वासों एवं सामाजिक बुराईयों के कारण नारी का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। वह घर की चहारदीवारी में कैद होकर रह गयी।

19वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारतीय नारी के लिए एक नया सबेरा लेकर आया। राजा राममोहन राय, महादेव रानाडे, स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वरचन्द विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से नारी की स्थिति में सुधार आया। अतः नारी शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई थी। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने विशालतम साहित्य सृजन में नाटकों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से नारी शक्ति का समर्थन किया है। उन्होंने मनु के इस वाक्य "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवताः" का समर्थन करते हुए

तत्कालीन समाज में नारी की उच्च स्थिति का समर्थन किया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा हिन्दी भाषा में रचित दमयन्ती नाटक में नारी शक्ति का चित्रण हमारी इसी परम्परा का पोषक है।

आचार्य त्रिपाठी जी ने दमयंती नाटक में श्री हर्ष द्वारा विरचित नैषधीयचरितम् की पुराकथा को एक नवीन कलेवर में प्रस्तुत किया है। इस नाटक की नायिका दमयंती पुत्री, पत्नी, माता, साम्राज्ञी इत्यादि विविध स्वरूपों में अपने सशक्त व्यक्तित्व का परिचय देती है।

दमयन्ती विदर्भ देश के नरेश भीम की पुत्री है। वह निषध देश के महाराज नल के गुणों से मुग्ध होकर उनसे प्रेम करने लगती है एवं उनसे विवाह करना चाहती है। एक राजकुमारी के रूप में अपने वर का स्वयं चुनाव करना एवं यम, वरूण, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के स्वयम्वर में प्रस्तुत होने पर भी नल को ही अपने पति के रूप में वरण करना दमयन्ती के सशक्त व्यक्तित्व का परिचायक होने के साथ ही साथ स्त्री स्वतंत्रता का भी द्योतक है।

नाटक में इन्द्र, अग्नि, वरूण, यम के परस्पर सम्वाद से यह बात पुष्ट होती है कि वर के रूप में दमयन्ती ने नल का ही चयन किया।

"इन्द्रःहाँ, हम बस देखते ही रह गये।

अग्नि :हम निस्तेज हो गये।

वरूण :हमारे देखते देखते.....

यम :दमयंती नल की हो गयी।"1

आचार्य त्रिपाठी जी ने दमयन्ती के चरित्र की सशक्तता को बड़े ही काव्यात्मक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

हुआ स्वयंवर दमयंती का
रचा ब्याह फिर दमयंती का
रहे देखते खिन्न देवता
रहे रिक्त से रिक्त देवता
दमयंती ने वरा एक नर
दमयंती का हुआ स्वयंवर

नर ने चाहा दमयन्ती को

दमयंती को, दमयंती को

दमयंती ने उसे ही वरा

वापस लौटे चार देवता....

दमयंती नाटक में त्रिपाठी जी ने दमयंती के चरित्र को नारी शक्ति के प्रतीक के रूप में अत्यन्त सशक्त ढंग से उभारने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग करते हुए दमयंती के चरित्र को बीच–बीच में पद्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आम जनता को गद्य के स्थान पर पद्यात्मक ढंग से कोई भी प्रस्तुति अत्यन्त बोधगम्य लगती है। यहीं बोधगम्यता उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में दृष्टिगोचर होती है।

श्री हर्ष द्वारा रचित नैषध चरित में दमयन्ती का कमजोर व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। वह नल से विवाह न होने की स्थिति में अपने प्राणों की आहुति देने की बात करती है –

"अपि द्रढीयः श्रृणु मे प्रतिश्रुतं सं पीडयेत्पाणिमिमं न चेन्नृपः हुताऽशनोद् बन्धन वारिवारितां निजाऽऽयुषस्तत्करवै स्वंवेरिताम्।"[2]

आचार्य त्रिपाठी जी ने अपने नाटक दमयन्ती में मूलकथा को एक नवीन कलेवर में प्रस्तुत करते हुए दमयन्ती को एक दृढ़ प्रतिज्ञ युवती के रूप में प्रस्तुत किया है। वह मरण में विश्वास नहीं रखती, वह कार्य सम्पादन में विश्वास रखती है। वह छद्म वेश में स्वयम्वर में उपस्थित हुए देवताओं को पहचानने के लिए अपनी दिव्य दृष्टि एवं विवेक ज्ञान का प्रयोग करती है। वास्तव में हर स्त्री के भीतर एक अलौकिक दृष्टि होती है, किसी भी रूप में छिपे राक्षस को पहचान पाने की, बस स्त्री को पहचानना है अपने भीतर छिपी इस शक्ति को।

दमयंती अपने विवेक ज्ञान का प्रयोग करती हुई एवं पूर्व में देवताओं की पहचान सम्बन्धी लक्षणों को स्मरण करती हुई अन्त में वास्तविक नल को पहचानने में सफल होती हैं। त्रिपाठी जी ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है –

"पहली सखी –देवों ने महाराज नल का रूप बना लिया। किसी भी देव में आपको अपने नल मिल जायेंगे।

दमयन्ती –नहीं मुझे देव नहीं, मनुष्य चाहिए।

(हाथ जोड़कर) मुझे शक्ति दो माँ सरस्वती ! मैं अपने मनुष्य को पहचान सकूँ, जिसे मैंने हृदय से चाहा है।

देवताओं के नहीं गिरती
पसीने की बूँदें कभी भी
और नहीं कुम्हलाते उनकी
मालाओं के फूल कभी भी
देवताओं के पग कभी भी
छूते नहीं है इस धरा को
और नहीं झपका करती है
पलकें देवताओं की कभी।"3

अन्ततः दमयंती अपने दृढ़ निश्चय एवं विवेक ज्ञान के कारण नल को अपने पति रूप में प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

दमयंती के माध्यम से त्रिपाठी जी नारी की शक्ति को प्रस्तुत कर यह सन्देश देना चाहते हैं कि यदि नारी कुछ करने की ठान ले तो देवता भी उससे हार मान सकते हैं। बस आवश्यकता इस बात की है कि दमयन्ती जैसा अनन्य प्रेम, आस्था, अदम्य साहस हर स्त्री अपने अन्दर जागृत करे।

पूर्व में इन्द्र, वरूण, अग्नि आदि देवता जो स्वयं दमयन्ती को प्राप्त करना चाहते थे। वही दमयन्ती के दृढ़ चरित्र के कारण न सिर्फ नतमस्तक हुए बल्कि उसकी प्रशंसा कर सबने आशीर्वाद स्वरूप भावी वर नल को वरदान प्रदान किये।

नाटक में कथावस्तु आगे बढ़ने के साथ ही साथ दमयन्ती के वैवाहिक जीवन के भी 12 वर्ष हँसी–खुशी के साथ पूर्ण हो जाते हैं। इसी बीच दमयन्ती एक पत्नी के साथ–साथ एक माँ के उत्तरदायित्व को भी निभाती है। जीवन में विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर दमयन्ती सबसे पहले अपने दोनों बच्चों राजकुमारी इन्द्रसेना एवं राजकुमार इन्द्रसेन को सुरक्षित स्थान (अपने मातृगृह) भेजने का प्रबन्ध करती है। वह सारथी वार्ष्णेय को दिन ढलने से पहले दोनों बच्चों को कुंडिनपुर पहुँचाने का आदेश देती है।

दमयन्ती :अब उसके उपयोग का समय आ गया, तुम राजकुमार इंद्रसेन

और राजकुमारी इन्द्रसेना को लेकर तत्काल यहाँ से प्रस्थान करोगे।[4]

दमयन्ती के उपर्युक्त वार्तालाप से दमयंती की दूरदर्शिता का उद्घाटन होता है। शत्रु से सामना होने पर कोई भी माँ अपने बच्चों के कारण कमजोर पड़ सकती है। अतः दमयन्ती सबसे पहले अपने बच्चों को सुरक्षित स्थान पर भेजती है।

कथा क्रम के प्रवाह में विषम से विषम परिस्थितियाँ दमयन्ती एवं नल के जीवन में उपस्थित होती है। इसी क्रम में नाटक में उल्लेख है कि 'कलियुग' जो कि दमयन्ती को प्राप्त करने की इच्छा रखता था, वह प्रथम तो दमयन्ती को प्राप्त करने के प्रयत्न करता है किंतु जब दमयन्ती के सतीत्व के कारण उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं होती तब वह परोक्ष रूप में दमयन्ती को राजा नल के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। इसी क्रम में वह एक दिन सायंकाल सोए हुए राजा नल के शरीर में प्रवेश कर जाता है। इसके उपरान्त वह अपनी इच्छानुसार राजा नल से कार्य सम्पादन करवाता है। इसी का परिणाम है कि राजा नल का पुष्कर के साथ द्यूत क्रीड़ा में संलग्न होना तत्पश्चात वह राज्य, सम्पत्ति, दास–दासियाँ अन्ततः सर्वस्व हार जाता है।

द्यूत क्रीड़ा प्रसंग में भी आचार्य त्रिपाठी जी दमयन्ती के माध्यम से नारी में विपत्ति के समय छिपी अद्भुत शक्ति एवं साहस का उद्घाटन करते हैं। जब भी परिवार पर विपत्ति आती है विशेष रूप से पति के विपरीत समय में पत्नी सदैव उसके लिए ढाल बनकर खड़ी रहती है।

जब पुष्कर नल को जीतने का प्रलोभन देने के बहाने दमयन्ती को दाँव पर लगाने की बात कहता है, उसी समय दमयन्ती नल को जबरन वहाँ से उठाकर ले जाती है। इस प्रकार पुष्कर अपने इरादे में सफल नहीं हो पाता है। इस घटना का उल्लेख निम्नलिखित सम्वादों में मिलता है –

"नल :अब कुछ भी शेष नहीं रहा।

पुष्कर :अभी तो तुम्हारे पास सबसे बड़ी सम्पत्ति बची हुई है।

नल :कहाँ ?

पुष्कर :(दमयंती को लालसा से देखते हुए) यह तुम्हारी पत्नी दमयन्ती। यह स्वयं यहाँ इसीलिए आकर उपस्थित हुई है। इसे पण पर रख दे। बड़ा भाग्य है इसका। अब की तू जीत जाएगा। देख, अभी तक जो कुछ मैंने जीता, मैं सब दाँव पर रखता हूँ। तेरी ओर से केवल दमयंती।

दमयन्ती : **आर्यपुत्र उठिये।"**[5]

नाटक के तृतीय अंक में राजा नल एवं रानी दमयन्ती को पुष्कर के द्वारा राज्य से निर्वासित कर दिया जाता है, साथ ही घोषणा की जाती है कि इनसे मेल–मिलाप करने वाले, इन्हें शरण देने वाले दण्ड के भागीदार होंगे। अन्ततः चाण्डालों की बस्तियों में राजा नल एवं दमयन्ती को शरण प्राप्त होती है।

चाण्डाल की बस्ती में रहने पर भी रानी दमयन्ती अपने आचरण को अक्षुण्ण रखती है। वह भूखे रहने पर भी माँस भक्षण नहीं करती, अपने पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए राजा नल को स्वयं अपने हाथों से अपूप खिलाती है तत्पश्चात् स्वयं खाती है। यह दमयंती के अगाध प्रेम का प्रतीक है। चाण्डालों की बस्ती में शरण पाये हुए राजा नल एवं दमयन्ती को ढूँढ़ते हुए पुष्कर के सैनिक चाण्डालों की बस्ती में आते हैं, किन्तु चाण्डालों की सूझबूझ से दोनों की रक्षा होती है। दमयन्ती विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य एवं सहनशीलता का दामन थामे रहती है। वह कभी यह स्वीकार नहीं करती कि उसे कोई दुःख है। यहाँ पर आचार्य त्रिपाठी जी ने भारतीय संस्कृति के आदर्श को प्रस्तुत किया है, जहाँ स्त्रियाँ अपने पति के साथ के समक्ष सभी ऐश्वर्यों को तुच्छ मानती हैं। आचार्य त्रिपाठी जी ने नल दमयन्ती के संवाद के माध्यम से भारतीय संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत किया है।

नलः मेरे कारण तुम्हें कितना दुःख झेलना पड़ रहा है।

दमयन्ती : मेरे लिये तो यह सुख की घड़ी है। मेरा सब कुछ मेरे पास है।"[6]

कथा क्रम में एक से एक विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर राजा नल बार–बार दमयंती से अपने पितृ गृह लौटने का आग्रह करता है। दमयन्ती में छिपी अपार नारी शक्ति का पता उसके (दमयंती) इस कथन से प्रकट होता है –

दमयंती : आपको क्या पता मैं कितना कुछ झेल सकती हूँ (आँसू पोंछकर)

कलियुग के प्रभाव से राजा नल दमयन्ती को सोता हुआ छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार दमयन्ती अकेली ही परेशानियों का सामना करती है। सर्प से रक्षा करने वाला व्याघ उस पर बुरी नीयत रखता है। दमयन्ती उसे ललकारते हुए कहती है –

दमयंती : मुझे नहीं चाहिये यह सुरक्षा और सुख ! नीच ! तेरा यह साहस। एक पग भी मत बढ़ना।

व्याध : अरे अब जायेगी कहाँ ?

(दमयंती खड्ग उठाकर अपनी ओर लपकते व्याध की छाती में उस खड्ग को भौंक देती है। व्याध तड़पता है, दमयंती रक्त रंजित खड्ग हाथों में लिये चल पड़ती है)[7]

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर भी वह एक पुरोहित को सामने आते देख किसी अनर्थ की आशंका से खड्ग उठा लेती है। कालान्तर में परिचय प्राप्त होने पर ज्ञात होता है कि वह सार्थवाह, भृगुदत्त का कुल–पुरोहित है। अन्त में वह अपने पति राजा नल को ढूँढ़ने के लिए पुरोहित के साथ चेदि देश चली जाती है। दमयन्ती कूटनीति का प्रयोग करते हुए पुरोहित से कहती है कि मैं नहीं चाहती कि मेरा वास्तविक परिचय यहाँ प्रकट हो।

दमयन्ती चेदि नरेश के राजभवन में दासी सैरंध्री के रूप में रहती है। दमयन्ती विपरीत परिस्थितियों में भी अपने आत्म–सम्मान को सँभाल कर रखती है। चेदि नरेश की दासी मधुकारिका के संवाद में दमयन्ती के माध्यम से आचार्य त्रिपाठी जी ने नारी में छिपे आत्म सम्मान को बड़े ही गौरव के साथ प्रस्तुत किया है।

मधुकारिका :क्या बताऊँ.....। राजकुमारी कहती हैं – माला गूँथना तो वही जानती है। उसी से गुथवा कर ला। नखरे देखो सैरंध्री के। न वह किसी के जूठे बर्तन छुए, न जूठन खाये, न किसी के कुवचन सुने। उसे तो मान–सम्मान से रानियों की भाँति रखो। बस माला गूँथना और वेणी सँवारना– दो काम वह करेगी।[8]

कथा क्रम में आगे राजा भीम अपनी पुत्री दमयन्ती की खोज करवाते हैं। देवी दमयन्ती पहचान ली जाती है, वह चेदि देश की महारानी की भतीजी है, ऐसा ज्ञात होने पर वह अपने पिता के पास विदर्भ लौट जाती है। राजा नल भी कोशल देश के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नाम से सारथी के रूप में आश्रय पाता है, उसे सूत लोगों के गायन से रानी दमयन्ती का वृत्तान्त ज्ञात होता है, तथा यह भी ज्ञात होता है कि राजा नल की खोज के लिए दमयन्ती ने सभी देशों में सूतों की टोलियाँ भेजी हैं।

कोशल देश होकर आये शक्ति भद्र, मणिभद्र और समंत भद्र नाम के सूत रानी दमयन्ती को राजा ऋतुपर्ण के सारथि बाहुक एवं वार्ष्णेय के विषय

में वृतान्त सुनाते हैं, तथा उसके अश्व विद्या में परम प्रवीण होने तथा विदर्भ में उसकी ससुराल होने का भी समाचार देते हैं। उनके वृतान्त को सुनकर रानी को यह विश्वास हो जाता है कि बाहुक के रूप में राजा नल ही है। अतः वह अपने विवेक चातुर्य की शक्ति से अपनी माँ के साथ मिलकर एक योजना बनाती है कि वह पुनः स्वयम्वर करना चाहती है। साथ ही वह माँ से वचन लेती है कि इस बात को पिता, भ्राता या किसी अन्य को कानों–कान खबर न हो। दमयन्ती अपनी माँ से विश्वस्त ब्राह्मण को कोसल देश भेजने को कहती है, तथा राजा ऋतुपर्ण को स्वयंवर में आने का निमंत्रण देकर जिस दिन ब्राह्मण उनके पास पहुँचे उसके अगले दिवस को ही स्वयंवर की तिथि बताने को कहती है।

रानी दमयंती विश्वास की शक्ति से ओत–प्रोत है। उन्हें पूर्ण विश्वास है उनकी इस युक्ति से राजा नल उन्हें पुनः प्राप्त हो जायेंगे।

रानी दमयन्ती के इस वचन में हमें उनके आत्मबल के दर्शन होते हैं–

दमयन्ती : पुरूष जहाँ दुर्बल हो जाता है वहाँ स्त्री को बल अपने आपसे पाना होता है माँ।[9]

अन्त में बाहुक (राजा नल) महाराज ऋतुपर्ण को लेकर कुंडिनपुर पर पहुँचते हैं। वहाँ कलियुग का बाहुक से वार्तालाप होता है, वह क्षमा माँगता है, तथा अपने क्रियाकलाप पर पछताता है। कलियुग के संवाद से हमें यह ज्ञात होता है कि एक नारी ऊपर से भले ही दुर्बल प्रतीत हो किन्तु वह आत्मबल के सम्बन्ध में पुरूष से कई गुना शक्तिशाली होती है। जैसा कि कलियुग के वचन से प्रकट होता है –

कलियुग : नहीं मुझे शाप मत दीजिए। मैं तो पहले ही जल रहा हूँ दमयन्ती के शाप से। मैं उसे पाना चाहता था। पर वह तो आपको चाहती थी। उसकी निष्ठा अटूट थी। मैं उसे नहीं तोड़ सकता था। तब मैंने चाहा कि मैं आपको भीतर से तोड़ दूँ। मैंने आपके भीतर प्रवेश किया। यह किया मैंने। मैं स्वयं को ही तोड़ रहा था। अब मैं ऐसा क्षत–विक्षत हूँ, परास्त हूँ पूरी तरह। मैं दमयन्ती को सह नहीं सकता था। नहीं झेल सकता था उसका तेज।[10]

राजा ऋतुपर्ण भी दमयन्ती के साहस के प्रशंसक हैं, वह कहते हैं कि मैं उस स्त्री को देखना चाहता हूँ, जो यह साहस कर रही है। पति के रहते दूसरा स्वयंवर।

राजा ऋतुपर्ण के रथ के प्रवेश करते ही दमयन्ती अपनी दिव्य दृष्टि से छद्म वेश में छिपे राजा नल को पहचान लेती है, और अपनी योजना के अनुसार दासी से अनेक तरह से सारथी बाहुक की परीक्षा लेने को कहती है। अन्त में दमयन्ती दासी से राजकुमार इन्द्रसेन एवं इन्द्रसेना को सारथी बाहुक के पास ले जाने को कहती है। बच्चों को देखकर बाहुक की जो मनःस्थिति होती है उसे दासी, दमयन्ती को बताती है। अन्त में दमयन्ती स्वयं राजा नल के समक्ष पहुँचकर पहचान लेती है तथा बताती है कि स्वयंवर की वार्ता एक छल है, इसका प्रयोजन केवल नल को पुनः प्राप्त करना है। नल अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार दमयन्ती के शक्ति, साहस, विवेक, चातुर्य से दोनों का पुनः मिलन हो जाता है।

दमयन्ती झूठे स्वयंवर की वार्ता के लिए राजा ऋतुपर्ण से क्षमा माँगती है। नारी में छिपी अपार शक्ति को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने बड़े ही काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है -

विषम दशा में पड़ कर नारी
मिटने नहीं स्वयं को देती
भीतर ही भीतर वह सारी
दुख की धारा है पी लेती।
दुख ही इक दिन तब बन जाता
दुखियारे का एक सहारा।
शक्ति उसी में वह है पाता!
नहीं दुःख से जो है हारा।[11]

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि हर स्त्री में देवों–सी शक्ति है, ऋषियों–सा धैर्य और ज्ञान है। वो आलोकित करती है – चारों दिशाओं को, मगर उसे ख्याल रखना होगा कि दीप तले अँधेरा न होने पाए। वो स्वाभिमानी हो, अभिमानी नहीं। अंधविश्वासों और रूढ़ियों को तोड़ने का साहस करे। शिक्षित और सुसंस्कृत समाज की नींव का पत्थर बन नारी आज अपने भविष्य की इमारत को स्वयं सुदृढ़ कर सकती है।

आचार्य त्रिपाठी जी ने अपने दमयन्ती नाटक में स्त्री के सभी रूपों में उसके स्वाभिमान, धैर्य, साहस, कर्तव्यनिष्ठा, चारित्रिक बल एवं विपत्ति को दूरदर्शितापूर्वक पहचानने की शक्ति का यत्र–तत्र प्रसंगवश बहुत ही सरल,

सुबोध एवं सहज ढंग से चित्रण किया है। उनके द्वारा सृजित संस्कृत वाङ्मय के अलावा कतिपय हिन्दी ग्रन्थों में भी उन्होंने नारी शक्ति को सशक्त ढंग से उजागर किया है, दमयन्ती उसमें से एक है। इस प्रकार आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने दमयन्ती नाटक के माध्यम से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इस पंक्ति को सार्थकता प्रदान की है कि –

'एक नहीं, दो–दो मात्राएँ, नर से बढ़कर नारी।'

सन्दर्भ :

1. राधावल्लभ त्रिपाठी, दमयंती, नाट्य परिषद, सागर, 1991, पृ. 5, 6.
2. श्रीहर्ष, नैषधीय चरितम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, श्लोक नं. 35,

नवमः सर्गः

3. राधावल्लभ त्रिपाठी, दमयंती, पृ. 9.
4. वही, पृ. 22.
5. वही, पृ. 25.
6. वही, चौथा सर्ग, पृ. 34.
7. वही, पाँचवाँ सर्ग, पृ. 45.
8. वही, छठा सर्ग, पृ. 48.
9. वही, सातवाँ सर्ग, पृ. 67.
10. वही, आठवाँ सर्ग, पृ. 73.
11. वही, सातवाँ सर्ग, पृ. 65.

C-39, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

दमयंती नाटक में लोक चेतना

डॉ. दीपक शर्मा

दमयन्ती डॉ. राधावल्लभ जी त्रिपाठी का मौलिक हिन्दी नाट्य है जिसमें सभी भाव लोक चेतना से समाहित हैं। सभी पात्र, पात्रों की भाषा शैली, अभिनय सभी से लोक चेतना के भाव प्रकट होते हैं। नान्दी पाठ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक का उद्देश्य लोक मंगल की कामना है। जिसमें सर्वेभवन्तु सुखिनः की लोक मंगल कामना की गई है। यही शुभाशंसा लोक चेतना का मूल आधार है। यही लेखक के उत्कृष्ट मानवीय संवेदनाओं का सर्वश्रेष्ठ निर्देशन है।

दमयंती नाटक 3/24

दमयंत्री नाटक में लेखक कलियुग के चलते अपने इस नाटक के नायक नल और नायिका दमयंती के माध्यम से लोगों में यह चेतना जागृत करना चाहते हैं कि हमें किसी भी परिस्थिति में अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि जीवन भी एक नाटक के समान है; इसका अभिनय हम संसार रूपी रंग मंच पर करते हैं और उसके नायक और नायिका हमारी मन और इन्द्रियाँ होती हैं दमयंती नाटक के लेखक डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने इस युग के हर स्त्री–पुरूष को इस नाटक के माध्यम से यह चेतना प्रदान की है कि शास्त्रों के अनुसार इस कलियुग में स्त्रियों को अपना चरित्र और पुरूषों को अपना धर्म नहीं त्यागना चाहिए। आज का मानव क्षणिक लाभ के लिए चरित्रहीन, धर्महीन, कर्महीन होता जा रहा है। अर्थ प्राप्ति के लिए अपना धर्म त्यागता जा रहा है, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो। लेखक यह चाहते हैं कि मानव को उद्देश्य पूर्ति के लिए अपने जीवन में विचार हीन नहीं होना चाहिए। चाहे परिस्थिति जीवन में जो भी हो इसलिए लेखक ने अपने इस नाटक में देवताओं से लेकर कलियुग और कलियुगी पुरूषों के कुत्सित् कार्यों द्यूत, मदिरापान मांस भक्षण आदि के जीवन पर दुष्प्रभावों को दिखाया है और धीरे धीरे ये कलियुगी कृत्य कैसे जीवन में प्रभाव डालकर

हमारे धर्म को नष्ट कर देना चाहते हैं अतः हमें इनसे सदैव सचेत रहना चाहिए।

आमात्य– जुए के खेल में प्रजा को दाव पर रखना अनर्थ है प्रजा राजा की संतान है अपनी संतान को दाव पर रखकर द्यूत क्रीड़ा करने का अधिकार राजा को नहीं है। राज पद स्वेच्छा से छोडने का अधिकार राजा को नहीं है। असमय में इससे मर्यादा टूटती है।

नाटक के आरंभ में कलियुग के विषय में बताया है कि कलियुग आने से धर्म ग्रंथ सब दूर हो गये हैं और मानव विचित्र अर्थात् निषिद्ध कर्मों को करने लगे हैं ऐसा लगता है कि देवता निस्तेज हो गये हैं। अर्थात् उनकी बरदान की शक्ति समाप्त हो गयी है। पाप और रोग बढ़ने लगे हैं मनुष्य अपने धर्म को त्यागने लगा है। प्राणियों में दुरभावना पैदा हो गयी है अर्थात् सभी ओर अमंगल की छाया मडराती दिखाई दे रही है। ऐसे कलियुग के आने का आरंभ इस नाटक में हुआ है।

सूत्रधारः–

सुन रही हो ? यह शोर। यह सचमुच इधर ही आ रहा है।

(नेपथ्य से कलियुग की प्रावेशिकि ध्रुवा गायी जाती है। सूत्राधार और नटी स्तब्ध खडे रह जाते है)

धर्म ग्रंथ सब दूर हुए अति कर्म विचित्र हुए लोगों के
देव हुए निस्तेज निरंतर कैसे पाप, ताप रोगों के
ऐसी अशुभ घड़ी आयी देखो दुखदामी
एक अमंगल की काली छाया मंडरायी।
कलियुग का यह अवतार हुआ,
दुख सुख ने फिर हमें छुआ ।

ध्रुवा समाप्त होते ही कलियुग तेजी से प्रवेश करता है। वह बोना और काले रंग का है, फटे कपडे पहने है, केश अस्त–व्यस्त हैं। मंच पर बैचेनी से लगातार तेज चक्कर लगाता है।

(दमयंती नाटक 1/4)

इस नाटक में जब राजा नल और दमयंती का स्वयंवर होता है। तो उन दोनों के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए स्वयं देवता नल का रूप धारण करके

स्वयंवर में बैठ जाते हैं। ये बात सत्य है कि आज भी प्रेम की परीक्षा ईश्वर जरूर लेते हैं और जब वह सत्य होता है तो आर्शीवाद देते हैं। परन्तु समाज में ऐसे भी लोग है जो किसी के प्रेम , सुन्दर स्त्री ऐश्वर्य को देखकर ईर्ष्या करते हैं और भले ही खुद को नष्ट कर दें परंतु दूसरे लोगों को कष्ट अवश्य पहुँचाते हैं। कलियुग का ऐसा ही रूप यहाँ पर लेखक नें बताया है कि वह स्वयंवर के समय से ही दमयंती को चाहता है परंतु देवताओं के आशीर्वाद को न देखते हुए वह नल को ग्रसित करता है, परंतु दमयंती के शाप के कारण स्वयं नष्ट हो जाता है। उससे पहले देवता उसे रोकते हैं परंतु काम वासना के वशीभूत व उनकी एक भी नहीं सुनता है।

देवता :–

(एक साथ) रुक जाओ, कलियुग रुक जाओ।

जो भी नल को ध्वस्त करेगा।

अपने को अभिशप्त करेगा।

नल नष्ट नहीं हो पायेगा।

नल ध्वस्त नहीं हो पायेगा।

(दमयंती नाटक 1/11)

जब कोई मनुष्य किसी को नष्ट करने की सोचता है तो उसे सामाजिक कुरूतियों जैसे शराब जुआ, वैश्यावृत्ति या चोरी की ओर ले जाता है इससे पहले उसे उसके अंतःकरण में जगह बनानी पडती है। यहाँ पर राजा नल के साथ अपनी छाया डालकर उनको जुए की ओर प्रेरित करता है।

कलियुग :– कौन ? किससे कह रही हो ?

(नेपथ्य से राजा नल मेरे अग्रज मेरे भाई ! मैं तुझे द्यूत के लिए ललकारता हूँ।)

(दमयंती नाटक 2/17)

आज ही हम समाज में जुए जैसी कुरीतियों का सामना करते हुए लोगों को देखते हैं कि जब वे जुआ की लत में पड़ जाते हैं तो परिवार की परवाह किए बिना अपना धन, घर, इज्जत तक दाव पर लगा देते हैं और भिखारियों की तरह जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार महाराज नल के जुए के माध्यम से लेखक ने ऐसे लोगों को समाज के प्रति सचेत किया है कि वो ऐसी आदतें

न डालें, जिससे हमें जीवन में गरीबी, लज्जा, बेइज्जती का सामना न करना पड़े।

दमयंती :– यह मेरी आज्ञा है।

(वृहत्सेना भयभीत दृष्टि से एक बार दमयंती को देखती है फिर जाती हूँ , कह कर तेजी से चली जाती है।) (नेपथ्य से)

एक–एक कर सब हार रहा नल,

फिर भी बाजी लगा रहा नल,

समय उपस्थित है संकट का,

ऐसा ही है खेल जुए का ।।

(दमयंती नाटक 3/21)

मनुष्य जब किसी उच्च पद पर हो अर्थात् राजा हो तो उसे अपने से अधीन या गरीब लोगों की सदैव सहायता करना चाहिए। अगर भाग्यवश कभी बुरा समय उस पर आता है तो ऐसे ही लोग समय पर उसकी सहायता करते हैं, अन्यथा उसके परिजन उसका साथ छोड देते हैं। व्यक्ति को अपने धन, वैभव, अभिमान में कभी निर्धन व्यक्तियों का अपमान नहीं करना चाहिए सदैव उनके लिए हर व्यक्ति के मन में परोपकार, सद्भाव की भावना राजा नल की तरह होनी चाहिए।

स्त्री (1) :– हाँ वह राजा नल ही है वह जुए में हार चुका है– सारा राजपाठ। वह स्त्री उसकी रानी है, पहले तो नहीं बता रहे थे दोनों। मैंने डपट कर पूछा स्त्री से, तब रोते–रोते बताया उसने। सुनो, इस राजा ने हमारी सहायता की थी अकाल के समय। उसने अन्न वस्त्र भिजवाये थे हमारे लिये, हम उसकी सहायता करेंगे।

(दमयंती नाटक 4/29)

राज पद या राजकीय कर्मचारियों को चाहिए कि वे अपने राजकीय कार्य में अपने चरित्र, जाति, धर्म, को सदैव बचाये रखें छोटे से लाभ या आनन्द को लेकर अपनी प्रतिष्ठा या पद का गौरव न गिरायें।

सैनिक (2) :– अरे, मदिरा सदा पवित्र होती है; सूर्यवंश की संतान! इसमें कोई दोष नहीं होता। मदिरा पात्र उठाकर, (पीने का अभिनय कर) आनंद आ गया; बडी उत्तम मदिरा है।

(दमयंती नाटक 4/31)

संसार एक सागर है, इस सागर को अगर पार करना है तो एक दूसरे का सहारा जरूर लेना चाहिए। अगर भाग्यवश विपत्ती के सागर में दोनों जीवन साथी डूब रहे हों तो उनको एक दूसरे का साथ कुछ समय के लिए छोडकर विपत्ति के समय को धकेलने का प्रयास करना चाहिए। चाहे पति–पत्नी हों क्योंकि विपत्ति में सब साथ छोड देते हैं परंतु पत्नी साथ निभाती है।

व्याध :– दो लोग अगर डूब रहे हों तो उन्हें एक दूसरे का हाथ छोड देना चाहिए। एक दूसरे से अलग होकर वे शायद विपत्ति का सागर पार कर जायें या कोई एक उनमें से पार करे।

(दमयंती नाटक 5/45)

संसार में हर तरह के पुरूष होते हैं जो कुछ थोडी सहायता स्त्रियों की करके उनको अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं उस समय स्त्रियों को चाहिए कि वे कैसी भी विपत्ति में हों पर उनको अपना धर्म चरित्र और साहस का त्याग नहीं करना चाहिए। हमेशा सारी परेशानियों का सामना करके आत्म वीरांगना बन कर सामना करना चाहिए।

व्याध :– अरे अब जायेगी कहाँ ?

(दमयंती खड्ग उठाकर अपनी ओर लपकते व्याध की छाती में उस खड्ग को भौंक देती है। व्याध तड़पता है। दमयंती रक्त रंजित खड्ग हाथ में लिये चल पडती है।)

दमयंती नाटक 5/45

आज के युग में कई एक ऐसे महापुरूष हैं जिनके मन में कामना को छोड़कर स्त्रियों के लिए सदैव सद भावना रहती है, ऐसे लोगों को हम संस्कारी कहते हैं क्योंकि संस्कार हमेशा विचारों और धर्म का पालन करने से आते हैं संस्कारवान मनुष्य अपनी अर्द्धांगनी के इतर प्रत्येक नारी को अपनी माता बहिन या पुत्री के रूप में देखता है और अपने कर्त्तव्य का पालन उसकी सेवा करने में समझता है। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह संस्कार हर पुरूष में पनपने लगें तो आज का कलियुग सतियुग में परिवर्तन हो जायेगा। प्रत्येक स्त्री–पुरुष देवी देवता की उपाधि प्राप्त कर लेगा।

पुरोहित :– अपनी–अपनी आस्था की बात हैः मुझे आप में माँ दुर्गा

का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा। आपके दर्शन पाकर में धन्य हुआ, चरणों का स्पर्श तो मैं करूँगा ही। (फिर से झुककर दमयंती को प्रणाम करता है।) हाँ, अब बताइये कौन हैं आप, कहाँ से आयी हैं कहाँ जायेगीं ?

(दमयंती नाटक 5/46)

संसार में दुःख–सुख तो रात्रि और दिन की तरह साथ–साथ चलते हैं परंतु जब किसी नारी और पुरूष पर दुःख आता है तो नारी के कुल, मान, चरित्र की पहचान होती है और वह उस दुःख की परीक्षा में सफल होती है तो आने वाले भविष्य को चेतना प्रदान करती है। अपनी छाप समाज पर सदैव छोड़ जाती है।

बाहुक :– उनसे कहियेगा कि अच्छे कुल की नारी विषम–दशा में पड़कर भी अपने को खो नहीं देती वह सारा दुःख भीतर ही भीतर सह लेती है। यह सह ले जाना एक दिन बडी शक्ति का पुंज बना देता है उसे ......
....

(दमयंती नाटक 6/60)

संसार में मनुष्य ने जन्म लिया है तो उसे हर मनुष्य के साथ जीवन चलाने हेतु जुआ तो खेलना पड़ता है। चाहे वह मनुष्य सतयुगी हो या कलियुगी परंतु आज इस युग में कलियुगी मनुष्य ज्यादा है। जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों पर पाँसा डालते रहते हैं। जब तक कलियुगी छाया लोगों पर रहती है तब तक वे उनके प्रभाव में चलते हैं। जब वे अपने आप को पहचान जाते हैं तो उस छाया की काली पट्टी को उतार कर झुका देते हैं।

ऋतुपर्ण :– मेरी द्यूत कला देखना चाहते हो ? यहाँ पांसे तो हैं नहीं। परंतु इन्हीं विभीतक फलों से मैं तुम्हें दाव खेलना सिखाता हूँ

(रथ से उतरता है और बाहुक को सामने बिठाकर मौन मुद्राओं में पांसे फैंकना बताता है। नेपथ्य से आक्षिप्ति की ध्रुवा गायी जाती है।)

कलियुग आज हताश हुआ है
सोते नर में जो बसता है
जागे नर के आगे अब वह
कलियुग आज परास्त हुआ है।

(दमयंती नाटक 8/72)

हमारे शास्त्रों के अनुसार कलियुग, सतयुग, त्रेता और द्वापर इन युगों के निर्माण का मुख्य कारण मनुष्यों को सतकर्म की ओर प्रेरित करना है। अगर हर युग में मनुष्य अच्छे या बुरे कर्म करता है तो वह देवताओं और असुरों की उपाधि प्राप्त कर लेता है। इस विश्व के निर्माण के लिए उसे युगों की रचना करना जरूरी जिससे हर युग में मनुष्य अपने आपको पहचाने कि मेरा सही स्वरूप क्या है और में क्या कर रहा हूँ मुझे समाज की अच्छाई और बुराई के लिये कैसे कर्म करना चाहिए।

नल :– हाँ वे मेरे ही तो स्वरूप थे, इन्द्र भी, अग्नि भी, वरूण भी और यम भी। मैं ही उन्हें रचता हूँ और फिर से रचूँगा, क्योंकि मैं मनुष्य हूँ। मैं रच सकता हूँ। मैं अपना विश्व बना सकता हूँ; तुम्हें भी तो मैंने ही रचा है। अब मैं तुम्हें कुचल सकता हूँ , मैं नष्ट कर सकता हूँ , तुम्हें।

(दमयंती नाटक 8/74)

विद्या के बिना जीवन व्यर्थ है क्योंकि जब कोई साथ नहीं देता तो विद्या साथ देती है विपरीत समय में हम विद्या से धन या दूसरी विद्या की प्राप्ति कर सकते हैं। वह तो हमारे जीवन का बहुमूल्य रत्न है जो हमारी मृत्यु पर्यन्त भी संसार में जीवन्त रखता है।

ऋतुपर्ण :– चलिये आपको अक्षविद्या मिली, मुझे रथ विद्या और मैं आपका क्या प्रिय करूं।

दमयंती नाटक 9/83

इस नाटक में लेखक ने कलियुग के उदाहरण को देकर राजा से लेकर सैनिक तक, पंडित से लेकर चांडाल तक अर्थात् सारे समाज का विवरण देकर लोगों को चेतना प्रदान की है कि राजा नल की तरह आज भी लोग अपनी मर्यादा को त्याग कर द्यूत, शराब या माँस तक जाते हैं तो उनके भीतर कलियुग हमेशा प्रवेश करेगा और उनके घर में मर्यादा में रहने वाली स्त्रियों को व्याघ जैसे लोगों का सामना करना पड़ेगा। इसके साथ ही हमेशा भूख, गरीबी और फटे वस्त्र भी रहना पडेगा।

लेखक ने नाटक में नायक और नायिका नल दमयंती को पुरोहित और ऋतुपर्ण को मिलाया तो यह सामाजिक चेतना दी है कि मनुष्य का समय भले ही विपरीत आ जाये; अगर वह अपने उद्‌देश्य के प्रति सही है तो उसे अंत में जरूर सफलता मिलेगी और वह अपनी मंजिल तक पहुँच जायेगा। इसमें उसे किसी दूसरे को दोषी न ठहराकर अपने आप में राजा नल की तरह अपनी भूल का स्मरण करना चाहिए।

लेखक ने चारों युगों को लेकर चैतन्य किया है कि उनका निर्माण स्वयं मनुष्य के हाथ में है अर्थात् उसमें अच्छाई है सतयुग है, बुराई है तो कलियुग इसीलिए अगर मनुष्य को अपने परिवार देश और समाज को कुछ देना है तो उसे सामाजिक कुरीतियों का हमेशा विरोध करना चाहिए और समाज के लोगों को इसके प्रति जागरूक करना चाहिए। यही दमयंती नाटक का लोक चैतन्य भाव है।

नबाव साहब मनियर रोड
आरा मशीन के पास शिवपुरी म.प्र.

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत "लहरीदशकम्"– काव्यसंग्रह की प्रासंगिकता

विष्णु मीणा

'लहरीदशकम्' आचार्य त्रिपाठी जी की महत्त्वपूर्ण रचना है, जो आज के समय की प्रासंगिकता की दृष्टि से एकदम सटीक एवं विचारणीय है। 'लहरीदशकम्' एक काव्यसंग्रह है, जिसमें दश लहरियाँ हैं। इसका प्रकाशन सन् 1992 में प्रथम संस्करण और सन् 2003 में द्वितीय संस्करण के रूप में संस्कृत परिषद्, सागर से हुआ है। इसके दश–लहरी –काव्य निम्न हैं –

(1) वसन्तलहरी, (2) निदाघलहरी, (3) प्रावृङ्लहरी,
(4) धरित्रीदर्शनलहरी, (5) जनतालहरी, (6) रोटिकालहरी,
(7) मृत्तिकालहरी, (8) नर्मदालहरी, (9) अद्यापिलहरी,
(10) प्रस्थानलहरी।

"लहरीदशकम्" की सभी लहरियों में वर्तमान सन्दर्भ में हो रहा परिवर्तन जिसकी विषमता आज के मानव समूह के लिए एक बड़ी चुनौती है, को विषय बनाया गया है।

प्रथम लहरी 'वसन्त' में कवि ने आज के समय के प्राकृतिक परिवेश के दूषित हो जाने के कारण वसन्त का आगमन कठिन हो गया है, जिसके कारण आज के मनुष्य का वसन्त भी खतरे में पड़ चुका है। आज के समय में वसन्त आगमन का अनुभव करना एक कठिन बात है। उस वसन्त को हमारे आचार्य कवि, कविताओं में खोजने का प्रयास करते हैं –

धूमावृत्तानि वदनानि तथाध्वगानां
वायुं प्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूयः।
धूल्याकुलानि विविधानि च वाहनानि
निष्पिष्य गाढमिह यान्ति वसन्त शोभाम्।।[1]

अर्थात्, 'वाहनों की अतिशय भीड़ के आने–जाने से सड़कें आकुल–व्याकुल हैं, दिशाओं के मुँह पेट्रोल की गन्ध से भर गये हैं, रास्ते पर चलते लोगों के मुँह धुएं से घिर गये हैं, वे बार–बार प्रदूषित वायु को निगल रहे हैं। धूल से व्याकुल विविध वाहन वसन्त की शोभा को कसकर पीसते हुए निगलते जा रहे हैं।' इस नव नागर सभ्यता ने बसन्त को पूर्ण नष्ट कर दिया है तथापि कवि अपनी कविता की रचना कर उसे बचाने का प्रयास कर रहा है।

आज के शिक्षित, युवा वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता हावी हो चुकी है। छात्रों द्वारा दीवारों पर लिखे अनर्गल शब्द जिन्हें शिष्टजन वक्र दृष्टि से देखते हैं इन अक्षरों के ताप से भारतीय सभ्यता झुलस गयी है –

"छात्राश्च भित्तिषु लिखन्ति निरर्गलानि,
वाक्यानि शिष्टजनवक्र दृशेक्षितानि।
तापं तदक्षरगतं किल भावयन्त्यः
किञ्चिद् भवन्ति चपलाश्चटुलाश्चिरण्ट्यः।।"[2]

सम्प्रति समय में भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पुर्नजीवित करने की आवश्यकता है, तभी भारत की सही उन्नति हो सकती है। क्योंकि आज का युवावर्ग पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करता जा रहा है। इस प्रकार अगर हमारी युवा पीढ़ी देश की समस्याओं के प्रति जागरूक न होकर दूसरों की नकल करेगी तो देश का भविष्य कहाँ रहेगा? किसी भी देश की प्रगति के लिए उस देश की युवा पीढ़ी में एक नई चेतना विकसित की जानी चाहिए, जिससे आज की विषम समस्याएँ आतंकवाद, भ्रष्टाचार भाई–भतीजावाद इत्यादि का सही समाधान किया जा सके। राजनीति और प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार को कवि ने निम्न पद्य द्वारा अभिव्यक्त किया है –

उत्कोचराशिमधिगत्य सुखेन कश्चित्
पीत्वाप्रमादमदिरामधिकारमत्तः।
वासन्तिके विहरतीव सदाऽधिकारी
कार्यालयेऽप्यकृतकृत्य कुकृत्यसाक्तः।।[3]

अर्थात्, आज का धनिक वर्ग और अधिकारीवर्ग गरीब जनता से रिश्वत पाकर प्रमाद की मदिरा पीकर इतना मतवाला हो गया है, कि अपने सारे अधि कार ही भूल गया है। अपने कर्त्तव्यों का पालन न करके अकरणीय कार्य करता है, उसे अपने कार्यालय के वातानुकूलित कमरे में ही सच्चा वसन्त दिखाई देता है।

'निदाघलहरी' में कवि ने जनता की दुर्दशा व आतंकवाद से विनाश, का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि ने इसकी रचना ग्रीष्मकाल में की है। उस समय की सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के ताप से जल रहे पशुओं, जानवरों और मनुष्यों की वेदना से कवि अत्यंत दुःखी है, जिससे आज के समय में हो रही तापमान की वृद्धि परिलक्षित होती है।

निदाघलहरी में कवि ने वर्तमान समय की अव्यवस्थाओं का दुःखद वर्णन किया है–

''सद्यो जलव्यवस्था स्यादित्याश्वासयति प्रजाम्।
मारूतिं च समारुह्यमहापौरः समागतः।।''[4]

इस पद्य में, प्यास बुझाने के लिए नलों में पानी नहीं मिलता है। नगर व्यवस्थापक महापौर मारुति पर सवार होकर आता है और जनता को आश्वासन देता है, कि जल की व्यवस्था शीघ्र ही हो जाएगी, लेकिन वह शायद ही, हो। कवि का अभिमत है, कि भूखे लोग ऐसा कोई अपराध नहीं करते हैं, जैसा कि आज के बड़े–बड़े लोग, जिनके पास सब कुछ होते हुए भी उनका पेट नहीं भरता है और वे इसके लिए बड़े–बड़े घोटाले कर डालते हैं –

''बुभुक्षितः करोत्येव पापानीति वचो वृथा।
उदरम्भरयः किं किं पापमत्र न कुर्वते?।।''[5]

'प्रावृङ्लहरी' में कवि ने वर्षा ऋतु का कुछ इस प्रकार वर्णन किया है, कि वर्षा ऋतु का आगमन होने पर ग्रीष्म ऋतु से सन्तप्त लोग राहत की सांस लेते हैं। उनके चहरों पर खुशियां छा जाती हैं। वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा हमारे भारतीय किसान तो इस प्रकार करते हैं, जैसे कि एक भूखा शिशु अपनी माँ की प्रतीक्षा करता है। हमारे कवि ने भी वर्षा को माता की उपमा से अलंकृत किया है –

''समायाता इमा वर्षाः श्यामाग्रैः स्वपयोधरैः।
पाययन्त्यः पयस्तूर्ण प्रजाभ्यो मातृवत्सलाः।।''6

प्रावृङ्लहरी में कवि ने वर्षा ऋतु का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है, जब वर्षा ऋतु आती है, तो चारों ओर खुशियों का वातावरण उपस्थित हो जाता है।

'धरित्रीदर्शन–लहरी' में कवि ने अपनी विमानयात्रा से सम्बन्धित स्वानुभवों का वर्णन किया है। कवि ने इस लहरी में, पहले विमान के धीरे–धीरे धरती पर चलने और फिर ऊपर उड़ने तथा धरती पर उतरने का, बड़ा रोचक वर्णन किया है। कवि विमान यात्रा के दौरान धरती का दर्शन करने को इच्छुक है। कवि को अपनी धरती से गहरा लगाव है।

'जनता–लहरी' में कवि ने उस दीन दुःखी, गरीब जनता की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसका धनिक एवं अधिकारी वर्ग निःसंकोच शोषण करने में लगा हुआ है। कवि चाहता है, कि हमारे देश की गरीब जनता को जागरूक होना चाहिए ताकि आज दूषित अव्यवस्था को समाप्त किया जा सके। कवि इस जनता को, हृदय में स्थित नारायण को समझने, का प्रयास करता है, उसकी पीड़ा को समझे बिना हमारे शास्त्रों का अध्ययन, पुराणों और धर्म की चर्चा करना व्यर्थ है –

"शास्त्रस्याध्ययनं वृथाऽधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा
वैफल्यं तु गता कथापि सकला पौराणिकी शाश्वती।
नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितो
नो ज्ञातो यदि नो कुतोऽस्ति जनतोद्बोधाय यत्नो न वा।।"[7]

'रोटिकालहरी' में कवि ने अपनी एक अनूठी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। रोटी को जीवन का आधार बनाकर कवि ने इसकी प्राप्ति की अद्भूत और अलंकारिक अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। जहाँ ये रोटी एक व्यक्ति को रात दिन परिश्रम करने के बाद सुलभ होती है, वहीं दूसरा व्यक्ति घर बैठे मुफ्त में ही इसे प्राप्त कर लेता है तो किसी को यह रोटी हाथ फैलाकर भिक्षा मांगने पर प्राप्त होती है –

"केनचित् प्राभृतैः प्राप्यते रोटिका
केन वोत्कोचमादाय सा प्राप्यते।
अग्रहस्तं पुरः सारियत्वा मुहु
र्दीनदीनैः स्वरैः केनचिद् भिक्ष्यते।।"[8]

कवि रोटी को केन्द्र बिन्दु के रूप में देखता है, जो सभी कार्यों की इतिवृत्तता का मूल है, उनका मानना है कि व्यक्ति किसी भी काम को रोटी की दम पर ही करता है। रोटी को बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है, लेकिन

यह विडम्बना है, कि कुछ लोग रोटी के लिए भी तरसते हैं। रोटी का महत्व कवि के इस पद्य में निम्न प्रकार है –

"रोटिका काव्यवर्ण्य कथं शक्यते
कर्तुमित्येष यो भाषते दूषकः।
धिक्कृतिं रोटिकाया बलेनैव स
प्रेरयत्येव सत्यं तथा नेक्षते।।"[9]

'नर्मदालहरी' में कवि ने नर्मदा नदी को एक देवी के रूप में वर्णित किया है। कवि के इन विवेचनों से ज्ञात होता है, कि वे प्रकृति–प्रेमी हैं, क्योंकि उन्हें इस बात का पता है, कि जिस देश में नदियों की बहुलता है और जिन नदियों से यह देश कभी हरा भरा रहता था, लेकिन वे नदियां आज सूख भी गई हैं और प्रदूषित भी हो चुकी हैं। यहाँ कवि को दुःख है, कि आज के मानव ने अनियमित रूप से प्रकृति से छेड़छाड़ करके सम्पूर्ण वातावरण को प्रदूषित कर दिया है।

'मृत्तिकालहरी' में कवि ने मिट्टी की अपूर्व महिमा का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत किया है। मिट्टी, एक ऐसी दिव्य और शाश्वत वस्तु है, जिसके ऊपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना होती है। मिट्टी अपने एक रूप में होते हुये भी, इस जगत् को नाना रूपों में प्रकट करती है। यह मिट्टी ही शाश्वत और सनातन है, जो बनती है, मिटती है तथापि वह मिट्टी ही रहती है और उसके द्वारा निर्मित यह दृश्यमान जगत् उसी के जैसा निर्मित तो होता है, किन्तु पूर्णतः नष्ट हो जाता है –

"प्रजायते प्रवर्धते प्रभिद्यते प्रलीयते,
समस्तवस्तुजातमत्र भंगुरे प्रपञ्चके।
इयं न भिद्यते न वा प्रहीयते न लीयते,
विनाशमेति नैव वा समस्तवस्तुषु स्थिता।"[10]

'अद्यापिलहरी' में कवि ने संसार की सारी विसंगतियों और निराशाओं के बीच, जीवन में आस्था की खोज की है। कवि कहता है, भले ही हमारी संस्कृति, धर्म और परंपराएँ ह्रासित हो गयी हैं, लेकिन आज भी आशा और विश्वास बचे हुये हैं, जो कवियों को काव्य लिखने के लिए, दार्शनिकों को चिन्तन करने के लिए और राष्ट्र सेवी व्यक्तियों को राष्ट्र–रक्षा के लिए प्रेरित

करते हैं।

'प्रस्थानलहरी' में कवि ने यात्रा के समय उठने वाली भावतरंगों को रूपायित किया है। 'व्यक्ति यात्रा पर जाता है और पुनः घर वापिस आने के लिए कितना लालायित रहता है,' इस पर कवि ने अपनी स्वानुभूति को कविता में निबद्धित किया है।

सन्दर्भ

1. बसन्तलहरी–18
2. वही,– 35
3. वही, – 37
4. निदाघलहरी–4/8
5. वही, 10
6. प्रावृड्लहरी–1/1
7. जनतालहरी – 4
8. रोटिकालहरी–33
9. वही, 41
10. मृत्तिकालहरी, 25–26

सुशीला रूपक में नारी सशक्तिकरण

बलभद्र ब्राह्मण

साहित्य समाज का दर्पण है, किन्तु संस्कृत साहित्य मानव के अन्तःकरण का दर्पण है मानवीय चेतना का समुन्नत विकास संस्कृत साहित्य द्वारा ही सम्भव है ।

अरस्तु का कथन है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज का आधार नारी है नारी के बिना मानव सृष्टि की कल्पना ही संभव नही है। नारी के द्वारा ही सामान्य मनुष्य में प्रेम का अंकुरण होता है। यही प्रेम जब भगवत्प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाता है, तो मनुष्य देव बन जाता है। हमारा गार्हस्थ्य जीवन भगवत्प्राप्ति का एक सोपान मात्र है। भगवान् की प्राप्ति अनुराग से सुलभ है। प्रेम रूपी साधना से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। स्त्री मानव के जीवन में आदर्शवाद को पल्लवित करती है। वाल्मीकि कवि ने कहा है कि पुरूष की आत्मा नारी है। कवि के इस व्यापक भाव से ही नारी सशक्तिकरण की पुष्टि होती है :–

आत्मा हि दारा सर्वेषां, दारसंग्रहवर्तिनाम्।

आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति।।[1]

आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में नारी की प्रखर तेजस्विता का वर्णन स्थान–स्थान पर किया है। स्त्रीत्व की गरिमा और दीप्ति को कवि उपस्थित करते हैं राम वन–प्रयाण के अवसर पर वशिष्ट के मुख से वाल्मीकि कहलवाते हैं, कि सीता को वन नहीं जाना होगा। सीता स्वशक्ति का उपयोग करेगी तथा वह राम के अधिकृत आसन पर स्थित होगी।

'न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।

अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्।।[2]

वाल्मीकि ने स्पष्ट किया है, कि नारी स्वयं अपनी तेजस्विता से रक्षित है । उसे किसी पुरुष के आश्रय की आवश्यकता नहीं है।

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा।[3]

प्राचीन काल से ही ऋषियों ने नारी को शक्तिस्वरूपिणी माना है। प्राचीन संविधान मनुस्मृति में मनु ने नारीसशक्तिकरण का भाव पोषित किया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः।।[4]

इस श्लोक में मनु ने बताया है कि नारियो के प्रति सम्मान, आदर तथा स्नेह की भावना रखनी चाहिए क्योंकि परिवार की पोषिका, संचालिका नारी है। मनुष्य अपने लक्ष्य की चरम सीमा तक तभी पहुंच सकता है जब वह नारी का सम्मान करें। नारी सशक्तिकरण के इसी भाव को पोषित करने का कार्य आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के द्वारा आधुनिक काल में सुशीला नाटक में किया गया है। आचार्य त्रिपाठी ने नान्दी में ही नारीसशक्तिकरण की छटा प्रकीर्ण की है। विधाता ने नारी की रचना करते समय दुःखों का ढेर लेकर पञ्चतत्वों को गुम्फित करते हुए अश्रु की धारा में ढेर को साना तथा क्रोधरूपी अग्नि की भट्टि में तपाकर स्त्री की रचना की ।

जब विधाता ने स्त्री की रचना ही सशक्तिकरण के तत्वो से की है तो स्त्री निश्चित रूप से शक्तिशाली होगी। तथा प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने वाली होगी। क्योंकि जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। तभी तो विधाता ने स्त्री के अवयवो को तपाया है ताकि नारी भी पूर्ण रूप से सहनशील हो सके ।

दुःखं येन सुखेन सारसहजं सम्मिश्रय सङ्गुम्फितं

आकाशः पवनस्तथा च धरणी सम्मेलिता अश्रुभिः।।

क्रोधाग्नौ च सुपाच्य तध्दि सकलं यो लीलया निर्ममे।

नारीं कामपि तामपूर्वरचनां तस्मै नमो वेधसे।।[5]

सुशीला एक सहनशील पत्नी है जो गरीबी के कष्टो को सहन करती है तथा अपने कर्त्तव्यों का निर्वाहन करती है ।

गृहे अन्नस्य कणोऽपि नास्ति। दुग्धं न निस्सरति मम वक्षसः।[6]

सुशीला के घर में अन्य का कण भी नही है फिर भी वह विचलित नही होती और पत्नी के कर्त्तव्यों को निभाती है किन्तु वह माँ होने के नाते अपने पति से क्रोध में कहती है कि गाँव छोडकर चाचा के घर चलते हैं ताकि बच्चे

का शिक्षण अच्छी तरह से हो सके। वे दोनो गाँव छोडकर चले जाते है किन्तु वन में पुत्र और पति दोनो से सुशीला बिछुड जाती है फिर भी वह धैर्यता को धारण करती है। नाटककार ने नारी की सहनशीलना की पराकाष्टा को स्पष्ट किया है।

पत्नी के लिए पति प्रिय होता है, और माता के लिए पुत्र किन्तु दोनो का बिछुड़ जाना एक नारी के लिए विषम परिस्थिति है। लेकिन सुशीला इस दुःख रूपी अग्नि को सहन करती है। इसी दुःख से व्याप्त सुशीला वन में चिन्तामग्न रहती है, तभी सबलसिंह राजा आता है तथा सुशीला से वार्तालाप करता है –

सबलसिंहः –त्वं कः

सुशीला –त्वं कः

सबलसिंहः–अहं सबलसिंहोऽस्मि।

सुशीला –अहं प्रबलसिंहोऽस्मि।[7]

यह संवाद सुशीला के निडर होने का प्रमाण देता है सुशीला निर्जन वन में दुःखी होने पर भी साहसी भाषा में राजा को उत्तर देती है। शक्तिशाली सुशीला ने अपनी आत्मरक्षा के लिए राजा सबलसिंह पर छुरिका से प्रहार किया था जिससे राजा कि मृत्यु हो जाती है।

सबलसिंहः – अन्तस्त्वां द्रक्ष्यामि। सर्वं ते साहसं निस्सारयामि तव देहात्।

स्थास्यति करालकारागारे। कः कोऽत्र? गृह्यतामियं पिशाची। मामेव चक्षुषी दर्शयति।

सुशीला – वस्त्रेषु गोपितां छुरिका निष्कास्य सबलसिंहस्य वक्षसि प्रहरति।

सबलसिंहश्चीत्करोति।[8]

आचार्य त्रिपाठी ने यह स्पष्ट किया है, कि यदि नारी पर अत्याचार हो तो वह शक्ति का रूप धारण करके अत्याचार करने वाले का संहार कर सकती है। इस नाटक में नायिका विषम परिस्थितियों का सामना करती है वह पत्नि, माता, शक्ति, रानी के रूपो में आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि नारी प्रतिकूल परिस्थितयों से संघर्ष करके मानव जीवन के विकास में योगदान प्रदान करती है।

सन्दर्भ :–

1. वाल्मीकि रामायण – 2/37/24
2. वही – 2/37/23
3. वही – 6/106/15
4. मनुस्मृति – 3/56
5. सुशीला प्रेक्षणकम् – 4 (नान्दी)
6. वही– पृ.क्र. 11
7. वही– पृ.क्र. 18
8. वही– पृ.क्र. 24

संस्कृत शिक्षक, ग्यारसपुर विदिशा (म0प्र0)

सुशीला नाटक में सामाजिक चेतना

प्रदीप दुबे

संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध उक्ति है – **"काव्येषु नाटकं रम्यम्"** अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय (रोचक) होता है, जिसे आखों द्वारा देखने और कानों द्वारा सुनने से मन आह्लादित होता है। इसलिए नाटक को चाक्षुष् यज्ञ की संज्ञा दी गई है , नाटक के विषय में भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है :–

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम् ।। 1

विभिन्न प्रकार के भावों से समन्वित, सुख–दुःख, शोक–मोह अनेक अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण, लोक सामान्य जन के चरित्रों का अभिनयात्मक अनुकरण नाट्य है।

नाट्य केवल प्रख्यातवंशी राजाओं का वर्णनकर्त्ता, नायक–नायिकाओं की श्रृङ्गारिक काम–क्रीडाओं या दैव – मानुषी प्रक्रियाओं का प्रस्तुतकर्त्ता न होकर लोक में व्याप्त लोक रीति, लोक चरित, लोक कथाओं का वर्णनकर्त्ता भी होता है, जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है:–

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते।[2]

अर्थात् – रूपक में सुख–दुःख मोहात्मक नानारसों वाला लोक चरित दिखाई देता है।

वर्तमान समाज में व्याप्त, सामाजिक क्लेश, संबंध, आंतरिक आवेश सामाजिक सुख–दुःखों का प्रदर्शक भी होता है। इसी क्रम में प्राचीन कवियों द्वारा रचित नाटक भी इसी तथ्य के पोषक हैं– भवभूति का 'मालतीमाधवम्', शूद्रक का 'मृच्छकटिकम्' आदि रूपक भी इसी श्रेणी में आते हैं। इसी क्रम

में लोक प्रचलित एक लोककथा को आचार्य बच्चूलाल अवस्थी ने एक श्लोक का रूप दिया जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

हत्वानृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं
देशान्तरे स्वयमहं गणिका स्मि जाता ।
पुत्रं पतिं समधिगम्य च वृक्षदग्धं
शोचामि गोपगृहिणी कथमल्पतक्रम।।[3]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने इसी को आधार बनाकर 'सुशीला नाटक' की रचना की है। इस नाटक में आज के समय में व्याप्त मनुष्य की मानसिक अस्थिरता, स्त्रियों की आंतरिक छटपटाहट, घरेलू हिंसा, परस्त्रीगमन, गलतदृष्टि से देखना, भुखमरी, भाग्यवादिता, राज्यलिप्सा, कामासक्ति, झूठ, छल–कपट आदि का वर्णन बडे ही रोचक ढंग से किया गया है। सुशीला नाटक के प्रमुख सामाजिक पक्षों का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से है :–

स्त्रियों की स्वाभाविक प्रवृति :– प्रथम दृश्य में ही पांच ग्वालिनों के साथ सुशीला प्रवेश करती है, जो अपने आप में खोई हुई है। अपने पूर्व कृत्यों का बखान करती है, बड़–बड़ाती है, किसी बात का कुछ और जबाब देती है, जो अन्य स्त्रियों को अच्छा नहीं लगता। स्त्रीस्वभाव के अनुसार वे आपस में तरह–तरह की बातें करती हैं और सुशीला के व्यवहार की आलोचना करती हैं और उसका समाधान भी करती जाती हैं। बातों ही बातों में यह भी बता जाती है कि सुशीला भोलू की रखैल पत्नी है तथा उसकी पहली पत्नी भोलू की मार खाने से स्वर्ग सिधार गई है। वे सब स्त्रियां एक ही बात पर घंटो तक बहस करती हैं। शंका भी उठाती हैं और स्वंय ही समाधान कर लेती हैं। जैसा कि उनका स्वभाव ही होता हैं, वहीं सुशीला स्त्री जीवन पर व्यंग्य करती हुई गाती है :–

वयो व्यतीतम् अङ्गंगलितम् शय्याया आस्तरणे,
नाहं शयिता, नाहं मुदिता, मृदिता संसरणे ।
आश्वासो न क्षणमपि लव्धोः मया जीवने न वा मरणे ।। [4]

स्त्रियों की स्वतंत्रता के प्रति लालसाः– सुशीला रूपक में स्त्रियां घरेलू चारदीवारी में घुटकर मरना नहीं चाहती है, अपितु स्वतंत्रता से विचरण करना चाहती हैं। एक ग्वालिन कहती है कि हमारा गांव–गांव जाकर छाछ बेचना हमारी रोजी–रोटी भी है और हमारे सैर–सपाटे मनोरंजन का साधन

भी। नहीं तो हम वामन – ठाकुर की घरवालियों की तरह घुट–घुटकर मर जायें.। साथ में वह यह भी उजागर करती है कि दिन के सैर सपाटे के बाद रात्रि में अपना घर ही भला है क्योंकि अकेली स्त्री के लिए दिन भले ही अनुकूल हो जाये रात्रि नहीं। वह कहती है :–

सत्यमियमाह। यदि न गृहाद् बहिर्गच्छामः तर्हि कुलवइवध्व असूर्यम्पश्या भविष्यामः। गृहे मरिष्यामः।[5]

अनुचलित प्रवृति का संकेत व समाधान :– नाटक में एक ग्वालिन बताती है कि धनिकों की चाहे स्त्री हो या पुरुष उनकी प्रवृति कितनी अधम होती है। बामनों की स्त्रियाँ ऐसे छाछ लेती हैं जैसे कि दान ले रही हों, और ठाकुरों की स्त्रियाँ उधार लेती हैं जो कभी नहीं चुकाती। सुशीला व्यंग्य करती हुई कहती है :–

" इदानीन्तनाः क्षत्रियाः ऋणं कृत्वा तक्रं पिबन्ति न घृतम्।"[6]

एक ग्वालिन कहती है कि किसी के घर मे मर्द छाछ लेता है तो तुरंत पैसा तो देता है, किन्तु उसकी दृष्टि गलत होती है। एक दिन सुशीला के घरवाले ने उसका हाथ पकड़ अंदर खिचने की कोशिश की थी। लेकिन इस बात को दबा दिया गया क्योंकि यदि घर पर बताती तो घर से निकलना बंद हो जाता और यदि बस्ती में बताती तो छाछ बिकना बंद हो जाता, यही तो होता है वर्तमान समाज में अपराधियों का पूजा जाना और जिसके साथ अपराध हुआ हो उसका जीना दुष्कर हो जाना। कवि ने सुशीला के माध्यम से इसका समाधान बताते हुये कहा है :–

" न इदानीं भेतव्यम् । यावत् बिभेमः तावदेव भाययन्ति पुरुषा अस्मान् यदि साहसं कुर्मस्तर्हि न किमपि कुर्यात् पुरुषः ।।[7]

रूढ़िवादिता–भाग्यवादिता :– सुशीला के पति पं देवशर्मा सनातनी ब्राह्मण ज्योतिषी, कथावाचक ब्राह्मण है। किन्तु वे रूढ़िवादी हैं, अपने धर्म में अडिग हैं, कथा बाँचने या पूजा पाठ के अलावा कुछ और कार्य नहीं कर सकते। चाहे बेटा भूखा मर जाये या पत्नी के शरीर पर एक भी वस्त्र न रहे शुद्ध–अशुद्ध, पाठ–पूजा मे विश्वास करने वाले हैं, भाग्य के भरोसे बैठने वाले हैं, किन्तु जीवन दुष्कर है। सुशीला तंग आकर कह उठती है :–

"तर्हि एवमेव निष्क्रिय आस्व ब्राह्मणदेव ! कामं म्रियेतां तव भार्या पुत्रश्च"। [8]

वात्सल्यमयी–पतिव्रता के रूप में सुशीला :– सुशीला वत्सला एवं पतिव्रता स्त्री है। उसे अपनी भूख या अभाव की चिन्ता नहीं हैं। उसे चिन्ता है तो अपने पुत्र किसना की। पति द्वारा अनेको बार झिडकी देने पर भी वह अपने पुत्र को कृष्ण की जगह प्यार से किसना कहती है। वह पतिव्रता स्त्री है, पति के साथ नोंक–झोंक करती है ,ताने देती है, पर पति के मुख से अचानक ऐसा सुनकर की तुमसे पहले तो हमें मर जाना है, सुनते ही लपककर पति के मुख पर हाथ रख कहती है :– **''मा तावत्! न कदापि मुखादेवं विधं वचनं निस्सारणीयम्''**[9] भूल से भी कभी ऐसा मत कहना। यहाँ भारतीय नारी का सुन्दर चित्रण आचार्य जी ने किया है। भारतीय नारी भले ही अनेक अभावों में जिये किन्तु पत्नी से पूर्व पति की मृत्यु होना तो दूर, ऐसी बात का सुनना भी उसे स्वीकार नहीं है।

पुत्रेष्णा की प्रवृत्ति :– सुशीला रूपक में दर्शाया गया है चाहे राजा हो, प्रजा हो, ब्राह्मण हो, शूद्र हो, स्त्री हो या पुरुष हो, पुत्र पाने की प्रबल इच्छा सदा ही सब में रहती है। काशी का राजा मणिभद्र पुत्र प्राप्ति के लिए अनेकों व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, होम, आदि करता है। किन्तु पुत्र प्राप्ति नहीं होती है। जब वह जंगल में उस सुशीला के पुत्र को अकेला पाता है तो वह उसे स्वीकार कर लेता है और स्वयं ही तर्क देकर मन्द स्वर में तीन बार ''यह पुत्र किसका है ? ''कहता है लेकिन प्रत्युत्तर न सुनकर'' मौनं सम्मतिलक्षणम्'' का तर्क देकर उस बालक को ग्रहण कर लेता है । इससे ज्ञात होता है कि पुत्रेष्णा कितनी प्रबल होती है। राजा कहता है :–

'' प्रभुः कथयति गृहाण गृहाण। तर्हि गृहणामि। अयं उत्थापितः अयं च गृहीतो बालकः। इदानीमयं मम पुत्रो जातः ''[10]

निर्भीक स्पष्टवादी भारतीय नारी :– सुशीला जंगल में एक निःसहाय लेकिन निर्भीक, बदहवास किन्तु स्पष्टवादिनी भारतीय नारी के रूप में उपस्थित होती है। जब उसे पति और पुत्र के खो जाने पर भटका हुआ मथुरा का राजा सबलसिंह मिलता है तो वह तो वह बातों–बातों में उसका गला पकड़ लेती है । वह कहती है कि तुम राजा सबलसिंह हो तो हम राजा प्रबलसिंह हैं। वह कहती है कि मुझे मेरे पति के अलावा सब ''ऐरे गैरे नत्थू खैरे'' हैं, तुम राजा हो तो क्या ? उसकी बातें सुनकर राजा प्रबल सिंह कहता है–

''साधु साधु । हे भारतीयनारि ! धन्यासि त्वम् । तवैव कारणात् सर्वं जगत् अवस्थितम्। [11]

कामुक–लम्पट कायर शासक वर्ग – सुशीला रूपक में वर्णित है कि तत्कालीन शासक वर्ग वासनाओं में लिप्त, डरपोक एवं विलासी है। मथुरा का राजा प्रबलसिंह कायर है सैनिकों के अभाव में वह एक दम भयभीत सुशीला से गला भी पकड़वा लेता है। कामुक इतना कि कैसे भी करके सुशीला को पाना चाहता था। डरपोक भी इतना कि अपनी ही रानियों से डरता था। वहीं काशी का राजा कृष्णपाल सिंह कामुकता में एक साधारण सी गणिका पर भी आसक्त हो कर उसके साथ रमण करता है। उम्र का अन्तर भी नहीं देखता। वह तर्क देता हुआ कहता है

"आनन्दं लब्धास्मि । अनन्दाद्ध्येव इमानि भूतानि जायन्ते आनन्दं प्रयन्ति आनन्दं संविशन्ति चेति उपनिषदः कथयन्ति । आनन्द एव ब्रह्म । " [12]

राज्यपद की लालसा :– साधारण व्यक्ति से लेकर महान् व्यक्ति तक सभी को राज्य पद, सम्पत्ति की ही चाह है । मृत्यु के मुख में बैठा व्यक्ति भी राजा बनना चाहता है जहॉ प्रथम मे ही पं. देवशर्मा अपने पुत्र कृष्ण के राजा बनने की घोषण करते है वही सुशीला कहती है कि मेरे चाचाजी के यहॉ चैनपुर चलो, उनके पास जमीन जायदाद है जो उनके मरने के बाद हमारी हो जायेगी। वहीं काशी के राजा मणिभद्र का भाई क्षय रोग से ग्रसित होते हुऐ भी कृष्णपाल के राजा बनाये जाने पर आक्षेप करता है तथा स्वयं राजा बनना चाहता है। अन्त में कृष्णपाल व सुशीला को मृत्यु दण्ड सुनवाकर राजा बन जाता है और मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है। भला पद की लालसा किसको नहीं होती है?

धार्मिक केन्द्रों पर आक्षेप :– जिन्हें धर्म का केन्द्र समझा जाता है मोक्षदायिनी स्थली के रूप मे पुराणों में अनेक व्याख्यान मिलते है। वह मथुरा और काशी जैसे देव स्थलों पर ग्वालिनों का छाछ बेचने को जाना सुरक्षित नहीं है। वहाँ भी अन्यायी, बलात्कारी, चोरों का डेरा है। विश्वनाथ के मंदिरों के रास्तों पर भी वेश्याओं का जमावड़ा है नाबालिग कन्यायें भी जबरन कोठों पर बैठाई जा रही हैं स्वंय राजा भी उन वेश्याओं के नृत्य में रमण करता है उसका कथन है :–

"नाहं कामये तरुणी। नाहं कामये बालाः। अस्तु अलं विचारेणइदानीम्। नायं विचारस्य कालः। अयमस्माकं व्यभिचारस्य कालः।। [13]नाटककार ने 'सुशीला' स्त्री पात्र के माध्यम से नाटक में वर्तमान

की सामाजिक व्यवस्था, स्त्री विवशता का विवरण मंच के माध्यम से किया है।

'सुशीला' अर्थात् सुन्दर शीलवाली, चरित्रवाली स्त्री जो भाग्य के वशीभूत होकर समाज के अनेकों रूपों में पहुँचती है। हर जगह वह आशाभरी दृष्टि से देखती है। किन्तु मिलता है तो केवल आत्मघात, उसका देहशोषण, उसके आत्मसम्मान को ठेस। सुशीला का अपने चाचा के यहाँ चैनपुर जाना उसके पुत्र और पति का बिछोह हो गया, सुशीला का मथुरा की रानी बनना उसके पति और मथुरा के राजा की मृत्यु का कारण हो गया। सुशीला का काशी पहुँचना वेश्यालय पर पहुँचना हो गया। सुशीला का शिव की स्तुति गाना राजा की रमणी बनना हो गया, और सुशीला को पुत्र का मिलना पुत्र की मृत्युदण्ड का कारण हो गया, और मटकी का फूटना उसका भोलु से वियोग होने का कारण हो गया। ऐसे समय और समाज के थपेड़ों से आहत सुशीला का चित्रण इस नाटक में किया गया है। सुशीला के निम्नलिखित कथन में कवि ने समाज में व्याप्त बुराई पर कठोर प्रहार किया है:-

काशीं न यामो, मथुरां न यामः न यामो ग्रामं स्वीयम्।
नो हर्म्यं नो रथमिच्छामः इच्छामः स्वीयकुटीरम् ।। [14]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी समाज के सजग साहित्यिक प्रहरी हैं। उनके सुशीला नाटक में समाजिक चेतना पद-पद पर दृष्टिगोचर होती है ।

सन्दर्भ

1. नाट्यशास्त्र (1/112)
2. मालविकाग्निमित्रम्- (1/4)
3. सुशीला नाटक (पृष्ठ 3/श्लोक 1)
4. सुशीला नाटक (पृष्ठ 5)
5. सुशीला नाटक (पृष्ठ 6)
6. सुशीला नाटक (पृष्ठ 7)
7. सुशीला नाटक (पृष्ठ 8)
8. सुशीला नाटक (पृष्ठ 14)
9. सुशीला नाटक (पृष्ठ 13)
10. सुशीला नाटक (पृष्ठ 17)
11. सुशीला नाटक (पृष्ठ 19)
12. सुशीला नाटक (पृष्ठ 29)

13. सुशीला नाटक (पृष्ठ 30)
14. सुशीला नाटक (पृष्ठ 7/श्लोक 1)

संस्कृत विभाग,
डॉ.हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)

भुवनदीप में समाज चिन्तन

राखी श्रीवास्तव

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी प्रणीत पाँच अंकों में लिखा गया भुवनदीप नाटक आज के आधुनिक समय में समाज के परिदृश्य को प्रस्तुत करता है।

'भुवनदीप' नाम की एक बहुत बड़ी हबेली है जिसमें सभी कमरों में साज–सज्जा दिखायी गई है पूर्व में इस हवेली में 15–30 नौकर हो लेकिन अब इस–समय 5–6 ही बचे हैं। इस समय इस हवेली के मालिक का नाम सतीश है जिसकी उम्र 40 वर्ष है जो अपनी पत्नी (भारती देवी) के निधन के कुछ माह पश्चात् ही रेणू नाम की लड़की से विवाह कर लेता है। रेणु एक साधारण परिवार की लड़की है जिसके पिता शिक्षक है और वह देहरादून के एक होटल में रिशेप्सनिष्ट का काम करती है सतीश से विवाह करने के बाद वह उसके साथ पालगढ़ में बनी इस हवेली में रहने आई। उसे यहीं आकर पता चलता है कि सतीश इतना अमीर आदमी है। क्योंकि सतीष ने उसे कुछ नहीं बताया था वह उससे एक साधारण व्यक्ति की तरह ही मिला था। रेणु अब स्वयं को इस नये परिवेश में ढ़ालने की कोशिश में लगी है। किंतु सतीष की जो भूतपूर्व पत्नी आरती देवी थी उनकी आया जिसका नाम बसंती है वह आज भी इस हवेली और अपनी मालकिन की वस्तुओं की देख रेख उसी तरह करती है। जिस तरह उसकी मालकिन किया करती थीं। वह रेणु को पसंद नहीं करती हैं क्योंकि वह अपनी मालकिन की जगह किसी और को देखना नहीं चाहती।

इस हवेली के पीछे एक तरफ सुंदर नागफनी का बागीचा है जिससे आरती देवी और उनकी ननद रेखा ने मिलकर बनाया था। इसी बगीचे के पीछे समुंदर है उसी समुंदर के किनारे एक कॉर्टेज भी आरती देवी ने बनबाया था जिसमें वे अक्सर जाया करती थीं। इसी समुंदर में उनकी नाव डूब जाने के कारण मौत हो गयी थी। आरती देवी के जाने के बाद हवेली सूनी हो गई थी क्योंकि वह बहुत ही रंगीन मिजाज की और आजाद ख्यालों की औरत थी वह इस हवेली में ज्यादातर पार्टियाँ करती। अपने दोस्तों को बुलाती रहती

थी। इस हवेली में काम करने वाले नौकरों के लिए वह देवी समान थी। वह अपना हर काम व्यवस्थित तरीके से करती थी। चूँकि भारती विलायत में पढ़ी लिखी आजाद ख्यालों की औरत थी उसने अन्य व्यक्तियों के साथ भी संबंध बनाये हुए थे जो उसके पति सतीश को कभी पसंद नहीं थे। और एक दिन बात जब हद से बढ़ गई तो सतीश ने उसकी हत्या कर दी और उसके शव को नाव में डालकर समुद्र में फेक दिया। लोगों को लगा कि आरती देवी की मौत नाव के डूबने से हुई है। सतीश ने यह सारी बातें रेणु से अब तक छिपाई हुई थी लेकिन वह जानता था कि एक न एक दिन यह बात सामने आ जायेगी और हुआ भी वही।

एक दिन उस समुंदर में एक जहाज वहीं फेल गया जहाँ आरती देवी की नाव डूबी थी। उस जहाज को निकालते समय गोताखोरों को वह नाव भी मिल गयी उसमें आरती देवी का सड़ा–गला शरीर भी था जिसकी पहचान करने के लिए सतीश को बुलाया और सतीश ने उसे पहचान लिया। उसी समय जिन व्यक्तियों के संबंध आरती देवी से थे उन्होंने सतीश पर आरोप लगाते हुए कहा कि यह दुर्घटना नहीं हत्या है जो सतीश ने ही की है। लेकिन अदालत में सतीश के वकील ने यह सिद्ध कर दिया कि यह हत्या नहीं आत्म हत्या है क्योंकि आरती देवी को गर्भाशय का कैंसर था उनके पास समय बहुत – कम बचा था इसलिए उन्होंने यह कदम उठाया और स्वयं को नाव के साथ ही समुंदर में दुबो दिया। इसके साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

यह नाटक हमारे सामने कुछ प्रश्न खड़े करता है जिनके उत्तर खोजना और समाधान करना प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य है। लेखक ने यह नाटक क्यों लिखा है वह हमारा ध्यान किस ओर लाना चाहता है ? हम आज किस आधुनिकता को अपना रहे हैं हमारे कदम उन्नति की ओर जा रहे हैं या पतन की ओर ? नारी जो सीता, मैत्रेयी, अपाला, घोषा, आदि के रूप में अपनी गरिमा से जानी जाती है – तो आज की नारी को क्या हो गया है ? ये किस तरह के आजाद ख्यालों को अपना रही हैं – ये कैंसी सोच है ये कैसी आजाद ख्याली है ? क्या आरती देवी का दोहरा व्यक्तित्व खुद के लिए कुछ और दूसरों के लिए कुछ और नारी के चरित्र पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाता हैं ?

सतीश का आवेश में आकर अपनी पत्नी की हत्या करना क्या सही है? उसे पूर्व में विरोध नहीं करना था जब आरतीदेवी ने उससे विवाद नहीं कांट्रेक्ट मेरिज करने की बात कही थी क्यों उसने दबाब में आकर उससे शादी की ? हम ऐसा काम ही क्यों करें जिसकी इतनी बड़ी कीमत चुकानी पडे। बसंती का अपनी मालकिन से यें कैसा सेवा भाव था जो उसे सही और

गलत में अंतर नहीं दिखा। सब कुछ जानते हुए भी वह मौन क्यों रही ? ऐसी नमक हलाली किस काम की जो आपको सही गलत में अंतर न करवा सके।

हमारी न्याय व्यवस्था पर पहले से ही आंखों पर पट्टी बंधी है जिसके दो अर्थ निकलते है कि आंख बंद होने के बाद भी दोनों पलडे बराबर है किसी के साथ भी भेद भाव नहीं होगा और दूसरा अभी उसे सच और झूठ नहीं दिखता जो गवाह, सबूत बोलेगे वही सुनेगा और फैसला सुना देगा। तो क्या हमारी न्यायिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न नहीं लगता है ? जहाँ वकील अपने गवाहों के द्वारा हत्या को आत्महत्या बना देते हैं। चोर को साधु और साधु को चोर बना देते हैं।

क्या हो गया है हमें ? क्यों हो गये हैं हम ऐसे ? क्यों हमें सिर्फ अपना घर अपनी जिंदगी, अपना सुख दिखाई देता है ? क्यों हमें दूसरों का दुख दर्द, तकलीफ दिखाई नहीं देती हैं। हमें पता है कि हमारे आस–पास गलत हो रहा है फिर क्यों हम कुछ नहीं बोलते क्यों हम चुप रह जाते हैं – क्यों हम अपना मुँह फेर लेते हैं। क्या आंखे बंद कर लेने पर दिन से रात हो जायेगी ? गलत है वह सही हो जायेगा। नहीं ऐसा नहीं होगा मुझे तो लगता है एक दिन हम सब जिंदा भूत बनकर रह जायेंगे जो जिंदा तो है लेकिन आत्मा हमारा ज़मीर कर चुका है।

जरा सोचिये हमने कल क्या किया ? आज क्या कर रहे हैं ? और कल क्या करने वाले हैं ? हमारा जो समय बीत गया है वह हमने कैसे गुजारा आज हम कैसें जी रहे हैं – और कल का भविष्य हम कैसा जियेंगे क्या हमारा भविष्य आधुनिकता की अंधी दौड़ में उज्जवल होगा ? हम आने वाली पीढ़ी को बेहतर भविष्य दे पायेंगे ? सोचिये .....

भुवनदीप नाटक ने मानव जाति के सामने मानव की ही उन समस्याओं का उद्घाटन किया है जिन्हें लोग अनदेखी कर रहें हैं। यह पूर्ण रूपेण सत्य है कि जिन पर समाज ने अपना चिन्तन–मनन करना छोड दिया है, वह उन्हीं के लिए बहुत बडी समस्या बनेंगे। कवि मानव की उन आदतों से आहत है वह चाहता है कि मानव–मानव की समस्याओं को समझे, वह एक दूसरे के काम आये और एक वेहतर समाज का निर्माण हो। सम्पूर्ण नाटक में कवि इस दृष्टि पर केन्द्रित रहा है।

शोध छात्रा
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय , जबलपुर (म.प्र.)

लहरीदशकम् में पर्यावरण चेतना

अखिलेश कुमार मिश्र

पर्यावरण पंचमहाभूतों का सुगठित स्वरूप है। यह ऐहिक तथा पारलौकिक सुख का विधान करता है। भारतीय ऋषियों का प्राकृतिक घटकों में देवत्व की अवधारणा विकसित करने का यही उद्देश्य रहा है कि सभी लोग इसका संरक्षण करें। प्रकृति के कण–कण में दैवी शक्ति का निवास माना जाता है। आदिकाव्य का सृजन प्रकृति के सापेक्ष में संभव हुआ। आदि कवि प्रकृति के उस सुरम्य तट पर विचरण कर रहे थे जहाँ तमसा नदी की कलकलाहट सतत् श्रुतिपेशलशाली थी। वहीं उन्होंने निषाध के शर से विद्ध क्रौंच को देखा और उस निषाध पर उद्विग्न हो गये। यही तो कवि की चेतना है कि वह हानिकारक तत्वों का निषेध मुख से प्रतिपादन अपने काव्य में करता है।

महर्षि बादरायण ने प्रकृति को संसार का उपादान कारण स्वीकार करते हुए कहा–

"प्रकृतिश्चोपादानम्"[1]

प्रकृति के साथ निश्चित ही जन्यजनकता भाव सम्बन्ध है। वह ब्रह्मतत्त्व से जन्य है तो समस्त संसार की जनक भी है। प्रकृति ही पर्यावरण को दिव्यता प्रदान करने वाली वह अमृतमणि है जिससे पर्यावरण निर्मित एवं पुष्ट होता है। पुष्ट पर्यावरण ही प्राणिमात्र का अभिभावक है। आज सम्पूर्ण जगत् पर्यावरण की समस्या से जूझ रहा है। प्रकृति में प्रदूषण करने से चारों तरफ इस समस्या से पीडित हुए लोगों का जीवन भयाक्रान्त बन गया है। इसी समस्या का सम्यक् अवलोकन कर आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने शताधिक ग्रंथों में आज का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने काव्य, नाट्य, उपन्यास या काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में पर्यावरण के घटकों का यथार्थ चित्रण करते हुए आज प्रदूषित हो रहे पर्यावरण को व्यवस्थित करने की दृष्टि से उसका वास्तविक स्वरूप तथा प्रदूषित स्वरूप दोनों का सुविचारित वर्णन

किया है। लहरीदशकम् उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। प्रायः दशों लहरियों में पर्यावरण का वर्णन किया गया है। जो मुख्य रूप से पर्यावरण पर प्रकाश डालते हैं उन लहरियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

(क) वसंत लहरी

आधुनिक जीवन में वसंत के अनुभव को व्यक्त किया गया है। पारम्परिक कविता में जिस प्रकार वसंत ऋतु का चित्रण होता है, उससे हटकर पर्यावरण के विनाश और प्रदूषण के बीच वसंत का अवतरण किस तरह कठिन हो गया है, यह कवि ने रेखांकित किया है।

वसंत के अनुभव को रचनाशीलता से जोड़ते हुए समकालीन जीवन में नए अर्थों में वसंत की चरितार्थता को यहाँ प्रदर्शित किया है। वसंत ऋतु से सम्बन्धित होने के कारण पूरी लहरी वसंततिलका छंद में लिखी गई है।

(ख) निदाघ लहरी

इस लहरी में कवि के द्वारा प्रत्यक्ष देखे गये ग्रीष्म के भावों को और जलाभाव में अस्त–व्यस्त समाज का सम्यक् निदर्शन है। इसमें अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों का संश्लेष प्रस्तुत करते हुए कवि ने समकालीन जीवन में रचना के संकट तथा पर्यावरण के विनाश को लेकर चिंता का भाव व्यक्त किया है। लेखक ने सम्पन्न सामाजिकों को केंद्र बनाया कि वे किस प्रकार से प्रदूषण कर रहे हैं। इसमें प्रसिद्ध सुभाषित पंक्ति–

"बुभुक्षितं किन्न करोति पापम्।"[2]

कवि ने वर्तमान समाज के क्रिया–कलाप को निहारकर निम्न रूप से प्रतिपादित किया है।

"बुभुक्षितः करोत्येव पापानीति वचो वृथा।
उदरम्भरयः किं किं पापमत्र न कुर्वते।।"[3]

(ग) प्रावृड् लहरी

कवि ने इस लहरी में महाकवि कालिदास का अनुसरण किया है। वर्षा ऋतु का वर्णन कवि ने नाटकीय प्रकार से किया है। जैसे प्रतीकों को पात्रों की संज्ञा से प्रस्तुत कर उनके द्वारा एक नाटकीय सम्पूर्ण घटना का रूप दिया है। यथा–

"क्वचिद् दृष्टा क्वचिल्लुप्ता सूचितं वस्तु गूहते।

विद्युन्मालविका त्वद्य छलितं नाटयते नु किम्।।"[4]

लेखक ने यहाँ पर बादल, बिजली, मेघगर्जन आदि को पात्रों संज्ञा दी है। वहीं वृक्षों की रगड़ से उत्पन्न ध्वनि को वाद्य यंत्रों की संज्ञा प्रदान कर ध्वनि का सुंदर मनोरम वर्णन किया है।

"वंशिकामिव वंशेषु पलाशेष्वथ वल्लकीम्।
कस्तीरावृतनीध्रेशु वादयत्यथ झल्लरीम्।
रुद्रवीणानिवाश्वत्थे शततंत्रीं महाह्रदे।।
कुतपं कुरुते प्रावृट् पुगस्थूलैः पृषन्तिभिः।।"[5]

कवि ने इस लहरी में समूची धरती को नायिका के रूप में जल के द्वारा सुसज्जित किये प्रसाधन से मण्डित किया है। पर्यावरण की दृष्टि से यह लहरी अत्यधिक उपयोगी है। कवि ने विश्वव्याप्त जला संकहट को केंद्र बिंदु बनाकर प्रदर्शित किया है।

(घ) धरित्रीदर्शन लहरी

कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का अद्भुत निदर्शन यहाँ किया है। प्राचीन कालिक कवि प्रथा जो कि सम्पूर्ण भारतवर्ष को आत्मसात् करके तत्–तत् प्रदेशीय विशेषताओं को, वहाँ की सुंदरताओं का वर्णन अपने काव्य में किया करते थे। चूँकि आप का कवि पुनरुक्ति न कर आधुनिक युग की ओर अग्रसर होकर वर्तमान कालिक लोक व्यवहार को अपने काव्य में पिरोता है। कवि ने विमान से दृष्ट पृथिवी का अत्यन्त गूढ प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार कालिदास मेघ को रास्ता दिखाते हैं वैसे ही आचार्य त्रिपाठी ने बहिरगन्तुक पथिक को दृष्टिगोचर मार्ग की दशा का वर्णन इसमें किया हे। पृथिवी को बर्फ से व्याप्त दशा में देख कवि ने रुई से ढकी सोयी हुई नायिका की कल्पना की है।

यथा–

"एषा शेते ह्यलसलुलिता क्लिन्नगात्रीव शीते
प्रच्छाद्य स्वां शिथिलिततनुं तूललेशैर्धरित्री।
शैत्याधिक्यादतिहिमजडा ग्लप्यमानाऽतिदीना
जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीवान्यरूपा।।"[6]

(ङ) नर्मदा लहरी

कवि ने इस काव्य में नर्मदा नदी को देवी के रूप में प्रस्तुत करते हुए पर्यावरण और परिस्थिति की समस्या पर प्रतिक्रिया प्रकट की गई है। नर्मदा सम्बन्धी अनेक प्राचीन आख्यानों, ऐतिहासिक वृत्तांतों तथा पुरातात्विक गवेषणाओं का भी संकेत प्रसंगवश यहाँ किया गया है।

यथा–

"पात्रात् पूर्णाच्चुलुकलुलिता याऽऽम्रकूटाद् विधातुः
क्रोडीकर्तुं भुवनमखिलं या विराट् सम्प्रजाता।
गुप्ताऽऽकाशे भुवि वितता गह्वराणि प्रविष्टा
सा त्वं देवि प्रकटमहिमा जाह्नवीव त्रिमार्गा।।"[7]

अर्थात् हे देवि ! विधाता के पूरे भरे पात्र अमरकंटक से एक चुल्ली भर जल से छलक जाने से जो बह उठी और सारे जगत् को अपने अंक में समेटने के लिए विराट् बनती गयी, आकाश में गुप्त, धरती पर विस्तीर्ण, गह्वरों में प्रविष्ट वही तुम जाह्नवी गंगा की तरह तीन मार्गों पर बहने वाली तथा उक्त महिमा वाली हो।

कवि ने मेकल–कन्या (नर्मदा) का उद्गम प्रभृति समुद्र संगम पर्यन्त तटीय स्थलों का सुमनोरम वर्णन किया है।

(च) मृत्तिकालहरी

मृत्तिकालहरी कवि की नूतन प्रतिभा का निदर्शन है। इसमें मृत्तिका अपने देश, गाँव की भूमि तथा अपनी जडों की प्रतीक है। सम्पूर्ण काव्य में पंचचामर छंद का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार कवि ने ग्रामीण सभ्यता और उसकी मृत्तिका पर कला सौष्ठव को पल्लवित किया है।

1. पर्यावरण चेतना

आचार्य त्रिपाठी ने प्रकृति के घटकों को क्षति पहुँचाने पर संवेदना व्यक्त की है। प्रकृति के मुख्य घटक पंचमहाभूत हैं – आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी।

क. आकाश

समस्त प्राणियों के प्राणाधान के लिए आकाशतत्त्व की परम आवश्यकता है। जिससे हमें अवकाश प्राप्त होता है। आज वह आकाश वाहनों के निकले

धुएँ से व्याप्त होता जा रहा है जिसका प्रभाव वर्षा में देखने को मिलता है कि उस पेट्रोल, डीजल के धुएँ से व्याप्त आकाश से वर्षा होती है जिससे हमें क्षति हो रही है। प्रत्यक्ष उदाहरण ताजमहल है जिसको वर्षा से हुई क्षति को सहना पडा।

आचार्य त्रिपाठी ने विमान से निःसृत धुएँ से प्रकृति का विनाश स्वीकारा है। आकाश मार्ग में विमान से निःसृत हुआ धुआँ भी अम्ल वर्षा का कारण है क्योंकि मध्य आकाश में चलायमान विमान से धुआँ अवश्य निकलता है और वह आकाश की मूल प्रकृति का हनन करता है।

"स्थानात् तस्मादुपरि सहसैवोत्थितश्चान्तरिक्षे।
क्रान्त्वा भूमिं प्रगुणितरयो भूय एवोन्मुखः खे।।"[8]

ख. वायु

जीवों के जीवनाधान के लिए वायु की मूल आवश्यकता है। इसीलिए इसे प्राण भी कहा जाता है।

"वायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाः।"[9]

तो वायु किस प्रकार प्रदूषित होगी। इसी का निराकरण आचार्य ने अपने काव्य में किया है। निर्जन प्रदेश, वृक्ष, युक्त स्थल पर स्वच्छ वायु प्रवाहित होती है। पर आज की दशा है कि वृक्षों को काटकर भवनों का निर्माण हो रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। स्वच्छ वायु का अभाव होता जा रहा है।

"विस्थाप्य पूर्वलसितं सहकारपुंजम्
स्वैरं प्रसर्पतितरां गुरुसौधपुंजः।"[10]

कवि को वृक्षों की सत्ता अभीष्ट है न कि विशाल भवनों की।

आज परिवहन के साधनों से निःसृत धुआँ भी वायु को प्रभाहित कर रहा है। वह स्वच्छ वायु के प्रभाव को क्षीण करता है।

त्रिपाठी जी ने इस पर अपनी संवेदना व्यक्त की है कि वाहनों के आवागमन से दिशाओं के मुख पेट्रोल की गंध से भर गये हैं। चारों ओर धुआँ फैल रहा है।

"पित्रोलगन्धपरिपूरित दिङ्मुखास्ते
धूमः प्रसर्पति च राजपथे पुरेऽस्मिन्।।"[11]

इससे रास्ते पर चलते लोगों के मुँह धुएँ से घिर गये हैं और वे बार–बार प्रदूषित वायु को निगल रहे हैं।

"धूमावृतानि वदनानि तथाध्वगानां
वायुं प्रदूषणयुतं निगरन्ति भूयः।।"[12]

ग. अग्नि

लहरीदशकम् में प्रदूषणयुक्त अग्नि का और उसके बचाव सम्बन्धिनिरूपण नहीं किया गया है।

घ. जल

सर्वविदित है कि 'जल ही जीवन है' अतः स्वच्छ जल से हमारा स्वास्थ्य अनुकूल रहता है। आज के दौर में जल नष्ट हो रहा है। जितनी आवश्यकता है उससे अधिक जल हम व्यर्थ में गंवा रहे हैं। सारी नदियों में शहर के गंदे नाले मिल रहे हैं तो क्या जल स्वच्छ रहेगा? इसलिए कवि ने नर्मदा लहरी की प्राचीनता, पवित्रता, ईश्वरता पर प्रकाश डाला है। जिससे अन्य नदियों की तरह यह भी गंदगी से दूषित न हो। नदि, तालाबों के जल के लिए मत्स्य, कूर्म आदि स्वच्छ रखते हैं, पर आज वे भी मल्लाहों के द्वारा सुरक्षित नहीं हैं।

"सान्ध्ये स धीवरजनो बडिशप्रसक्तं
मत्स्यं प्रगृह्य च तटान्तिकमेति नक्तम्।।"[13]

शास्त्रों में बार–बार जल को दूषित करने से निषेध किया है और प्रदूषित करने पर कुफल प्रतिपादित किया है।

(ङ) पृथिवी

समस्त जीवों के लिए पृथिवी आधार है। आज के परिप्रेक्ष्य में पृथिवी की स्थिति प्रतिकूल बनी हुई है। सड़क बनाने के लिए पर्वतों को विस्फोटक पदार्थों क्षति पहुँचाई जा रही है तथा बिजली के पावर प्लान्ट बनाये जा रहे हैं। विशाल भवनों का निर्माण हो रहा है। यह सब पृथिवी की प्रकृति को नष्ट कर रहे हैं।

कवि विमान से पृथिवी का दर्शन कर वर्णन करता है और आधार के लिए व्याकुल वह सद्यः भूमि का आलिंगन चाहता है।

"इत्थं भूमिं स्वहृदयतले भावयत्येव तस्मिन्
यानं गत्वा धरणिमभितस्तां परिक्रम्य तस्थौ।

प्रह्वो हृष्टो मनसि बहुशस्तां सुमूर्तिं विचिन्वन्
धीराश्वासः शिरसि पथिको धूलिमस्या दधार।।"[14]

इससे ध्वनित होता है कि पृथिवी सभी प्राणियों का आधार है और संरक्षित करने की नितांत आवश्यकता है।

उपसंहार

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने काव्य लहरीदशकम् में प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। प्रकृति से तादात्म्य होने से और आज हो रहे प्रदूषण को देखकर कवि लिखने के लिए प्रेरित है। कवि ने छः ऋतुओं का वर्णन प्रतिपादित कर वर्तमान में उनमें आयी विकृति को भी दर्शाया है। लेखक अनवरत प्रकृति के उदार स्वरूप को निखारना चाहता है। इतिदिक्।

सन्दर्भ

1. ब्रह्मसूत्र 2/2/27
2. पंचतंत्र 4/16
3. लहरीदशकम्–निदाघलहरी 10
4. वही– प्रावृड्लहरी 6
5. वही– प्रावृड्लहरी 9,10
6. वही– धरित्रीदर्शलहरी, द्वितीय उन्मेषः, 3
7. वही– नर्मदालहरी, प्रथमस्तरङ्गः 3
8. वही– धारित्री दर्शनलहरी प्रथम उन्मेषः 7
9. वेदान्तसार, पृ. 65 (कृष्णदास ग्रन्थमाला 15)
10. लहरीदशकम् – वसन्तलहरी 6
11. वही – वसन्तलहरी 17
12. वही – वसन्तलहरी 18
13. वही – वसन्तलहरी 10
14. वही – धरित्रीदर्शनलहरी, प०चम उन्मेषः 11

संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विष्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

संसरणसमीक्षा

रहस विहारी द्विवेदी

कृतं संसरणं काव्यं श्रीराधावल्लभेन यत्।
तत्सप्ततितमं पुष्पं विद्यापीठप्रकाशनम् ।।1।।

सम्पादकः प्रधानोऽस्य विद्यापीठ–कुले पतिः।
वाचस्पतिरुपाध्यायो नैवेद्यस्यापि लेखकः।।2।।

श्रीरमेशकुमारेण पाण्डेयेन सुधीमता।
सम्यक् सम्पादितश्चायं नवीनः काव्यसङ्ग्रहः।।3।।

शब्दः संसरणमर्थादसम्बाधचमूगतिः।
राजमार्गोऽथवा घण्टापथ इत्यभिधीयते।।4।।

मन्ये कविदिशा प्रोक्तं संसरणं हि शीर्षकम्।
अग्रेसरत्वमुद्दिश्य प्रयुक्तं चात्र विद्यते।।5।।

'संसरणे मे मुक्तिर्भवतु विरामे नाशमीहेऽहम्।
अनुबद्धं संसरणं यावच्छ्वासोऽथ विश्वासः।।'

(काव्यसङ्ग्रहस्य भूमिकान्ते)

काव्ये संसरणे क्वचित्समरसा शास्त्रे श्रुता पङ्क्तयः।
क्वाप्यास्तेऽनृजुधूर्तघातुकखलत्रस्ता दरिद्रच्छविः।

क्वाप्याभाति पुराकथा प्रणिहिता भावाभिव्यक्तिर्नवा
राधावल्लभवाग्विभाऽत्रललिता संवेदनाशालिनी।।6।।

त्रैलोक्या अनुकीर्तनं नवनवोन्मेषैरुपात्तीकृतं
प्रायोऽत्रोत्तरमध्यमे प्रघटिते किञ्चित्कृतं चावरम्।
अत्राभ्यन्तरबाह्यरूपमनुभं चालङ्कृतेर्दृश्यते
चात्र प्राणिपरा ह्यहेतुधिषणा प्रायः समुन्मीलिता।।7।।

जीवाप्ता सुषमाऽन्यथाकरणतश्छाया क्वचिद्भ्राजते
अन्यायस्य निवारणाय विहितं सङ्घर्षजं द्वन्द्वकम्।

चित्ते द्वन्द्वजकर्षणेन घटितं क्वापि स्थितं तानवं
भाति क्वापि यथावलोकितगतिर्जातिश्च चित्रोपमा।।8।।

आस्ते क्वापि विडम्बना विकृतिगा व्यङ्ग्योक्तिसंसाधिता
वस्त्वाश्रित्य च नादविन्यसनजा नादानुवृत्तिः परा।
मध्ये संसरणं विभाति शतकं यच्चात्मसङ्कल्पजं
चान्या मुक्तकतां गताः सरणयः पञ्चात्र संसारिताः।।9।।

काव्ये पञ्चसृतौ गलज्जलमयो गीतप्रवाहः परः
राधावल्लभदर्शनं नवनवं सङ्कल्पगेहोत्करम्।
आध्यानं भारतावनेश्च सुहृदां हार्दं समुज्झावितं
श्रद्धास्नेहभरे स्मृतेरुपवने सत्प्रीतिपुष्पाञ्जालिः।।10।।

सर्पं स्नुहीं गणपतिं जलगं च मीनं
वृक्षं च कर्कशतनुं किल नारिकेलम्।

उच्चं क्रमेलकतनुं च विधाय मान–
मन्यापदेशसरणिर्नवभावसिक्ता।।11।।

पुनर्यात्रासृतिश्चरमेह काव्ये भाति संसरणे
स्वरूपं शब्दगं नव्यं प्रणीतं भाति संसरणे।।12।।

होलिका कापि रेवायास्तटे नैसर्गिकी सृष्टा,
निरस्त्रैर्नर्मदोत्क्षिप्तैः करैर्लिङ्गाकृतिर्जुष्टाः।।13।।

प्रवाहे बालकैर्गङ्गाधरस्याप्याकृतिः कृष्टा
निर्मलं हन्त ! रेवाया जलं नास्तेऽभिषेकार्हम्।।14।।

अतः कविमानसं खिन्नं जलं तद्दूषितं दृष्ट्वा
जलाभावस्य व्यग्रत्वं पुनश्चित्रीकृतं रम्यम्।।15।।

सुगीतौ रैभिलीयायां मनोवैकल्यमासृष्टम्
कवेः पूर्वं सुकाव्यं धीवरं चाश्रित्य यत्सृष्टम्।।16।।

इदं गीतं पुनर्नूत्नं तदेवाश्रित्य चानीतम्
धरित्रीदर्शनं काव्ये विमानाद् या धरा दृष्टा।।17।।

पुरुषसूक्तं प्रतीकीकृत्य नूत्ना गीतिका सृष्टा
पुनः शिमलागिरेरुच्चावचत्वं कालदृष्ट्योक्तम्।।18।।

पुनर्हासात्मकः सृष्टो महामहिमालयो दृष्टः
ततः पुत्रीकृतो देवस्य दारुर्यो भयग्रस्तः
स्मृतिर्नेत्राश्रुसंदृब्धा नवा क्षणिकामयी सृष्टा।।20।।

पुनर्मरघट्टके चाज्यं चिताज्वालाऽत्र सम्प्रोक्ता
इषोरिव दीर्घदीर्घो यः क्रमो मीमांसकप्रोक्तः ।।21।।

नृजीवाप्तो विधिस्तद्वन्नवोद्गारैरिहोद्गीतः
अमरताया वरं प्रोक्तं विनश्वरतां हि जीवस्य।।22।।

विभीषणजे विलापे तानवं नूत्ने विधौ गीतम्
सोपनेत्रद्वयी सृष्टाऽवरं काव्यं गते शिल्पे
वस्तुमात्रेऽपि काव्यत्वं गृहे दृष्टं तथा सृष्टम्।।23।।

प्रो. राधावल्लभ–त्रिपाठि–विरचितेऽस्मिन् काव्ये नवभावोन्मेषपराः पञ्चसरणयः सन्ति–गीतप्रवाहः, सङ्कल्पसदनम्, स्मृतीनामुपवने, अन्यापदेश–संसारे, पुनर्यात्रा चेति। प्रथमायां सरणौ मग्नम्, अकस्मात्, विश्वासः, हसन्ती, दोषः, देहली, मुग्धता, शिष्टा, हस्तकम्, मुक्तिः, द्वारे, भाषायाः, गानम्, दीर्णम्, निद्रा, कृतज्ञोऽहम्, दैनन्दिनी, पन्थाः केयम्, न जात्वासीत्, मनोहारः, मनोरथः, ईश्वरः, यात्रा, मुषितम् इति शीर्षकेषु प्रायः समस्यानां समुद्घाटनं समस्यापूर्तिशिल्पमाश्रित्य कविना व्यधायि। अत्रकूपकं (हँसते समय गाल में होने वाला गड्ढा) मनोहारः (मनुहार/अनुनय/विनय) चेति शब्दौ संस्कृतभाषायै समुपायनीकृतौ।

द्वितीयायां सरणौ – आत्मसङ्कल्पशतकम्, आर्यापञ्चाशत्, वार्धक्यम् इति शीर्षकत्रयेण त्रिपाठिना स्वकीयं मौलिकं चिन्तनं साधु स्फुटीकृतम्। आत्मसङ्कल्पशतके कविना नूनमेव स्वकीयं नूतनं दर्शनमभारि। वस्तुनिर्देशपरं प्रथमं पद्यमवलोकनीयम् –

'ऋतं सत्यं तपस्तेजो विद्या शौचं दमः क्षमा।
व्यवसायात्मिका बुद्धिर्धारयन्तु सदैव माम्।
उपसंहृतौ च –
तमिस्रायां च घोरायामात्मदीपं प्रकाशयन्।

रूपान्तने च विश्वस्य संलग्नः स्यां निराकुलः।।
आत्मार्पणं चात्महविः सारथ्यं स्वात्मनः कृतम्।
आत्मसद्म च गन्तव्यमात्मयानेन मे ध्रुवम्।।
सङ्कल्पशतकं ह्येतद् राधावल्लभनिर्मितम्।
विश्वात्मने विश्वकर्म आत्मने च समर्पितम्।।

नूनमेवात्र सर्वेषां कृते महत्त्वावहः कश्चित्सन्देशः कविना प्रसारितः। मनीषिणोऽनुरुध्यन्ते यत्ते समयं दत्त्वा शतकमिदमवश्यं पठन्तु। पूर्वेण राधावल्लभेन (श्रीकृष्णेन) श्रीमद्भगवद्गीतोपदेशो व्यधायि। नूतनेन सत्यवतीवल्लभेन सताऽपि राधावल्लभेन लोकमनुकीर्तयता सङ्कल्पशतके काचिन्नूतना गीता व्यलेखि। स्वतन्त्रं भाष्यमपेक्षितं शतकेऽस्मिन्। आर्यापञ्चाशदिति काव्ये क्वचित्प्रवृत्तिविकृतिज्ञा कवेर्व्यग्रतानुतप्ताऽभिव्यक्तिः, क्वचित्प्रक्षोभोत्तालतरङ्गाः, क्वचिदाक्रोशज्वालाश्च समुद्गता निभाल्यन्ते, तथापि कुत्रचिदाचार्यधर्मं सम्पादयता कविना नवकवीनां कृते मार्गदर्शनमपि क्रियते। अत्र 49 पद्ये 'नौकरी' कृते नवकरी शब्दः संस्कृताय समर्पितः। अस्यामेव सरणौ तृतीया कविता वार्धक्यमाधृत्य प्रणीता।

तृतीयायां सरणौ – देशस्मृतिः, संस्कृता, अहिल्याचरितम्, दाराशिकोहः, रामचन्द्रो द्विवेदी, मिश्राष्टकम् (विद्यानिवासमिश्रमाश्रित्य प्रणीतम्) भास्करेऽस्तङ्गते (डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठिनमाधृत्य प्रणीतम्) स्मृतीनामुपवनेऽन्वप्यर्थमेवास्याः सरणेर्नाम। चतुर्थ्यां सरणौ कृष्णसर्पः, मत्स्यान्योक्तयः, नारिकेलं, स्नुही (सेहुंड़) उष्ट्रः, विघ्नेशः, वृक्षाः इति विषया शीर्षकीकृताः सन्ति। अस्या नाम अन्यापदेशसंसरोऽस्ति। पञ्चम्यां सरणौ शब्दाः, रेवातटे होलिका, नर्मदाया कराः, नो तज्जलम्, पुनर्जलानि, रैमिलगीतिः, धीवरगानम्, विमानयात्रा, शिमला स्मृतिः (1,2,3), श्मशानम्, सोऽयमिषोरिव, विभीषणविलापः, सोपनेत्रो (1,2) गुरुवायुरे येशुदासश्चैवं शीर्षकयुताः कविताः सन्ति। अस्या नाम पुनर्यात्रा।

यद्यपि मयाऽत्र केवलं शीर्षकाणां सङ्ग्रहः प्रस्तुतः। एतेन यथायथं विषयमाश्रित्य शोधे प्रवृत्तानां छात्राणां कृतेऽस्य काव्यसंङ्ग्रहस्य विषयवस्तु ज्ञातं भविष्यति। अत्र काव्यसौन्दर्यविषयस्फुटीकरणे समीक्षणे वा प्रारम्भिकेषु पद्येषु मया प्रो. राधावल्लभत्रिपाठि–प्रणीताभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रस्यैव पारिभाषिकशब्दानां प्रयोगोऽकारि। अतस्तेषामवबोधाय तं ग्रन्थमेवावलोकयन्तुच्छात्राः सुधियश्च।

प्रो. त्रिपाठिनः काव्यसङ्ग्रहं संसरणमवलोक्य तत्काव्यक्रियाविषये भवभूतेः पद्यमेकं स्मरामि यस्य निदर्शनरूपम् आचार्यः कविश्चायम् –

शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यगुणा च वाणी।
कालानुरोधः प्रतिभानवत्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु।।

(मालतीमाधवे 3.11)

शिवसकङ्ल्पः

प्रो. गंगाधर पंडा

निरवच्छिन्नसारस्वतसाधनानिलिम्पनिर्झरीपूतान्तः करणानां पुण्यदर्शनानां मानाग्रयायिनां विद्याविभूतिनिलयानां कीर्तियोषिद्वल्लभानां प्रथितवृत्तवंशानां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहोदयानामभिरामाभिनन्दग्रन्थः प्रकाशयिष्माणः प्रतीक्ष्यार्च्चना- निर्वचनीयोल्लासो भूतभवद्घटनाप्रवाहनिर्भरो भव्यावगाहनपुण्योदक इति भावनया शब्दानाख्येयानन्दोत्तालतरगङ्या ममाप्रतिहानर्त्तनं संस्कृतहृदयम्।

आपीतशास्त्रामृतानां पण्डितसार्वभौमानां मान्यगोकुलप्रसादत्रिपाठि महाभागानां द्वितीयात्मजाः पतिव्रताशिरोमणीनां श्रीमतीनां गोकुलबाईमहोदयानां गर्भसम्भूता नवचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशततमसम्वत्सरे फरवरीमास्य पञ्चदशदिनाङ्के लब्धजन्मानोऽभवन्नेते मध्यप्रदेशीयराजगढ़मण्डलवास्तव्याः। प्राच्यपाश्चात्य- परम्परायामलङ्घनीयविक्रमाः शिक्षाक्षेत्रे सर्वत्र प्राथम्यमादध ानाः सागरविश्वविद्यालयस्य स्नातकोत्तरसंस्कृतविभागतः प्रप्रथमतया लब्ध ास्थानाः शास्त्रीयविपिने पञ्चाननानां प्रो. रामजी-उपाध्यायमहाभागनां मार्गदर्शनेन ''विद्यावारिधिः'' (पीएच्.डी.) इत्युपाधिना विभूषिता डॉ. हरीसिंहगौरविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागं विशिष्टाचार्यरूपेणोदृभासयन्तो वैदग्ध्यपयोनिधीनां पुण्यश्लोकानां बदरीनाथशुक्लरामप्रसाद त्रिपाठिरेवाप्रसादद्विवेदि-राजेन्द्रमिश्रप्रभृतीनां विद्वच्चूडामणीनां पीयूषोपमव्याख्यानेन विश्वविद्यालयस्य गौरवं द्विगुणीकुर्वन्तः ''पाण्डित्याभिरूचिर्भूयसे श्रेयसे इति कार्येण प्रदर्शितवन्तः। विद्यया कर्मणा च दासीकृतनानापुरुस्कारा अधिगतनिरवधिसम्माना महार्हमौलिकग्रन्थविरचने यथा मधुरवागर्थगुणालङ्काररसविन्यासा एते तथा ग्रन्थानुवादसम्पादनगवेषणा धर्मिप्रबन्ध-

कवितादिकलासु लोकोत्तरशक्तयः। एतद्विरचितेषु प्रेमपीयूष- नाट्यमण्डप-लहरीदशक- विक्रमचरितादिषु मौलिकग्रन्थेषु

"अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रं वाराणसीस्थसंपूर्णानन्द- संस्कृतविश्वविद्यालय प्रकाशितं संस्कृतकाव्यजगति निम्नगापतिमन्थनोद्गगपीयूषनिभं यशश्चन्द्रप्रकाशदीप्तं हृदयग्राहि शतमुखमव्ययम्। लोकानुकीर्त्तनं काव्यम्। लोकश्च कविना यद् दिव्येन आर्षेण चक्षुषा चर्मचक्षुषा वा साक्षात्क्रियते तदपि लोक आधिभौतिकाधि-दैविकाध्यात्मिकभेदमापन्न इति तदभिप्रायप्रकाशनेन तेषां संविद्गभीरता गगनविशालतां परिचुम्बतीति सर्वानुभवसिद्धम्।धर्मार्थकाममोक्षविशिष्टजीवनस्याखण्डता। लोकानुकीर्त्तनेन काव्यस्य पूर्णता। पूर्णता चालङ्कारः। अलङ्कारस्य च काव्यत्वमिति मते प्रसरन्ती त्रिपाठिसरस्वती नवरसरूचिरा। निस्संख्ययोग्यशिष्यजनकानां प्रशासनक्षेत्रे निष्कम्प-सिद्धान्तानामेतेषां विशेषतो राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानकुलपतित्वेनाधिगता कीर्तिश्चिरं तप्ताकाञ्चनरवर्णाभा। मया सहैतेषां सम्बन्धो वस्तुतोऽनौपाधिकः सन्तोषावहः। नानाविदेश - संचरणशीलनां देवोपमचरित्राणामुद्यत्सितसरोजमञ्जुलास्यवाणीकृपाकटाक्षभाजां काव्यानङ्गरङ्गजलधौ विहिताधिवासानामभिनन्दनग्रन्थकुसुमसुरभिः सर्वदिक्षु प्रसरिष्यतीति श्रीपुरूषोत्तमं जगन्नाथं लीलामयं प्रार्थये।

श्रुतिह्वतपरिच्छेदं शङ्खचक्राब्जसुन्दरम्।
गदापाणिं जगन्नाथं याचे ग्रन्थस्य मङ्गलम्।। इति।।

कुलपतिः श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः
श्रीविहार, पुरी, उड़ीसा

राधावल्लभस्य 'समष्टिः'

भागीरथिनन्दः

'समष्टिः' इति राधावल्लभप्रणीतः देववाणीपरिषदा सद्यःप्रकाशितस्य (2014) काव्यसङ्ग्रहः। सन्धनम् (1989), गीतधीवरम् (1996), लहरीदशकम् (1986–2003), सम्प्लवः (2000), संसरणम् (2009) इति क्रमेणासौ षष्ठो मौलिकः काव्यसङ्ग्रहो राधावल्लभस्य। सन्त्यस्यापरेऽपि गद्यकाव्यविशेषा उपन्यासास्त्रायोऽभिनवशुकसारिका– अन्यच्च–ताण्डवाख्याः। एवमपरेऽपि स्मितरेखा, विक्रमचरितम्, तण्डुलप्रस्थीयम्, प्रेक्षणकसप्तकमित्यादयः कतिपये तत्तद्विधाश्रिताः काव्यविशेषाः। एतेषु मौलिककाव्येषु राधावल्लभस्य काव्यचिन्तनपरिवेशः सर्वथा पृथगितरेभ्यः। दृश्यन्ते च काव्येष्वस्य बादराः केचिदाधुनिका इति परितोषस्य विषयः। परन्तु आधुनिकमौलिकसंस्कृतकाव्यानां यावान् प्रसारः पाठकेषु सम्भवेत्, तन्न भवतीति विषयोऽयं खेदस्य। केचनात्रभ कारणत्वेन पाठकसङ्ख्यान्यूनतामभिप्रयन्ति। किन्तु, तन्न वयं विश्वसिमः। अत्र तु पाठकतान्यूनतैव कारणं भवेदिति केचन मादृशा अवश्यमेव ब्रूयुः। अथ पाठकतान्यूनतायाः कानि भवन्ति कारणानीति सम्भूयास्माभिः सर्वैश्चिन्तनीयम्। काव्यसमीक्षास्तरस्तु बहुशः प्रशंसायामेव पर्यवसन्नः। एतेन संस्कृतकवित्वमर्घैलमपेक्षानुरूपं न प्रतीयेत। एवमन्यत्।

अस्तु, प्रकरणोपनीतं राधावल्लभं किञ्चिद् विमृशामः। तत्रा पुनस्तस्य समष्टिरिति काव्यसङ्ग्रहम्। षट्सु काव्यसङ्ग्रहेषु गीतधीवरम् इति गीतगोविन्दच्छायानुगृहीतः गीतिकाव्यविशेषो रागादिसंयोजितः स्वादान्तरेण ग्राह्यविषयः। अतोऽस्य गीतपदेनाभिधनकरणं युक्तम्। लहरीदशकम् इत्यस्य लहरीकाव्यसन्निवेशनात् काव्याभिधनान्तरेभ्यः पृथक्करणाय लहरीपदेन नामकरणमुचितञ्च। किन्तु, अपरेषां काव्यसङ्ग्रहाणां सन्धनम्, सम्प्लवः, संसरणम्, समष्टिः इति चतुर्णां 'सम्' इति सम्यक्त्ववाचकेन समारम्भो राधावल्लभस्याभ्यन्तरीणा सम्यक्त्वकामना सुतरां द्योतत इव। वस्तुतस्तु राधावल्लभस्य जीवनं जानना जनास्तद्व्यवहारेषु केवलं सम्यक्त्वमेव प्रत्यक्षीकुर्वन्ति।

अतः भगवान् बुद्ध इव जगति प्रत्येकं केवलं व्यापारे सम्यक्त्वं कामयमान एष कविः समिति पदेन श्रीगणेशं करोति स्वकाव्यानाम्। अस्य 'सम्' इति पदस्य सार्थक्यमवश्यमेवानुभवितुं शक्नुवन्ति सुधियोऽस्य काव्येषु।

समष्टिकाव्यसङ्ग्रहे सन्निवेशिताः सन्ति त्रिंशत् कविताः। तत्राद्या 'समष्टिः' इति कविता। प्रायेणास्या एव नाम्ना काव्यकारेण काव्यसङ्ग्रहस्य नाम विहितमेवास्ति। समष्टिकाव्ये कविरसौ बुद्बुदपदेन क्षणभङ्गुरस्यात्मगतभावस्य आत्मकथां प्रस्तौति। योऽयं बुद्बुदः वीचीनां नानाऽऽवर्तविवर्तसन्दोहाऽऽ– म्रेडनादुद्गतोऽवारितवारिध्धराधृततनुः स क्षणायुरपि कल्पस्थायित्वमात्मन उत्प्रेक्षते सत्स्वपि तस्य नानाप्रत्यवायेषु। स्वात्मनि बुदबुदत्वं परिकल्प्य प्रतिभासादेन सप्तवर्णतरधैंमासाद्य क्षणस्थितोऽपि आकल्पान्तं स्वकीयमायुर्मन्यतेऽसौ कविः। व्यङ्ग्यार्थोऽत्रा गम्भीरः (न तु गूढः) स्वभावाऽऽपतितपदैः परिष्कृतः कवेर्विम्बावगाहि सूक्ष्मचिन्तनपाटवं प्रथयति। मानार्थं यथा–

तेषां स्मितस्य सप्तवर्णच्छविषु

स्पन्दते ममान्तः

क्षणभङ्गुरं जीवनम् एकस्मै क्षणाय

परन्तु क्षणोऽयं

कल्पसहस्राद् विशिष्यते।

'समष्टिः' इति काव्यमनु शब्दालंकारः, आकाशः, धरित्री, बीजानि, शम्बूकाः, शनैः शनैः, वार्धक्यम्, प्रतीक्षारसः, मालवी, भवनस्य वाटिका, देवदीपावली, प्रस्तरस्थले नगरे, देहल्यां मेट्रोयाने, वटतरुः, नारिकेलम्, अधेगमनम्, अनिद्रा, संस्कृतस्य अगाधे सरसि, कोकिलः, पण्डितस्य आधुनिकस्य च संवादः, मुस्ताक्षतिः, न खलु तद्वाच्यम्, वयम्, चायपानकाले, हेमवर्गे हिमपातः, आतपस्य कोटयः, स्नुही, नवा नायिका, नूतनवर्षमर्धैलम् इत्यपराः कविता एकोनत्रिंशत् क्रमशः। आसु काश्चन सवृत्ताः, काश्चन तु पारम्परिकवृत्तरहिताः। अवृत्ता एताः, न तु छन्दोहीनाः। छन्दसस्तु कवितयाऽविनाभावसम्बन्धः। वस्तुतस्तु रमणीयार्थप्रकाशनसमर्थस्वाभाविकपदाऽऽ– पतनमेव छन्दः। तद् विना कविताकामिनी न नृत्यति, न च जनयति कुतुकं मानसे।

काव्यसङ्ग्रहेऽस्मिन् प्रत्येकं काव्यं किमपि किमपि नवं नवं भावं व्यञ्जयद् विशिष्टम्। भाववैविध्यविपणौ सञ्चारयति काव्यसङ्ग्रहोऽयं सहृदयम्। मदनुभूतमिदमपि स्वयं समर्थयति कवी राधवल्लभः स्वीये प्रारम्भिके कथने– "किन्तु स्वल्पोऽपि

यावान् काव्यराशिरिह समावेशितस्तावता मम भावबोधअभिव्यक्तिप्रकारे चिन्तनसरणौ च स जातानि परिवर्तनानि तद्गतं वैविध्यं च सुधीभिः गवेषकैश्च बोद्धुं शक्यमिति मन्ये। अत्रा साम्प्रतिकसाहित्येन मदीयरचनाधरायाः संवादः सविशेषं परिलक्ष्येत" (कविकृतं 'कथनम्', समष्टिकाव्यसङ्ग्रहे) इति।

अत्रा द्वितीये 'शब्दालङ्कारः' इति पद्ये पारम्परिकः शब्दगतोऽलघङ्कारो न बोध्यः। अत्रा तु संस्कारसारस्य संसारस्य शब्द एवालङ्कार इत्यारोपात् शब्दस्य अलङ्कारत्वं बोध्यमिति कवेरयमाशयोऽभिप्रेतः। अयमेव शब्दो विभूषयति विश्वमित्यानन्त्यबोधकत्वं दर्शितं शब्दस्य कविना। द्वितीये आकाशाख्ये पद्ये आकाशस्यापि आनन्त्यं प्रत्यवायैः निरोध्यते इति भावः। एवं तृतीयेऽपि ध रित्रीति पद्ये। एवमेव नैकासु कवितास्वस्य समस्याकीलितमानन्त्यं प्रतिभाति निर्विर्णस्य दूरादेवावलोकयतः। अन्योक्तिविवलिता प्रतीयते धरित्री नाम्नी कविता। बीजानीति कवितायां सूक्ष्मस्य स्थूलत्वसम्भावना व्यज्यते।

बीजानि–शम्बूकाः इति काव्ययोः व्यथा स्फुरति, 'शनैः शनैः' इति कविताऽऽनुष्टुभेनच्छन्दसा प्रणीता गज्जलगीतिधरयाऽऽवर्तयितुं शक्याऽन्योक्तिविडम्बनाऽबद्धा। देवदीपावलीति काव्ये कल्पनागर्भा वास्तविकता संन्यस्ता। एवमन्यदन्यत्तत्रा तत्रा।

काव्यसङ्ग्रहस्यास्य यैश्च काव्यविशेषैः कवेरस्य हृदयगतं विनिश्चेतुं शक्यं, तेषु च कानिचनात्रा स्थालीपुलाकन्यायेन समुद्धर्तुं समीहामहे। तत्रादौ वार्धक्यमिति काव्यं पश्यामः। काव्येऽस्मिन् वार्धक्यमभिशापं न मन्यते कविः। वार्धक्यं नामास्य मते आजीवनं सञ्चितस्य तपसः सम्पत्। यौवनवृत्तं त्यक्त्वा वार्धक्ये जीवनाफलं मधुरतरं सम्पद्यते। अमृत–मृत्योर्मध्ये विद्यमाना स्मितरेखैव जीवनमिति वार्धकमेव परिचाययति। तदिदं कविभाषया–

वृद्धस्यौष्ठे मृत्युः
अधरे लसति चामृतम्।
उभयोर्मध्ये स्मितरेखा
तस्य जीवनम्।। (वार्धक्यम्, समष्टिकाव्यसघ्ग्रहे पृ. 23)

कविरसौ वृद्धस्य मृत्युं दुःखदं न पश्यति, अपितु मृत्युमाता तं स्वाङ्के नयन्ती अनन्तमनुभावयतीति वदति। तदेवं यथा–

यावान् वृद्धो भवति नरः
तावानेव शिशूयति

मृत्युर्मातेव तमेति

तमङ्के धृत्वा जिगमिषति

कुत्र नयसि माम्?

बालायितो वृद्धो मृत्युमातरं पृच्छति

अनन्तस्य महास्रोतसस्तटे

शिलान्ते अवस्थितो मृत्युः

तेन परिहसति

अपि नाम निपातयामि अधः

अपि नाम निपातयानि

इति वृद्धं पृच्छन्। (तत्रौव)

किञ्च, साम्प्रतिके शिथिलितसम्बन्धविसंवादिते समाजे वृद्धाश्रमव्यवस्थां स्पृशन् सन्ततिभिः कृतं तत्त्यागं निर्वासनं वा स्फुटयन् वार्धक्यमाशीर्वादं मन्यते कविः। तथाहि–

तासां स्वस्यैव सन्ततीनां समक्षं

यास्तं बलाद् वृद्धाश्रमं प्रापयितुमुत्कायन्ते?

अपि नाम तदीया इमाः सन्ततयः

अवगच्छेयुः

यत् वृद्धस्य गेहे वर्तनं

नास्ति तासां कृते अभिशापः

अपितु अमृतसम्भृतानाम् आशिषां वर्षा आस्ते? (तत्रौव)

अपराऽस्ति मालवीति कविता जीवने नवभावद्योतिका। स भावः क्वचिन्निर्वेदो वा स्यात्, क्वचित् सद्विविवेकेन पुरावलोकनं वा स्यात्, क्वचिच्चात्मदृष्ट्या जगद्दर्शनं वाऽपि स्यात्। अत्रा कवेस्तृतीयो विकल्प एव ज्यायान् प्रतीयते। मालवी आत्मदृष्ट्या परिवेशसाक्षात्कारं द्योतयति। स्वीयसेवानिवृत्तिं परामृशन् मालवीपदेन मालवीभाषासदृशानतीतान् ग्राह्यभावान् स्मरति कविः, ये किलैकान्ततः स्वीया एव भवन्ति जीवने प्रत्येकस्य। यस्तावन्मालवीं स्फोटयति हृदि, स खलु विगतजीवनकालस्याखण्डप्रत्यवभासः। स च रहसि अन्तःकरणे जागर्ति। भावमेनं कविः स्वयमेवं वदति यत्–

सेवानिवृत्तेः सोपानसरणिम् अवरोहतः
धरित्रीं स्पृशतः स्म चरणौ
वानप्रस्थः संन्यासयोः सन्धौ अवस्थितस्य
मम मनसो नैकानि आवरणानि त्रुटितानि
तदा ब्रह्मसूत्राशाङ्करभाष्यस्य पृथुलकायग्रन्थमधः
अवस्कन्ना
काव्यप्रकाशपुस्तकस्य पृष्ठतो–
यस्मिन् कस्मिन्नपि कोणे निलीना
मम अनवधनताया एकस्मिन् क्षणे
परावृत्ता अकस्मात्–
मालवी।
यथा क्रौञ्चवधे जाते
कवेः शोकः
श्लोके स्पुफटितः स्यात्
क्वचित् द्वित्राणि वाक्यानि मालव्यां
पत्न्या आलपतो मे वक्त्रात्
सहसैव समुद्गतानि
इदानीं चिन्तयामि
कः स
य एवमकस्मान्मालवीमस्फोरयत्
स विगतेषु षष्टिवर्षेषु क्व निलीन आसीत्?
अहं स्वाभ्यन्तरमवलोकयामि
तस्य प्रत्यभिज्ञायै।

एवं लघुन्यपि बृहत्तरसम्भावनां प्रस्तौति 'भवनस्य छदौ वाटिके'ति कविता। 'प्रस्तरस्थले नगरे' इति कवितायां कविः महानगरीयसभ्यतायाः विडम्बनाः दर्शयति। किञ्चात्रा निर्जीवोऽपि प्रस्तरः सभ्यताया अस्या आक्रमणमपि सोढुं न शक्तः। कविरत्र स्पष्टवक्ता विडम्बनानामासाम्। अत्रा दिङ्मात्रं यथा–

प्रस्तरस्थले नगरे
सर्वं प्रस्तरायितम्।
प्रस्तरस्य उद्यानानि
प्रस्तरस्य प्रासादाः
प्रस्तरशरीराणि
प्रस्तरस्य मनांसि
प्रस्तर इव अहङ्कारः
यत्र गम्यते तत्र प्रस्तराः
प्रतिमानिर्माणाय स्थापिताः
प्रस्तराणां निचयाः
प्रस्तराणां प्रतिमाः
प्रस्तराणां समाध्यः
प्रस्तरायितानि मनांसि
प्रस्तरायिता बुद्धिः
प्रस्तरनिचये
क्रन्दन्ती पृथिवी।
पृथिव्याः तनौ

प्रस्तरान् क्षिपन्तो जनाः। (प्रस्तरस्थले नगरे, समष्टिकाव्यसङ्ग्रहे पृ. 35–36)

वटतरुरिति काव्ये वेदना–प्रवञ्चनादयः समुल्लसन्ति। अत्रा वटतरुः निर्विकारप्रबु (जनप्रतीकभूतः। तस्यैव वेदना कविदृशा–

गतास्ते पक्षिणः
ये अस्य सहस्रशाखासु सायं समेत्य
स्वीयैः कलचुङ्कृतिभिः
सहस्रतन्त्रीर्वीणा इह झङ्कारयन्ति स्म।
तेषां नितरां दीनानां तपस्विनामेव कार्मण्यमिदमासीत्
यदयं वटवृक्षः किंवदन्तीवृक्षः कदाचित् सञ्जातः

इदानीं ताः किंवदन्त्योऽपि
शुष्कपत्राणीव निपतिताः
तासां मर्मरध्वनिरपि
न श्रूयते सम्प्रति।
सम्प्रति किंवदन्तीरहितः
एकाकी तिष्ठति
अयं वटवृक्षः ।।

कोकिलः इति कवितायां कविः समाजिकविपर्यासं विशदयति। तथाहि–

एषु दिनेषु
कोकिलो व्याकुलो वरीवर्ति,
कदा कुहूकारः कर्तव्य इति स न जानाति
पूर्वैः सूरिभिः कृताः सर्वा व्यवस्था अनेन हतकेन
सम्प्रति विपर्यासं नीताः
यदा वसन्तस्य किमपि नामावशेषो न स्यात्
तदा अयं कूजति
तीक्ष्णं कूजति
कर्णकुहरं विदारयेदिति कूजति।

एवमेव काव्यसङ्ग्रहस्यास्य सर्वाः कविता विलोक्य, काश्चिच्च परिशील्य प्रतीमो यत् कवेः राधावल्लभस्य रचनाधर्मो महति परिवर्तने परिणमितः। पूर्वमेवास्य कवितासु विसंवादविरोधः प्रत्यग्रः परिलक्ष्यते स्म, यः खलु आधुनिककाव्यतत्त्वेष्वन्यतमः। किन्तु, सम्प्रति विशेषतोऽस्मिन् काव्यसङ्ग्रहेऽनन्ततावादस्य भूयान् प्रवाहः समवलोक्यते। अयं तावदनन्ततावादः परिपक्वचिन्तनधरायाः प्रकृष्टं फलम्। अनेन काव्यं सार्वकालिकं सुन्दरं च चकास्ति।

आचार्यः, साहित्यविभागः,
श्रीलालबहादुर–शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली– 110016

अभिनवाचार्यराधावल्लभीयसारस्वतसाधनासु मानवीयसंवेदनाया अभिनवत्वम्

डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्यायः

नैतत्सर्वथा समुचिताभिधानं यच्छब्दार्थशरीरिणी विविधरसात्मिका बहुविधैश्चालङ्कारैः हृदयावर्जकैः सुगुम्फितेयं साहित्यललना काचिन्नवयौवना प्रेयसीव सहृदययुवमनोमानसरोवरविभ्रान्तकारिणी। वस्तुतस्तु साहित्यललनेयं काचित्परिणता कान्ता इव समग्रस्यापि समाजस्य सत्पथप्रदर्शिका मुक्तिदायिनी कल्याणसंसाधिका चेति निश्चीयते। कान्तासंमिततयोपदेशयुजे' इत्यादिभिः मम्मटादिप्राचीना. चार्याणां। 'मुक्तिस्तस्य प्रयोजनम्' 2 इत्यादिभिः राधावल्लभप्रभृतीनामर्वाचीनाचार्याणां चोक्तिभिः, अपि च। लोकानुकीर्तनं काव्यम्[3] इति स्वरुपाधायकं चराचरसकललोककल्याणकारि साहित्यमिदं परामृशति मानवीयमूल्यबोधम्। आवेदयति मानवीयसंवेदनायाः महत्त्वमुपादेयत्वं चेति सकलसहृदयसंबेद्यमिदं तथ्यम्।

तदिदं साहित्यं सुरभारत्या संभूषितं सत्प्राथम्यमावहतीति नास्त्यत्र काचिद्विप्रतिपत्तिः। तदस्य सुरभारतीसाहित्यस्य यात्रा सुदीर्घा निरवच्छिन्ना च। अपि च यात्रायामस्यां नैके पथिपरीवर्त्ताः समजायन्त संजायन्ते च। सेयं यात्रा प्राचीनोर्वाचीना चेति द्विधा व्यपदिश्यते सूरिभिः। अर्वाचीनायां च पुनः स्वातन्त्र्यपूर्ववर्त्तितत्वं स्वातन्त्र्योत्तरवर्त्तितत्वं चेति द्विविधं कालावच्छिन्नत्वम्।

स्वातन्त्र्योत्तरवर्त्ति यत्संस्कृतसाहित्यं तत्तु इदानीन्तनम्। अधुनातनम्, अत्याधुनिकं, सांप्रतिकं, समसामयिकम्, अभिनवं, चेति बहुधा संज्ञायते तत्तत्साहित्यसुधारसज्ञैः। तदस्मिन्नत्याधुनिकसंस्.तसाहित्यजगति आविर्भूतेषु असाधारणप्रतिभावत्सु कतिपयसारस्वतसाधकेषु अन्यतमोऽभिनव आचार्यराधावल्लभस्त्रिपाठी विश्वजालपुटे प्रथितयशा कश्चन भास्वरः ज्योतिष्मान्निति कस्य वा सामाजिकस्यागोचरत्वम्। वस्तुतः कालजयी सारस्वतसाधकोऽसौ प्राचीनतार्वाचीनतयोः समन्वयकः सन्नेकाधारेण सुरभारत्याः सकलविधासु

सुसमीक्षकः, लेखकः, शास्त्रधीः, सहृदयसामाजिकः, सत्कविः, शिष्यवत्सलः शिक्षकश्चेति नात्र संदेहलेशावसरः। अर्वाचीन. पदपतितोऽप्यसौ लीलया प्राचीनतां न जहाति द्य बहुमुखिप्रतिभावतः युगजन्मनोऽस्य समग्रव्यक्तित्वजातस्य प्रकाशनीकरणप्रयासो नो तथैव कल्प्येत। यथा सूर्यवंशवर्णनावसरे कालिदासस्य स्थितिरभूदिति[4] धिया कश्चन गुणविशेषोस्माभिः प्रकाशयितुमिष्यते।

सोऽसौ वाणीविलासः राधावल्लभः स्वकीयसारस्वतसाधनायाः प्रत्येकं विधासु आधुनिकसाहित्यस्य प्राणभूतानि नैकानि तत्त्वानि सामाजिकविसङ्गतेः यवनिकानिस्तारणं, श्रमिकदुर्दशा, दलितपीडा, नारीचेतना, धर्माडम्बरः, राजनीतेः दुर्नीतिग्रस्तता चेत्यादिनि समावेशयन् प्रकटीकुरुते स्वकीयमर्वाचीनत्वम्। तदेतेषां तत्त्वानां सारभूतं यत्तत्त्वं, तत्तु मानवीयसंवेदना। तदिदं मानवीयसंवेदनात्मकं तत्त्वं कवेरस्यानितरविशिष्टत्वमभिनवत्वञ्च ख्यापयति इति नो तदेव प्रतिपाद्यम्। सकलास्वपि रचनास्वस्य मानवीयसंवेदनायाः प्राणाधायकत्वम्। न तेषां समेषां लब्धसत्ताकस्थानानां प्रतिपादनं सम्भाव्यमिति कृत्वा सामर्थ्यानुसारं कानिचन एव काव्यगतानि लक्ष्यस्थानानि स्थालीपुलाकन्यायेन अत्र प्रतिपाद्य समीक्षितुमस्माभिः प्रयासः क्रियते।

वस्तुतः मानवीयसंवेदनायाः जीवितसर्वस्वमिव प्रतीयते तद्रचनाजातस्य परिशीलनात्। अपि च सेयं तदीया मानवीयसंवेदना न केवलं भूमण्डलावस्थितं मानवसमाजमधिकरोति, अपि तु चराचरम् आधिभौतिकम्, आधिदैविकम्, आध्यात्मिकं च सकलं लोकजातं जीवच्छरीरं निर्जीवञ्च तथा च चेतनया विभाव्यमानं सकलमपि भुवनम् क्रोडीकरोतीति'' लोकानुकीर्त्तनं काव्यम्'' इत्यादि तत्कृतकाव्यलक्षणात् स्वतः सिद्धयति। वस्तुतत्त्वमपि इदमेव यत् संवेदना एव काव्योत्पत्तेः कारणभूतं तत्त्वं सत्काव्यस्यात्मत्वमाधत्ते। उक्तञ्चात्र ध्वनिकारेण–

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।[5]

तदेवं संवेदनया सहृदयस्य कवेः चेतः द्रवीभूतं सत् काव्यतत्त्वमुद्भावयतीति निश्चितः। आचार्यराधावल्लभीयरचनासु तु मानवीयसंवेदना एव तदीयभावपक्षस्य प्रमुखं वैशिष्ट्यम्। तदनया दृष्ट्या ''लहरीदशकम्'' इति काव्यसंग्रहस्तु अप्रतिमोभिनवश्च। तदत्र पुनः दरिद्रान्, शोषितान्, दलितान् च जनान् प्रति संवेदनायाः करुणायाश्च यः प्रवाहः कविवरं त्रिपाठिनं वाल्मीकिभवभूतिप्रभृतीनां चिरन्तन–काव्यकाराणां दायादत्वेन दृढं पुरस्करोति। तदत्र कविवरेणाभिनव चिन्तकेनानेन तु साहित्यकारस्य परिभाषा एव विनिर्मिता यत्। यदि

कश्चित्साहित्यिकः जनतोद्बोधनाय किमपि न प्रयतते, उत जनताजनार्दनं नैवाभिजानाति, तर्हि तस्य यत्किमपि तत्सर्वं निरर्थकमेव।

तद्धि–

शास्त्रस्याध्ययनं वृथाधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा,
वैकल्यन्तु गता कथापि सकला पौराणिकी शाश्वती।
नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितो
नो ज्ञाता यदि नो कृतोऽस्ति जनतोद्बोधनाय यत्नो वृथा।।[6]

कविवरराधावल्लभस्य मानवीयसंवेदना तद्रचितकाव्यांशेऽस्मिन्नपि स्पष्टमुद्भासते। यथा–

को जानीते हृदयं को वैतस्याः कथं व्यथां शृणोति।
कुररीवत्कान्तारे जनता करुणं कथं विरौति।।[7]

मानवमात्रस्य कारुण्येन कवेरस्य चेतोऽत्र नितरां दूयते एव। अपि च दलितोत्पीडनं प्रति योऽस्य संवेदना, सा तु उपाधिरहिता सहजप्रसृता स्वाभाविकी एव। तथ्यमिदं कविः स्वयमेव स्पष्टमावेदयति जनतालहर्याम्

नाहं स्तौमि वयामि नैव मसृणं चीनांशुकं स्वैः पदैः
शब्दैर्नो रचयामि कृत्रिमसुमैश्चित्रां विचित्रां स्रजम्।
एषा सा सहजं विभावितगुणा मे मानसे संस्थिता
व्यक्तिं स्वस्य करोति चैव जनता वाग्भिर्ममैषा ध्रुवम्।।[8]

दरिद्रस्य दुष्करां जीवनयात्रां दर्शं दर्शं परमकारुणिकोसौ अन्तः विलपति। तद्दुर्दशां च वर्णयन् ब्रूते–

वसनं परिधूसरं वसानां नितरां क्षाममुखी हृतस्वरूपा।
अतिनिष्करुणेन केन नीता जनतैषा कठिनां दशां विषण्णा।।[9]

कस्यचिन्निर्धनस्य ग्रीष्मसन्तप्तस्य हिमगोलकविक्रेतुः आजीविकासंवलितां दयनीयां दुर्दशां पश्यन्नसौ दूयते स्वचेतसा इति तद्भावनाप्रसृतं पद्यमेकं यथा–

तप्तायःपिण्डवद्दीप्ते शून्ये घण्टापथे मुहुः।
हिमगोलकविक्रेतुराह्वानं विचरत्यहो।।[10]

बुभुक्षितानां दीनजनानां चेतोऽसौ जनकविः सम्यगेव अवबोधते, एतेषां दयनीयतायाः हेतुभूतान् भ्रष्टाचारिणः दुर्वृत्तान्नपि भृशं तर्जयन् परिलक्षते बहुत्र। तद्धि –

केनचित् प्राभृतैः प्राप्यते रोटिका

केन वोत्कचमादाय सा प्राप्यते।

अग्रहस्तं पुरः सारयित्वा मुहु.

दीनदीनैः स्वैरैः केनचिद् भिक्ष्यते।।[11]

साम्यवादिनोऽस्य कवेरभिप्रायोऽयं यत् कश्चित्तु विनाश्रयनोऽच्छल प्रपञ्चादिभिरुपायैः अधर्मरीत्या स्वकमुदरं पूरयन्नास्ते। परन्तु दुःस्थेऽस्मिन्समाजे आदिवसकं श्रमं कुर्वन्नपि कश्चिद्दीनः रोटिकामेकामधिगन्तुं निष्फलो भूत्वा स्वजठराग्निना दृढं संतप्यते इति अहो कियन्न मर्मन्तुदं तथ्यम्। कविवरस्यास्य ''सन्धानमिष्टि काव्यसंग्रहेपि मानवीयसंवेदना बहुधा प्रतिबिम्बते। तदत्र ''शुष्कं सरः'' इति काव्ये दलितानां श्रमिकाणां च शोषणमुत्पश्यतः तस्य व्यथितचेतः ननु द्रष्टव्यम्–

शोषितां च स्वदेशस्य जनतामिव वीक्ष्य ताम्।

धूमाधारप्रपातोऽयं विषीदन्निव लक्ष्यते।। 12

अपि च तत्रैव पुनः –

ग्लपिते श्रमिकस्यास्ये स्वेदविन्दुविचित्रिते।

अलं मुखपटप्रीतिं कुर्वती करुणान्विता।।[13]

कालिदासीयकृतेः छायोऽपि अत्र प्रतिविम्बते। आचार्यत्रिपाठीवर्याणां। प्रेक्षणकसप्तकम् 'इति लघुरुपकसंग्रहे प्रतिप्रेक्षणकं मानवीय. संवेदनाया अपूर्वत्वं दरीदृश्यते। तत्र 'सोमप्रभमिष्टि प्रेक्षणके विमलायाः चरित्रमाध्यमेन एकविंशतिशतकसंभवायाः उच्चशिक्षितायाः धनोपार्जनक्षमाया अपि नार्याः परतन्त्रोपेता निःस्सहाया च दशा समुपस्थापिता। तदिदमुपस्थापनं कविहृदयस्य नारीचेतनात्मकमानवीय– संवेदनां प्रकटयति 'मुक्तिः' तथा 'मशकधानी' इति प्रेक्षणकद्वये तु दलितपीडां प्रति कवेश्चेतः द्रवीभूतं परिलक्षते। तथ्यमिदं कविरसौ अभिव्यनक्ति मशकधान्याः प्रमुखपात्रसूत्रधारमाध्यमेन यत्। 'यथा ऐश्वर्यमदावलिप्ताः श्रेष्ठिनः सामन्ताः वा श्रमिकाणां दरिद्राणां तथायं रक्तमस्माकं चूषति।[14] इति 'प्रतीक्षाष् इति शीर्षकान्विते प्रेक्षणके मध्यमवर्गीयपरिवारस्य या दुर्दशा, तस्याः सम्यक्चित्रणं विहितम् तदेतदपि कविवरस्य मानवीयसंवेदनायाः परिणामजन्यमेव।

तदेवं 'गीतधीवरम्' इत्याख्यं रागकाव्यमपि आवेदयति भृशं कवेः जीवनदर्शनसंवलितामभिनवां मानवीयसंवेदनाम्। दिङ्मात्रं पद्यमेकमुपस्थाप्यतेत्र–

त्रायते दुर्बल मत्स्यमेनं लघुं

ग्रस्यमान्यं तु दीनेन मीनेन कः।

पश्यतो विप्लवं क्षुण्णपाथोनिधौ

मानसे धीवरस्य व्यथा जायते।।[15]

स्पष्टमत्र प्रतीयते यत्, दुर्बलस्योपरि सबलस्याकारणमत्याचारं दर्शं दर्शं कविरसौ जनवादी धीवरव्याजेन अत्यर्थम् अन्तस्तपतीति। तदेवमभिनवाचार्यराध ाावल्लभीयसारस्वतसाधनायामापतितानां कृतीनां समीक्षणात् स्पष्टमेव प्रामाण्यते यत् तत्तत्कृतिषु बहुत्र प्रतिफलति तदीयलोकोत्तरमानवीयसंवेदनाया अभिनवत्वमिति दिक्।

1. मम्मटकृतः का. प्र. त्र 1/2
2. आचार्यराधावल्लभकृतम् अ. का. सू. 1/2/1
3. अ. का. सू. – 1/1
4. क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ..(रघु. – 1/2)
5. आनन्दवर्धनाचार्यकृतः ध्वन्या. 1/5
6. जनतालहरी – पद्यसं – 4
7. जनतालहरी – पद्यसं – 23
8. जनतालहरी – प. सं. – 12
9. जन. लहरी – प. सं. – 22
10. निदाघलहरी – प. सं. – 6/30
11. रोटिकालहरी – पृ. सं. 33
12. संधानम् – पृ. सं. 21
13. संधानम् – पृ. सं. 24
14. प्रेक्षणकसप्तकम् – पृ. 46
15. गीतधीवरम् – गीतिः 1, पृ. सं. 17

संस्कृततिभागाध्यक्षः

राजकीयबिडलामहाविद्यालयः, भवानीमण्डी, (राज.)

आचार्यराधावल्लभत्रिपाठिमहोदयानाम् आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये योगदानम्

प्रो. मिनति रथः

जयन्ति ते सुकुतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशः काये जरामणजं भयम्।।

संसारे धनं नश्वरं, जीवनं नश्वरं, सर्वेऽपि पदार्थाः नश्वराः किञ्च स्वयमेव संसारः नश्वरः। एतद् विमृश्य सुधियो यश एव कामयन्ते। यशो कदापि न म्रियते। स्वीय अप्रतिहतकाव्यप्रतिभया कविः यशः शरीरे चिरं समराङ्गणे प्राणान् सहर्षं जुह्वति, कृपणाः दातारः जायन्ते, साधारणाः जनाः स्वधर्माचरणाय बद्धपरिकराः जायन्ते। असम्भाव्याः अपि घटनाः सम्भाव्याः भवन्ति । एतदर्थं प्रतिभा अपेक्ष्यते, शास्त्रज्ञानमभिलष्यते, सत्कवीनां सन्निकर्षञ्चापेक्ष्यते। महद्ज्ञानं विशालमनुभवञ्च कामयेते। यस्मिन् कवौ एतद् सर्वं समुपलभ्यते स एव कविः अपारे काव्यसंसारे अपरः प्रजापतिपदभाक् भवेत्।

आधुनिककाव्यसंसारे एतादृशाः अपरः प्रजापतयः सन्ति आचार्यराधावल्लभ त्रिपाठीमहाभागाः। सुरसरस्वत्या आधुनिककाव्यनिर्मातुषु सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां गीर्वाणवाणीसुधाधारापरिप्लाविताना स्वनामधन्यानां त्रिपाठीमहोदयानां काव्यं कविताकामिन्याः अपूर्वं विलासमिति नात्युक्तिः। येषां वदने श्रीः मुखे च सरस्वती निवसति ते कविपुङ्गवाः श्रीमन्तः आचार्याः त्रिपाठीमहोदयाः 101 नव्यकाव्यनाटकादीनां रचयितारः 210 शोधपत्राणाञ्च सफलनिर्मातारः वर्त्तन्ते। फेब्रुअरीमासस्य पञ्चदशमेदिने 1941 ई. वर्षे मध्यप्रदेशेषु राजगडजनपदे जनिं लब्ध्या पितृणां श्रीमद् डॉ. गोकुलप्रसादत्रिपाठिमहोदयानां कूलमाह्लदिवन्तः इसे सरस्वतीवरपुत्राः त्रिपाईमहोदयाः। नैकेषुविश्वविद्यालयेषु च अध्यापन्तः एते आचार्याः अनेकदेशस्थितेषु विश्वविद्यालयेषु शैक्षिकानुसन्धानकार्यं च सम्पाद्य अवशेषे राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य कूलपतिपदं विभूषितवन्तः। न केवलं लेखने अपितु रङ्गमञ्चेषु विविधसंस्कृतनाटकानां परिवेषणे काऽपि अपूर्वा दक्षता

विद्यते एतेषां महानुभावानाम्। निरन्तरसारस्वतसेवया बहुसम्मानेन विभूषिता एते महोदयाः विश्वेस्मिन् विश्वे सुरभारतीमातुः भारतमातुः च मुखं गौरवोज्वलं कुर्वन्ति। भारतधरा इमान् कविपुङ्गवान् प्राप्य नितरां धन्यतामेति।

आचार्याणां लेखनीप्रसूतासु विविधासुरचनासु संस्कृतभाषायाविरचितः आधुनिकच्छन्दोपेतः 'सन्धानम्' इत्याख्यः काव्यसंग्रहः नैकविषयवस्तुसंवलिताध ुनिकः भव्यभावनाविलसितः नव्यशैलीविमण्डितश्चास्ति। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य कुलपतित्वेन तेषां मत् कृते करूणां भृशं स्मारं स्मारं काव्येसानभिज्ञायाः मे मनः तेषां काव्यविषये कामपि समीक्षा विधातुं निरन्तरमुत्सहते।

सन्धानामित्याख्ये काव्यसंग्रहे त्रिपञ्चाशत्काव्यानि सरसुन्दरशैल्या संग्रथितानि यानि सांप्रतिकजीवने नित्यमनुभूतानि भवन्ति। नित्यमनुभूयमानानां स्वाभाविकघटनानां मनोरमचित्रणं कवेः महनीयाकवित्वशक्तेः परिचायकमस्ति। प्रातः कालस्य यथार्थं चित्रमत्यन्तं सरसशैल्या सरलतयागिरा प्रकाशयन्ति कवयः –

हिमनिः स्यन्दिनी प्रातर्वनस्थली भवेद् बहिः।
आकाशाच्चवमानाः स्युरज्ञात वाष्पिविन्दवः।।
कमलानि प्रफुल्लानि मन्ये स्नातानि आतपे।
द्विचक्रवाहने दुग्धपात्राण्येष नयन् द्रुतम्।
छलच्छलेरवैर्गोपो रणत्कारैश्च निर्गतः।।
हत्यानृशंस संहार बलात्कारचयं धनम्।
प्राङ्गणे वृत्तपत्रं स्याद् दुर्भाग्यमिव सञ्चितम्।। (उन्निद्रम्, पृ. 4)

कवितायामस्यां सांप्रतिके समाजे नैतिकतायाः अवमूल्यायने कविप्राणः कथं व्यथाग्रस्थ्तो जायते तस्य स्पष्टं प्रदत्तमस्ति। तथापि नूतनसूर्योदयेन सह नूतनानां आशानां किरणमपि कवेः हृदयाकाशमुद्भाषयति –

उत्थातव्यं ममाप्येव शय्यां स्वप्नं च मुञ्चता।
समाह्वयति झाङ्कृत्य गवाहक्षान्मां प्रभाकरः।। (उन्निद्रम्, पृ. 4)

सन्धानमित्याख्यस्य काव्यसंग्रहस्याध्ययनावसरे मनसिस्वतः एव प्रश्नः समागच्छति यत् त्रिपञ्चाशत्संख्यककवितालयस्यास्य संग्रहग्रन्थस्य नाराकरणं कथं सन्धानमिति विहितं काव्यकारैः। यतोहि त्रिःपञ्चाशत्कवितासु 'सन्धानम्' इत्यपि एका कविता। अन्याः कविताः आधारीकृत्यास्य नामकरणं भवितुमपि

अर्हति इति जायमानायाः अनुसन्धित्सायाः समाधाने एवं भावयिंतु शक्यते यत् सन्धानमिति कवितायाः पठनेन स्वयम् अनुसन्धित्सा एवं भवेत् तद्गतं रहस्यमत्युन्मोचितञ्च जायते।

अपि विच्छिन्नवस्तूनि सन्धीयते क्वचित् किमु।
मृण्मयी पुष्पधानी सा भग्ना कुट्टिसमार्जने।।
शकला निहिता स्तस्या मृहिण्या काष्ठविष्टरे।
सुबहून् दिवसान् यावन्निक्षेप इव रक्षिताः।।
निधापितानि काव्यानि लेखं तु कर्गदे।
विलुप्तानि व्यतिकरे कस्मिश्चिद् विस्मृतानि च।।
अभ्रङ्कषं समुड्डीनो स्वैरं मोमुद्यते पुनः।
पक्षी समुद्रपोतस्थो पोतं प्रति प्रति निवर्तते।।
भ्रमत्कुलालचक्रेऽपि स्वयं यादि पिपीलिका।
तथा समाजयात्रायां सङ्गतोऽस्मि पृथक् चलत्।।
मधूकान्तर्विनिष्पेषनिष्यन्दिनि मधूनि वा।
सम्पीयन्ते विभज्यते निधीयन्ते च मानसे।।
आधानेन विधानेन सन्निधानेन चैव सा।
निमीयतेऽतिमहती परितः कापि संहिता।।
यद् यद् वक्रं प्रकृत्यैव विच्छिन्नं चार्धमेव वा।
कृतसन्धानमपि तजज्जायते च पुनः पुनः।।

विचित्रेऽस्मिन् संसारे कवेः जीवनमतीव विचित्रम्। आत्मरतः कवि सर्वदा आत्मनि एव रमते। कदा सूर्यः उदेति अस्तं च यादि इत्यत्र तस्य नास्ति विचिकित्सा। स्वान्तः सुखाय कदा च सः जीवनगाथां लिपिवद्धं कुरूते कदा च ताः विस्मृतिगर्भे निपतन्ति। आत्मविस्मृतः कविः यदा आत्मस्थो भवति तदा इतस्ततः विच्छिन्नं विक्षिप्तञ्च तद् मर्मानुभवं अन्तः मनसि यदा सन्धानं कुरूते तदा विक्षिप्ताः ते च अन्तर्भावाः एकत्रीभूय पुनः मनोदेशं प्रत्यावर्त्तन्ते। मानसे केनापि चिन्तनण्डेन मथिताः कवेः ताः मनोदशाः महती संहितारूपेण पाठकदयं मोहयति आह्लादयति परिप्लावयति च। कविवरैः त्रिपाठीवर्य्यैः विरचितस्य सन्धानाख्यकाव्यस्य रहस्यगतोऽर्थमित्थं भावयितुं शक्यते।

सन्धानाख्ये काव्यसंग्रहे कविवरैः बहु देशात्मबोधकानि काव्यानि च सन्निवेशितानि। राष्ट्रस्य निदाघत्रस्तमस्तव्यस्तं जनजीवनं कविहृदयमान्दोलयति तद् पश्यन्तु –

ज्वलत्यथ धरा शुष्कजीवनं प्रज्वलत्यहो।
प्रदीप्ते वह्निना गेहे कूपं खनति शासनम्।।
शीतयन्त्रगलत्तापक्षपितातसद्मसु।
शेरते विपुलामोदं धनिका अधिकारिणः।। (निदाघलहरी, पृ. 62)

राधावल्लभमहोदयानां काव्ये अभिव्यक्तयो भवन्ति नानाननाः। कदाऽपि ताः नीतिवादितां परिपुष्णन्ति। कविगोष्ठीमध्ये कविम्मन्याः कवयः नीतिवादितां विहाय कथं भुजमुत्तोल्य कुर्दन्ति काव्यव्याजेन कविः राधावल्लभः तेषां प्रति सहिष्णुता एव सांप्रतिककाले काव्यनाशस्य अन्यतम हेतुरिति निरूपयन्ति। प्रसङ्गेऽस्मिन् कवेः सदुपदेशोऽत्र विलोकनीयः –

कामं कवित्वलेशोऽपि कवितायां भवेन्न वा।
मञ्चमारूह्य यत्राट्य क्रियते काव्यमेव तत्।।
कविम्मान्यास्तु साकूतं साटोपं बहुभङ्गिभिः।
भुजमुत्रोल्य कुर्दन्ति, लयतालसमन्वितम्।।
काव्यव्याजेन सम्प्राप्ते कोलाहलहलाहले।
वाणि प्राणिषि तन्मध्ये धन्या तेऽस्ति सहिष्णुता।।

काव्यसंसारस्य एतादृशः अपरः प्रजापतिः त्रिपाठिमहाभागाः स्वीयमधुरकोमलपदावली–माध्यमेन सचेतसां मनो रमयन्ति। प्रामुख्येन कालिदासप्रभावप्रभावितः कवित्रिपाठि – महाभागाः स्वकीयसरस्ततीमभिनवशैल्या प्रतिष्ठापयन्ति। कालिदासमार्गमनुसरन् शक्रचापस्य वर्णनं यथा धनुः खण्डे काव्ये –

वल्लीकाग्रादुदयते धनुर्दण्डं विखण्डितम्।
सन्नद्ध मण्डलाकारमाखण्डलस्य लम्बितम्।।

तथा च महाकविकालिदासदिशा धरित्र्याः भव्यवर्णनां कथं समुपस्थायन्ति त्रिपाठिमहाभागाः धरित्रीदर्शनलहर्य्यां तदवलोकयन्तु –

पश्याम्येनां रजतसदृशीं राजमानां मनोज्ञां।
भक्तिच्छैदैरिव विरचतां भूतिमङ्गे धरित्र्याः।।

उपसंहार

इत्थमाचार्यराधावल्लभत्रिपाठिमहाभागानां बहुनि रमणीयानि देशात्मबोध् ाकानि नवयुगसंस्कारविभूषितानि सामयिकबोधगर्भितानि अनुपमानि काव्यानि संग्रथितानि सन्त्यस्मिन् सन्धानाख्ये काव्यसंग्रहे यानि भारतीयसंस्कृकाव्यभण्डारेउज्वलरत्न इव देवीप्यमानानि भवन्ति।

पुराणेतिहासविभागः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् , श्रीसदाशिवपरिसरः, पुरी।

अन्यच्चोऽयं सुललितकथाबन्धगर्भो कवीनाम्

नारायणदाशः

अन्यच्च–इत्युपन्यासो राधावल्लभीयलेखनीखचितः सद्यः प्रकाशितेषु श्रेष्ठतमः संस्कृतोपन्यासो यत्र औपन्यासिकः शास्त्रज्ञानसम्पन्नेन स्वबुद्धिवैशारद्येन सन्निवेशयति कनिष्ककालिकं महाभारतीयं चित्रम्। मातृसंस्कृतेरुपासको महाभारतीयचेतनायाः प्रवक्ता देशभक्तकथाकारो मातृभक्तपुत्रव्याजेन कथानायकमुखेन विरचयति मातृसूक्तं वैदिकर्षिरिव। माता सत्यमेव उपस्थिता इति स मनुते स्म मनाक्। ऋषिणा उपन्यासकारेण यत् मातृसन्धानं प्रारब्धं तदर्थं स्वर्गकामेन तेन स्वर्गसन्धानमपि कृतम्। यो मातृसूक्तं पठित्वा मातरमावाहयति मातृभूमौ स्वर्गमपि अवतारयति, स ऋषिरेव।

अत्र त्रयः खण्डाः सन्ति, तत्र पुनः क्रमशः 22,7,11 भागाः सन्ति, 65 सन्दर्भाश्च विलसन्ति, विशेषव्याख्यानसहिताः। "तेजस्वि नावधीतमस्तु" इति प्रथमे खण्डे 22 भागेषु कल्पितकथानायकस्य विशाखस्य प्रथमाश्रमस्य कथा वर्णितास्ति, प्रसङ्गतः तस्य पितृगृहस्य, गुरुकुलस्य बाल्यकालस्य च कथा निरूपिता। भद्रपुरीवर्णनेन प्रारब्धोऽयमुपन्यासो यत्र ठक्कुरः सरस्वतीभवने पुराणप्रवचनस्यायोजनं कृतवान्। ग्रन्थिकः "कपिलदेवहूतिसंवादे" प्रसङ्गप्राप्तं स्वर्गं वर्णयति। मातरमन्विष्य तेन स्वर्गकामः कथानायको विशाखः सहसा प्रविश्य प्रवचनसमये एव प्रतिवदति। वार्तालापं विधाय विशाखो तेन सह स ठक्कुरगृहं गच्छति। विशाखस्य बाल्यकालस्य विविधक्रीडाः वर्णिताः अत्र। मात्राचरितानि व्रतानि वर्णितानि। प्रसङ्गतः व्रताचरणध्येयं धर्मीयविवादं, पञ्चदेवोपासनां, गुरुकुलं, मातरं, स्वर्गसन्धानं च सम्यक् वर्णितानि सन्ति। तदा संस्कृतभाषायाः प्रामुख्ये प्राकृतगाथाः तथा सम्मानिताः नासन्। वस्तुतः तात्कालिकं समाजं वर्णयितुकामेन कथाकारेण साधारण–सामाजिकस्य शाकटिकस्य मुखे गाथानां सफलप्रयोगः कृतः। संस्कृतच्छायासहिताः गाथाः मनो हरन्ति। तदापि लौकिकगानानां गाथानां च आदर आसीदिति प्रतिपादितवान्। दिवसचक्राणां भव्यवर्णनेन कालस्य गमनं द्योतयति कथाकारः। माता सूक्ष्मशरीरेण तिष्ठति

इति विचिन्त्य मातृसूक्तं रचयति विशाखः। अस्य सूक्तस्य विशाख ऋषिः, माता देवता, अनुष्टुप् छन्दः। प्रक्रियामेवं निरूपितवान् कथाकारः– विशाखो भूमौ उपविश्य मातृमण्डलं निर्मितवान्। मातृसूक्तं पठित्वा मातुराह्वानं कृतवान्। माता साक्षात् तस्मिन् उपविष्टा आभाति। पृ. 26। अत्र सुवर्णाक्षी इति कीर्तिता इति कौण्डिन्यः स्वमातरं प्रत्यक्षीकृतवान्। एवमेव कथाकारः स्वयं सूक्तं रचितवान्, तस्य साधारणीकरणं च कृतवान्। सातवाहन (हाल) स्य कवेः वर्णनम्, गाथानां लेखकानामपि वर्णनं सूतमुखेन कारयित्वा लौकिकसाहित्येन सह कमपि सेतुं कल्पयति कथाकारः। विशाखः विपाकस्य पितृपादं स्वर्गविषये पृष्ट्वा निरामयं जीवनमेव स्वर्गः इति ज्ञातवान्। भोजनार्थं चतुःशालं प्रविशता तेन ठक्कुरस्य कुशूलः अवलोकितः। विविधधान्यानां मुद्राणां च नामानि दत्तानि सन्ति। सूतः प्रवचने भारतमहिमा–गोपीचन्दन–तिलकप्रकार–कार्यासमहत्वादिकं वर्णयति। अक्षरेषु एव देवाः प्रतिष्ठिताः इति वदति सूतः। मातृसूक्तं स्मृत्वा स्वमातरं स्मरति सूतः। हठात् पुराणलेखनस्य प्रस्तावं प्रस्तौति पौराणिकः सूतः विशाखस्य समीपे। पुराणलेखनव्याजेन लेखनीनिर्माण–ग्रन्थनिर्माण–संशोधनविधानानि वर्णितानि। सूतानां परम्परा, स्त्रीयाजकस्य कथा, मातुरन्वेषणा, विशाखस्य गमनोत्सुक्यमत्र वर्णितानि सन्ति। प्रवचने स्वारस्यसम्पादनाय गोपलीलाकथाः योजयति सूतः। विशाखः पुराणलेखनं समाप्य स्वव्यथां गाथाभिः श्रावयति। मन्दिरप्रतिष्ठान्ते कापालिकैराक्रान्तः सूतो निधिदत्तस्य समीपे नीतः। कालिन्दी अपि त्रिशूलहस्तात् श्वशुरं रक्षितवती। चिकित्सको निधिदत्तस्तक्षशिलायामाचार्यात् सुश्रुतात् पठितवान् इति श्रुत्वा स तत्र गन्तुं सन्नद्धो जातः। सूतवर्यमापृच्छय स वाग्भट्टं सूचयितुं हरिद्वारं प्रति प्रस्थितः। मार्गे आगताः सङ्गम–प्रतिष्ठानपुर– विदिशा–दशार्णदेश–मथुराः वर्णिताः, क्रमप्राप्ताः वैदेशिका, बौद्धभिक्षवश्चापि वर्णिताः, पुरूरवोर्वश्युपाख्यानस्य, मेघदूतस्य च वर्णनम्। तक्षशिलां प्राप्य विविधभाषाव्यवहरद्भिः विचित्रव्यवहारैः भीतभीतैः जनैः मिलितः सः। कनिष्कस्य राज्ये हिन्दूनामुपरि अत्याचारः श्रुतः। तक्षशिलाविद्यापीठे प्रवेशः निषिद्धः। इतस्ततः भ्रमित्वा वितस्तातीरे स्नात्वा सत्रागारे भुक्त्वा प्रसुप्तो द्वयोर्वार्तालापं श्रुत्वा स्नानघट्टे उपालिना सह मिलितः सहसा कनिष्केण समवदत्, तोरणध्वंसात् तं रक्षितवान् च। साक्षात् तक्षशिलायां प्रवेशं प्राप्य, पाठं समापितवान्। समावर्तनं जातम्। मिलिन्दप्रश्न इति पुस्तकमाचार्येभ्यः वसुमित्रेभ्यः समर्पणीयमिति गुरुदक्षिणा घोषिता।

"सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" इति द्वितीये खण्डे सप्त भागेषु विशाखस्य तक्षशिलातः काश्मीरयात्रा विशदीकृता।

यथा--शाकलपुरस्य वैशिष्ट्यं वर्णयन् कथाकारो मिलिन्दप्रश्नपुस्तकस्य नेपथ्यं विशदीकरोति यत् पुस्तकमेव मिलिन्दप्रश्न इति यं यत्नेन नयति विशाख आचार्यस्य वसुमित्रकस्य कृते। वितस्तायाः तीरे तस्य गमनं प्रचलति। अकस्मात् आतपः, अकस्मात् हिमवृष्टिः। सहसा आगता वात्या। कापिच्छाया अनुसरति तम्। सहसा शिलाघातेन तं पातयित्वा वस्तूनि तस्य गवेषयति स्म साच्छाया। केनापि भिक्षुणा शान्तिशीलेन रक्षितः सः। अलकापुरीति गिरिग्रामादागतायाः अर्चायाः कृते पुस्तकविषये सूचयति शान्तिशीलः। डोम्भजातीयैः अपहृतस्य पुस्तकस्योद्धारः। उपन्यासमध्येऽपि थेरगाथा–प्राकृतगाथा–क्षणभङ्गवाद–प्रतीत्य समुत्पादान् निपुणं वर्णयति कथाकारः। प्रचण्डो वात्यसारः। मेघाः स्फुटिताः। अलका प्लाविता। उभावपि तत्र गच्छतः। शान्तिशील एकाकिनीमर्चां स्वीकरोति।

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" इति तृतीयखण्डे विशाखस्य इरावत्या सह विवाहस्य, किन्नरपुरस्य, इदानीन्तनशासकानां दुराचारस्य च कथा वर्णिता। कल्ययोः प्रणयपाशाबद्धो विशाखः स्मरति महाप्रलयदिने कथं शान्तिशीलेन सह अर्चायाः विवाहस्तेन कारितः। गृह्यसूत्रानुसारं विवाहं कारयति– मन्त्रान् पठित्वा सप्तपदी–मधुपर्क– अरुन्धतीदर्शनादिविधिपूर्वकम्। वृष्टिहेतोः प्रवासे अक्षमे विशाखोऽन्ततोगत्वा सुश्रवसो गृहे स्थितवान्। सुश्रवाः तस्य मूलनिवासस्य किन्नरपुरस्य, इदानीं वासस्य नवकिन्नरपुरस्य शासनस्य, पुरोहितस्य मल्लटस्य अत्याचारस्य च कथां श्रावितवान्। महास्थविरेण वसुमित्रेण मिलित्वा तस्मै मलिन्दपन्हं ग्रन्थमुपायनीकरोति। अश्वघोषस्य विषयेऽपि शृणोति। सामनरेण शिल्हणेन गत्वा स प्रवरपुरे अश्वघोषेण मिलति। तस्य मित्रं विपाक एवासीत् सः। शिबिकया तं नवकिन्नरपुरं शीघ्रं प्रेषितवान् अश्वघोषः। नवकिन्नरपुरं प्राप्य विशाखो मल्लटेन सह युद्धेन आघातं प्राप्तं सुश्रवसम्, एकाकिनीं चन्द्रलेखां दृष्टवान्, अपहृता इरावतीति श्रुतवान्। ततः अश्वघोषाय पत्रं लिखितवान्, महाराजेन कनिष्केण साहाय्यं प्रदानाय। इरावती मल्लटस्य अनुयायिभिः अपहृता, निर्दयं भुक्ता, वितस्तातीरे त्यक्ता, भिक्षुभिः सेविता अन्ततो भिक्षुणी जाता। अन्तिमे विशाखः किन्नरपुरस्य शासनदायित्वे नियुक्तः। नरश्चन्द्रलेखायां दृष्टिं पातयति। विशाखः किमपि कर्तुमिच्छति। गृहं परितः नरस्य सैनिकाः, तान् परितः व्यूहरचनां कृतवान् विशाखः। मल्लटः छुरिकया आघातं कृतवान् विशाखम्। चन्द्रलेखा छुरिकामुद्धृत्य व्रणविरोपचूर्णं लिप्तवती। मातः! इति सम्बोधितवान् स मातृसूक्तमुपांशु स्मरन्। सुश्रवाः आगतः। कनिष्कस्य

सैन्यमागतमिति सूचना आगता। पलायमानो नरो विधृतः। ततः अन्यच्च किं जातमित्याकांक्षायामेव उपन्यासोऽयमवसितः।

चर्चितनाम्नः अस्य कथाग्रन्थस्य वैशिष्ट्यमिदमित्थतया वर्णनं सुशकं नास्ति। तथापि केचन बिन्दवः अत्र रेखाङ्कनं कुर्महे।

क. नामकरणम् – अन्यच्च इति नामकरणमेव प्रतिपादयति बहुकिमपि वक्तव्यमानमासीत्, 216 पुटान् विलिख्य अपि बहु किमपि अवशिष्टम्। कथं विवशो वक्ता सर्वत्र आत्मानं स्पष्टकीर्तुं न शक्नोतीति लक्षणीयमेव। अस्य नामकरणस्य पुष्ट्यर्थं कथाकारः शताधिकवारमुच्चारयति ज्ञातसारेणाज्ञातसारेण वा अन्यच्चेति। वस्तुतः प्रथमखण्डस्य दर्शनात्परं समाप्तित्वरा द्वितीयखण्डं तृतीयखण्डं च संक्षिप्तमकारयदिति सहजतया अनुमीयते। सहसा समापनमपि अन्यच्चेति पाठकीयजिज्ञासां प्रत्यग्रीकरोतीति पुनर्वक्तव्यं नास्ति। उक्तं च दयानन्दभार्गवेण–अन्यच्चेत्यत्र याः घटनाः उपस्थापिताः ताः सर्वाः गन्ध र्वनगरलेखोपमाः पश्यत एव विलुप्यन्ते, चन्द्रलेखा वा स्यात्, तक्षशिला वा स्यात्, अलका वा स्यात्। अवशिष्यन्ते केवलं त्वादृशाः उपन्यासानुशीलन निर्मलीकृतमासाः सहृदयाः पाठकाः। पृ. 6 सरस्वतीसौरभम्,। –21

ख. महाभारतीयता – भारतीयतायाः प्रकृष्टोदाहरणरूपेण प्रो. त्रिपाठी प्रस्तौति कालिदासीयं मेघदूतम्। "इसमें भारत का भूगोल है, तीर्थ हैं, पावनभाव है। प्रेमकी वह अनन्यता और निष्ठा है, प्रकृति से एकमेक होने से जन्मी जीवन की लय और संगति है। इस संगति में भारत के जीवनबोध की विश्व को देन है।" पृ. 191 एतस्य लेखकः स्वयमाविष्करोति मेघदूतम्, तत् पुनः सांख्याचार्यस्य ईश्वरकृष्णस्य समीपे, ततः परमब्रह्मचारी कथानायकः निलीय पठितवान् अभिसारिकालक्षणम्। महाभारतीयभावनाया अपरमुदाहरणं प्रस्तुतमस्ति–

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् यान्तु सन्निधिम्।

काश्मीरेषु स स्नाति। पुराणमिमं श्लोकं पठति। अत्रापि परम्पराप्रचलितश्लोकस्य साधुपाठविमर्शे लेखकः सफलकामो वर्तते। किं बहुना, यथार्थपूर्वपीठिकायां गाथासप्तशत्याः यत्र तत्र उदाहरणान्यस्मान् अवश्यमेव कनिष्ककालिके भारते प्रापयति। एवमेव यज्ञ–पुराण–तर्क–वानप्रस्थ–भिक्षूणां संस्कृतिं सांस्कृतिकसन्दर्भपुरस्सरमुदाहरन् भारतीयसंस्कृतेः अत्युत्तमां प्रतिच्छविं निर्माति।

ग. महाख्यानता– भारतीयतायाः भारतमुग्धतायाः च भेदं निरूप्य प्रो. राधवल्लभत्रिपाठी अग्रे वदति–भारतीयता कोई स्थिर और जड अवधरणा नहीं हो सकती। भारतराष्ट्र जिस तरह निरन्तर विकासमान रहा है, उसी तरह भारतीयता की परिधि भी विस्तीर्ण होती रही है। भारतीयता अपने आप को प्रतीकों, मिथकों और आख्यानों में प्रकट करती आई है। – पर आख्यान को पूरे युगबोध के साथ साधना भी उतनी ही बड़ी चुनौती है। बहुत कम कवि भारतीय महाख्यानों की विचित्र वीणा के सारे स्वर इस तरह साध सके कि उनका अनुरणन आज के श्रोता सुनें। पृ. 7–12, दृक् – 15–161 स्थले स्थले उद्धृतानि आख्यानानि इमं महाख्यानेन विपरिणमयन्ति। अत्रोद्धृतानि, तत्र वाचकान्, निमज्जयन्ति, उन्मज्जयन्ति, महाभारतीयं जीवनचित्रं चित्रयन्तीति कथनं साहसमात्रं न स्यात्। एवं प्रतीयते औपन्यासिकः स्वजीवने शिक्षितं सर्वं किमपि समावेश्य स्वोपन्यासं ग्रथ्नाति।

घ. विश्वकोषता– उत्तमे उपन्यासे पदे पदे औपन्यासिकस्य बहुश्रुतत्वं बहुवेदित्वं बहुपाठित्वं महानुभवत्वं च प्रमाणितं भवति। तथैवात्र आचार्यस्य त्रिपाठिवर्यस्य प्रतिभाभावितोऽयमुपन्यासः तस्य प्रतिभायाः विश्वतोमुखत्वं विश्वव्यापित्वं विश्वजनीनत्वं च प्रमाणयति। वेद–वेदाङ्ग–नाट्यशास्त्र– गौतमधर्मसूत्र– शृङ्गारप्रकाश– कुट्टिनीमत–विक्रमाङ्कदेवचरित– भविष्यपुराण– सुश्रुतसंहिताभ्यः उद्धरणानि अत्र सन्ति एव, परन्तु कामसूत्र–गाथासत्तसई– थेरीगाथा–वाचस्पत्य– अमरकोशाश्चाप्यत्र न त्यक्ताः। केवलं गाथासत्तसईतः एव सप्त गाथाः उद्धृताः सन्ति, गोपीलीलाः गानानि च संयोज्य कथं प्रवचनानि मधुरीक्रियन्ते, समाजाभिमुखीक्रियन्ते इति सप्रमाणमुपस्थापयति कथाकारः। गङ्गे च यमुने चैव.. इत्यारभ्य समिधः लक्षणं, लेखनीनिर्माणं, ग्रन्थपठनपद्धतिं, संशोधनपद्धतिमित्यादिकं सर्वमपि प्रतिपादितमस्मिन् विश्वकोषे। सत्यमुक्तं देवर्षिणा कलानाथशास्त्रिणा – उपन्यास तत्कालीन भारत के साहित्य की जो विश्वकोषीय जानकारी देता है वह सप्रमाण है इसके लिए सन्दर्भ टिप्पणियों में देवशास्त्र, साहित्य आयुर्वेद आदि के ग्रन्थों के उद्धरण हैं, उन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं जो हमारे साहित्य में और बाल्यकाल में उस समय प्रचलित थे। पृ. 4. सरस्वतीसौरभम्, 1–21 कनिष्ककालिकभारतादारभ्य काश्मीरेषु साम्प्रतिकेन मेघस्फोटनेन उज्झितग्रामस्य चित्रणं कथाकारस्य लेखन्या पुनर्जागरितमेव। देशस्य नद–नदी–वन–पर्वत–वृक्षलतादिभिः संवलितायाः मनोरमप्रकृतेः चारुचित्रणं सहृदयहृदयं प्रकामं विशदयति। अन्ततो भारतीयसंस्कृतेः जयगानं कृत्वा

मातृसूक्तमपि संपश्यति आर्षमानसेन विशाखभावेन। इमामेव भावनां पुरस्कृत्य कदाचित् ध्वन्यालोककारेण महावाक्यकल्पना कृता स्यात्।

घ. मातृसंस्कृतिसंवेदना – मन्त्रसाक्षात्कारस्य प्रक्रियां सम्यक् विशदीक्रियतेऽत्र यथा–तदेव वदामि। भ्रातः विशाख, स्वर्गः शब्दैः निर्मातुं शक्यते। ऋषय ऋग्भिः स्वर्गं रचयन्ति स्म। यदि वयं मन्त्रान् रचयितुं प्रभवेम, तर्हि स्वर्गमपि रचयितुं प्रभवेम।... तस्मिन् स्वर्गे माता अवतरेत्।.... एवं चिन्तयतस्तस्य वैकल्यं घनीभूतम्। तस्मिन् घनीभूते वैकल्ये स मातू रूपम् अपश्यत्। तत्क्षणं स मातृसूक्तं साक्षादकरोत्। विशाखेनानुभूतं यत्तस्य सूक्तस्य प्रत्येकम् ऋचि माता समाहिता, अथवा ता ऋच एव साकल्येन मातृरूपा आसन्। सूक्तं मुहुर्मुहुस्तस्य पुरः स्फुरति, तस्य सर्वाङ्गमालिङ्गति तमवशमिव करोति स्म। पृ. 25। मातृसूक्तं रचयति विशाखः। अस्य सूक्तस्य विशाख ऋषिः, माता देवता, अनुष्टुप् छन्दः। प्रक्रियामेवं निरूपितवान् कथाकारः– विशाखो भूमौ उपविश्य मातृमण्डलं निर्मितवान्। मातृसूक्तं पठित्वा मातुराह्वानं कृतवान्। माता साक्षात् तस्मिन् उपविष्टा आभाति। पृ. 26। अन्ततोगत्वा पत्न्यां चन्द्रलेखायामपि मातृत्वमाविष्करोति मातृसूक्तं देवीसूक्तं वा स्मरन् – या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता इति। तदर्थं कदाचित् स्वकीयम् ऋषित्वं वा मातृसूक्तस्य सूक्तत्वं वा दर्शयितुकामः कथाकारः पुनरावर्तयति एकवारमन्तिमे, मन्त्रवद् उपांशुरूपेण द्विवारम्। एषा माता सत्या सनातनी सरस्वती तु नास्ति!

ऋषिस्त्वं च कविस्त्वं च सत्यरूपा ऋतम्भरा।
सुव्रता मृत्युहन्त्री त्वं सावित्री परिनिष्ठिता।।

यस्याः प्रत्युत्तरेण त्रिपाठिलेखनीं नमन्नपि ऋषिकल्पो दयानन्दभार्गवो अपश्यत् त्रिपाठिसूक्तम्– त्रिपाठीति काव्यविदं शश्रमणं दिवे दिवे सुमृळीकं वृणीमहे।

उरूगायः कविक्रतुः क्रान्तद्रष्टा विचर्षणि दैवीं वाचं नमस्यति।। पृ.8, सरस्वतीसौरभम्, 1–21

च. नारीसंवेदना – मातृसंस्कृतेर्जयगानमतिरिच्य अत्र अन्यनारीपात्राणि अपि महत्त्वं प्रतिपादयन्ति। तानि विवशतामनुभवन्ति सत्यं वाचकेषु कारुण्यं पूरयितुमलं सन्ति। ठक्कुरस्य सुतस्य विशाखस्य च करुणाप्लाविता विधवा कालिन्दी शेषे स्वश्वशुरं रक्षति, कालीरूपेण त्रिशूलं धारयित्वा कापालिकं प्रहृत्य। काचित् पितुः औद्ध्र्वदैहिकं संस्कारमपि कृतवती काचित् स्त्रीयाजकेन। विधवाविवाहमपि वर्णयति कथाकारः। दाने प्राप्तायाः स्त्रियाः समजिकस्थितेः

वर्णनमित्थं करोति – सर्वेभ्यः स एकैकां दासीं दाने अददात्।... पंक्तिषु स्थापिताः यस्य या रुचिता भवेत् सा ग्राह्या इति चोक्तम्। पृ. 321 वैवश्यं विस्तारयति विशाखस्य द्वितीया माता–अहं पिशाची नास्मि, अहं विवशाऽस्मि, सन्तप्तास्मि, मम केवलमयमेवापराधो यद्रूपवती नीचकुले प्रसूता च। पृ. 44। चन्द्रलेखाविषये वदति–दिनद्वयं तेषां वन्दिनी। तैः सा निर्दयं भुक्ता। अर्धमूर्च्छिता च वितस्तायास्तटे त्यक्ता। पृ. 205।

छ. नूतनशब्दनिर्माणम्– अद्यावधि अस्माभिः लक्ष्यते यत्, नूतनशब्दगठनव्याजेन किं किं न गठितवन्तः किं वा न त्रोटितवन्तो जनाः। परन्तु अत्र आचार्येण यत् श्लाघनीयं साधितमस्ति तत्तु पुरातनप्रसिद्धशब्दानां व्यवहारे आनयनम्। यथा– ठक्कुरः, तुम्बिकम्, प्रतन्वती, वीरुत्, अलसाला, फलिनी, शृङ्गाटकः, पतद्ग्रहः, शालाक्यं, शशः स्त्रीयाजकः, कौमारभृत्यं, अंकोलः, अक्षोटः, परिवेणः, उपहस्तिका, हसन्ती, द्रङ्गः, कपिशीर्षकम्। समेषां सन्दर्भाः अपि दत्ता सन्ति। तदानीन्तन– नगरनामानि अपि संस्कृतीकृतानि एव–भद्रपुरी (भदौही), ऋषिरसा (सिरसा), पुष्कलपुरम्(पेशावर), इरावती (रावी), शाकलपुरम् (स्यालकोटनगर)। एवमेव मुहावराणां संस्कृतीकरणं दर्शनीयमेव–कियतां घट्टानां वारि निपीतम् (पृ.16) इत्यादि। तत्र कारणद्वयं स्यात्। 1. कनिष्ककाले कथावाचकस्य प्रापणम्, 2. विस्मृतप्रायाणां शब्दानामादर्शरूपेण प्रयोगः। उक्तं खलु – एक शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः.. इति महाभाष्यकारेण।

ज. परम्पराणां खण्डनं मानवीयमूल्यानां संस्थापना च– वास्तवस्य पक्षधर औपन्यासिकः शाश्वतिकमानवीयमूल्यानां संस्थापनार्थं रूढिनां खण्डनमपि करोति। मातृदर्शनं, स्वर्गरचनं, स्त्रीयाजकं वर्णयता तेन प्रतिपादितं यत्–अहं जन्मना जातिं मन्ये (पृ. 6), मातुः ऋणं भवति (पृ.13), न स्वर्गो न वा नरकः (पृ. 230), ऋषयः ऋग्भिः स्वर्गं रचयन्ति स्म (पृ. 25), भवतो वासुदेवस्य कथनं न निर्दुष्टम् (पृ. 92), अस्मिन् महादेशे एतावन्तो धर्मसम्प्रदायाः, एतावन्तो भेदाः, परम्परं कलहः। अयं कलहो निवारणीयः, यस्य मनो यं धर्ममभिनिविशते स तं धर्मं निर्वहतु, परन्तु अन्यस्य न छिनत्तु। मूलं तु सर्वेषामयमेव मन्त्रः– आत्मा प्रथमं ज्ञातव्यः इति (पृ.198), देवो नास्ति, वेदो नास्ति, अस्ति केवलं मनुष्यः (पृ. 21)।

झ. परम्पराणां सातत्यं नवीकरणं च– उपन्यासोऽयं भारतीयपरम्पराणां व्रतोपवासपूजापर्वणां, पशुपक्षिलतानां मासानामृतूनामन्ततोगत्वा निसर्गलक्ष्म्याः काव्यमयविन्यासं करोति। शताधिकवन्यपशुपक्षिणां निरूपणं कृत्वाशताधि

ाकभारतीयपर्वाणां समुज्ज्वलवर्णनं विदधति, ऋतुचित्रं च नित्यनूतनरूपेण विस्तारयति कथाकारः विशाखरूपेण। विद्या– विद्यास्थान–शास्त्रागम–मन्त्र–तन्त्र –राग–सङ्गीत–साधनाभिः उपन्यासस्य प्रतिपुटं परिव्याप्तं वर्तते। मार्गे आगताः सङ्गम– प्रतिष्ठानुपर–विदिशा–दर्शाणदेश–मथुराः वर्णिताः, क्रमप्राप्ताः वैदेशिकाः, बौद्धाः भिक्षवश्चापि वर्णिताः पुरूरवोर्वश्युपाख्यानस्य, मेघदूतस्य च वर्णनमत्र लभ्यते। मातुः स्मरन् तस्याः व्रताचरणानि स्मरति विशाखः, ठक्कुरस्य कुशूले विविधधान्यानि पश्यति, आयुर्वेदाचार्यस्य वाटिकायां वृक्षाणां साक्षात्कारं करोति। कुलव्रताचरणविषये विशाखमाता वदति–इमानि प्रतानानि मम मात्रा उपदिष्टानि। तस्यै तस्या मात्रा.. .. मम मातामह्या ... उपदिष्टानि। इमानि अस्माकं कुलव्रतानि। मातुः गौरवं तु सर्वेभ्यः अतिरिच्यते। मातृरूपदेशात् कुलधर्माच्च व्रतमाचरामि। कुलधर्मं न हास्यामि। पृ. 111 नलिनीदलगतजलस्येव तरलजीवनस्य चित्रीकरणे आचार्यस्य लेखनी महीयते। उक्तञ्च दयानन्दभार्गवेण–

आग्ग्रमध्यान्तग्रन्थिभिर्विमुक्ता सौख्यदायिनी।
जयतान्निग्रन्थिः श्रीमद्राधावल्लभलेखनी।।

य. हठात् समापनम् – अद्यतनीयकथासंसारस्य समापनं ज्ञातसारेण नमधुरीक्रियते न वा वृथोपदेशैः भारक्रान्तं, यत्र कुत्रापि कथा समाप्यते, येन पाठकस्तदनन्तरमपि चिन्तयितुं बाध्यो भवति। "तदानीमेव सुश्रवा आगतः। स आह– इदानीं सर्वमुपपन्नं जातम्। कनिष्कस्य सैन्यं पृष्ठतः आगतम्। पलायतम्। पलायमनो नरो विधृतः। एवमेव सहसा समाप्तोऽयमुपन्यासः।

ट. लक्षणस्य सङ्गमनम् – "कविगतसमाधिनिष्यन्दभूतं विविध ाविद्यावदातं सकलशास्त्रतत्त्वसमन्वितं जीवनस्य सर्वाङ्गीणं रूपं निर्दिशत् जगतो नानावस्थानां परिज्ञाने प्रमाणभूतमभिनवकल्पनाभिरामं काव्यमुत्तमोत्तमम्। "एवमेव आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकेति त्रिषु स्तरेषु चरीतार्थतां गतं काव्यमेव भारतीयतायाः प्रतिमानं भवेदिति उत्तमोत्तमकाव्यलक्षणं सुष्ठु सङ्गच्छतेऽत्र। अथवा जीवनस्यैकदेशनिरूपणपरमाख्यानं कथा, गद्यबद्ध उपन्यासो महाकाव्यमयी कथा। इति राधावल्लभीयं लक्षणमपि सुष्ठु सङ्गच्छते। त्रिपाठिवर्यस्य वाक्यमेव महाकाव्यमयत्वं भजतेति का कथा उपन्यासस्य?

अन्ततो शर्ममञ्जुलतायाः वचोभिः स्ववचनमाविष्करोमि तावत्–अतः अन्यच्च परम्पराओं को बताने की गाथा है, शास्त्रों को पहुँचाने का प्रयास है और विज्ञान को सिद्ध करने की प्रयोगशाला है। यह एक ऐसा विलक्षण उपन्यास है जिसने अपनी प्रस्तुति से संस्कृत उपन्यासों के मध्य एक दीर्घ रेखा खींच

दी है अब हम सिर्फ दूसरी रेखा का इन्तजार कर सकते हैं। सत्यमेव एम्.एल. भैरप्पस्य सार्थ–धर्मश्री–आवरणादि–कन्नडोपन्यासान्, मनोजदासस्य अमृतफलम्, प्रतिभारायस्य याज्ञसेन्यादीन् ओडियोपन्यासान् विहाय प्रान्तीयभाषायामपि सर्वगुणसम्पन्नोपन्यासाभावो लक्ष्यते किं पुनः संस्कृते। अन्यच्च उपन्यासः तस्यां श्रेण्यामागच्छति, तथा च शिवराजविजयेन समारब्धस्य संस्कृतोपन्याससाम्राज्यस्य अवसानं संसूचयन् नूतनसाम्राजस्य अयमारम्भं विदधाति।

नाट्यशास्त्रविश्वकोशः : राधावल्लीयो विमर्शः

धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेवः

नाट्यशास्त्रम्–

नाट्यशास्त्रं नाम भारतीयनाट्यपरम्परायाः परिष्कृतं प्राचीनतमं भरतमुनिप्रणीतं ग्रन्थरत्नम्! नाट्यकलायाः शास्त्रीयं वैज्ञानिकं स्वरूपं मुनिना भरतेन समुपस्थापितम्। आसीत् भरतानाम् एका सुदीर्घा परम्परा इति नाट्यशास्त्रस्य अन्तःप्रामाण्यात् परिज्ञायते। तस्याः शाश्वतपरम्परायाः साधनापरिणामस्वरूपं हि नाट्यशास्त्रम् इति वक्तुं शक्यते। नाट्यशास्त्रं समग्राणां भारतीयकलानां कोश इत्यभिधीयते। उक्तं च मुनिना भरतेन–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न कृश्यते।। इति।।–

ना.शा.1.116

नाट्येषु अनुषक्तानाम् अभिनयः, सङ्गीतम्, नृत्यम्, वाद्यम्, वास्तु, मूर्तिकला, चित्रम्, पुस्तकम् आदीनां विविधकलानां नानाविधानां शिल्पानां सुव्यवस्थितं व्यापकं च विवेचनं ग्रन्थेऽस्मिन् कृतं विद्यते। प्रसङ्गतो नाट्याभिनयस्य नाट्यलेखनस्य साधनभूतं सौन्दर्यशास्त्रं काव्यं व्याकरणं चादयो विषयाश्चर्चिताः। नाट्यशास्त्रमिदं सार्ववर्णिकं पञ्चमो वेद इति प्रमाणी कृतं भरतमुनिना।

शास्त्रमिदं षष्टित्रंशद्–अध्यायात्मकं षट्सहस्रमितैः श्लोकैरुपगुम्फितम्। नाट्योत्पत्ति–कथनपुरस्सरं 'रसा भावा ह्यभिनया धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः। सिद्धिस्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च संग्रहः' इति नाट्यसंग्रहस्य मौलिकाः सिद्धान्ताः प्रपञ्चिताः।

नाट्यशास्त्र–विश्वकोशः

आचार्यराधावल्लभत्रिपाठिनां नैकैः वर्षैः नाट्यशास्त्रविषयकाध्ययन– अध्यापन–अनुसन्धानस्य परिणामस्वरूपो ग्रन्थविशेषो नाट्यशास्त्रविश्वकोशः। दिल्लीस्थ–प्रतिभाप्रकाशनेन 1999 तमे खीस्ताब्दे चतुर्भिर्भागैः प्रकाशितं

नाट्यशास्त्रक्त– पारिभाषिक–पदावलीनां विवेचनात्मकं विराटं ग्रन्थरत्नम्। तत्र च

प्रथमे भागे नाट्यशास्त्रस्य भारतीयपरम्पराणां पाश्चात्यपरम्पराणां च ऐतिहासिकः परिचयः प्रस्तुतः। मुनेर्भरतस्य नाट्यशास्त्रस्य विषयवस्तु, पाठसमीक्षा, भरतपूर्वनाट्यशास्त्रपरम्परा, नाट्यशास्त्रस्य परवर्तिन आचार्या इत्यादयो विषया नवीनैस्तथ्यैः सह समुचिताः प्रकल्पिताः। तथा च संस्कृतनाट्यपरम्परा–नाट्यशास्त्रयोः अन्तःसम्बन्धमधिकृत्य कोशकारेण श्रीराधावल्लभेन गम्भीरं विश्लेषणं प्रस्तुतम्। रङ्गमञ्चविषयकचिन्तनस्य पाश्चात्यपरम्पराणां चात्र तुलनात्मकं विवेचनं कृतं विद्यते कोशकारेण।

द्वितीये तृतीये चतुर्थे च भागत्रये अकारादिवर्णक्रमेण नाट्यशास्त्रीय–पारिभाषिकशब्दानाम् अवधारणानां वा सर्वाङ्गीणं विवेचनं कृतम्। तत्र च भरतकृतनाट्यशास्त्रात्, तस्य परम्परायाः पञ्चाशताधिकग्रन्थेभ्यः प्रामाणिकम् उद्धरणं समुपस्थापितम्। किञ्च, वेद–वेदाङ्ग–उपनिषद्–इतिहास–पुराण–संगीत– नृत्य– वास्तु–चित्र–साहित्य–शास्त्रेभ्यः प्राचीनेभ्यो ग्रन्थेभ्यः सामग्री संकलिता वर्तते। तथा चात्र वर्णक्रमः शब्दसंख्या –

अ–267आ–70	
इ–06ई–01	ठ–02त–91
उ–71ऊ–10	द–60ध–30
ऋ–03ए–03	न–177प–415
ओ– 04औ– 03	फ–08ब–55
क–113ख–32	भ–99म–203
ग–71घ–12	य–31र–73
च–96छ–15	ल–58व–256
ज–22झ–03	श–64ष–05
ट–02ड–12	स–198ह–28

विमर्शः1

नाट्यशास्त्रविश्वकोशस्य चतुर्षु भागेषु नाट्यस्य भारतीय–परम्परायाः सर्वाङ्गीणं विवेचनं प्रस्तुतम्। एवञ्च, नाट्यशास्त्रविषयकं पारिभाषिकं पदजातं विवेचितम्। यद्यपि विवेचनस्य मूलं भरतमुनि.तं नाट्यशास्त्रं तथापि प्रत्येकं

पारिभाषिकस्य पदस्य विवेचने यथासम्भवं यथोचितं इमे प्रमाणभूता ग्रन्था वर्तन्ते –

उपलब्ध–नाट्यशास्त्रगन्थात् प्राक् तत्तत्पदानां प्रयोगो यत्र समुपलभ्यते। यथा– वैदिकसंहितासु, ब्राह्मणग्रन्थेषु, उपनिषत्सु, स्मृतिषु, अर्थशास्त्रेषु इत्यादिषु। तत्र च तत्पारिभाषिकपदानाम् अवधारणापि वर्णिता चेत्, सापि अत्र कोशे विचारिता।

नाट्यशास्त्रातिरिक्तेषु ग्रन्थेषु यथा कामसूत्रम्, षड्दर्शनम्, सङ्गीतम्, नृत्यम्, चित्रम्, वास्तुशास्त्रम् आदिषु तत्तत्पारिभाषिकपदानाम् अवधाराणा विद्यते चेत् सापीह कोशे चर्चिता।

नाट्यशास्त्रस्य परम्परायां रचितेषु परवर्तिग्रन्थेषु तत्तत्पारिभाषिकपदानां विकासस्तु विवेचितः।

पाश्चात्यनाट्यचिन्तनेन सह तस्या अवधारणायाः साम्यं वैषम्यमपि प्रस्तुतम्।

किञ्चात्र नाट्यशास्त्रे अप्रयुक्तानां परन्तु सङ्गीत–नृत्य–चित्र–वास्तु–काव्येषु सुप्रयुक्तानाम् पारिभाषिकशब्दानाम् अपि विमर्शः अत्रकोशे कृतो विद्यते। यतः भारतीयनाट्यपरम्परायां तेषामुपयोगाय विचारो समुचित इति।

कोशे प्राप्तविचाराः पारिभाषिका शब्दास्त्रिधा विभक्तुं शक्यते –

1. **बीजशब्दाः**– नाट्यशास्त्रे तत्तपरम्परायां च मौलिकसिद्धान्तान् सूचयन्ति। एतेषां शब्दानां विवेचनं विस्तारेण कृतम्।

2. **आनुषङ्गिक–शब्दाः** – बीजशब्देभ्यो विनिर्गताः बीजशब्देन सह सम्बद्धाः शब्दाः समासेन प्रतिपादिताः उतवा बीजशब्दे द्रष्टव्या इति निर्देशिताः।

3. **सम्बद्धशब्दाः** – प्राधान्यतः शास्त्रान्तरेषु प्रस्थानान्तरेषु वा प्रचलिताः शब्दाः प्रसङ्गवशान् नाट्यशास्त्रे समागतास्तेषामपि विमर्शः कृतः।

क्वचिच्च करण–अङ्गहार–नाट्यगृहादीनां शब्दानां विमर्शे विश्वकोशेऽस्मिन् चित्रम् पाठकानां सुबोधाय प्रस्तुतम्। किं बहुना, सत्यमेव प्रत्येकं शब्दः आमूलचूडं चर्चितः, येन नाट्यशास्त्रीयो विचारः स्वतः स्पष्टीभवति। नाट्यशास्त्रविश्वकोशस्य रचना नैकस्य जनस्य सामर्थ्यम् इति कोशकारो भूमिकायां सदयं सूचयति। तथापि अपूर्वोऽयं विश्वकोशो नाट्यशास्त्रस्य जयति।

सहायकाचार्यः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,
भोपालपरिसरः, बागसेवनिया, भोपालम्. 462 043, मध्यप्रदेशः

आचार्यराधावल्लभकृतलहरीदशके राष्ट्रचिन्तनम्

डॉ. किरण आर्या

'स्वाराज्यं च जनेषु दत्तविभवं तद् भारते भ्राजताम्'

सुकविः स्यात् कस्याश्चिदपि भाषायाः, कस्यचिच्च देशकालवर्षस्य किन्तु अभिष्ठानन्तु तस्य समाजे एव भवति। निजजीवनस्य किञ्चिदमूल्यं पलं प्रदाय सः तत्कालस्य परिष्ठितिं यदा समाजहिताय लोकहिताय च लेखनततौ निबद्धयति तदा असौ ऐतिहासिककाव्यसर्जनायाः अंगविशेषीभूतः वरीवर्ति।

तत्तावदत्र प्रो0 त्रिपाठीवर्येणापि लहरीदशकाभिधेये स्वीये ग्रन्थे जनमानसस्य हृदयवेदनां मन्ये निजहृदि निधाय लेखनीमाध्यमेन प्रजातन्त्रे व्याप्तं दुराचरणं, भ्रष्टताम्, क्रूरताम्, अधर्मस्य वृद्धिङ्गतां परच्छायां निदर्शनस्य प्रयासः विहितः। समकालिके राजनैतिक–परिप्रेक्ष्ये नेतृत्वम्भजमानाः जनाः राष्ट्रहितमनपेक्षीकृत्य केवलं स्वहिताय राराजन्ते ते विसरीस्मरन्ति यत् ध र्मग्रन्थेषु प्रजानेतृत्वकारकाः प्रजाभ्यः सर्वसमर्पणाय सद्यः, सर्वदा च सज्जीभूताः अभूवन्। साम्प्रतम् दिशाहीनं नेतृत्वं वर्धापयन्ति नेतारः। पुरा प्रजाभ्यः नेतारः भवन्ति स्म इदानीञ्च नेतृभ्यः प्रजा भवति, सा च कलुषितविचारधाराभिरोतप्रोता, पाश्चात्यप्रभावुका, संस्कृतसंस्कृतिविरहिता च कथं न स्यात्। कविमतेन विवेकशीलसमाजस्य सामूहिकचेतना एव ईश्वरः विद्यते। लेखकस्य हृदयवेदनायाः कानिचित् पृषन्ति निपत्य अक्षरीभूय च समाजं यथार्थावलोकनाय दर्पण इव भवन्ति सन्ति। पश्यन्तु लेखनी आचार्यस्य –

आत्मानं तु निषेवते स जनता सेवाव्रतं धारयन्–
नुच्चैः प्राप्य पदं च पश्यति जनं न्यक्कारगर्भं भृशम्।
शुभ्रः खद्दरवस्त्रमण्डिततनुस्तृष्णां तु नो मुञ्चति,
काषायं न जहाति चेतसि धृतं काषायकन्थो यथा।।'[1]
संस्कारै रहिता प्रशासनरता मत्तास्तु ये पूरुषाः,
आनर्थक्यमिमे सदा विदधते शब्दा यथाऽसंस्कृताः।

आशेव प्रहताऽपवादकलुषा कीर्तिः कृशा श्रीर्यथा,
राष्ट्रे स्वे जनताऽवमानविधृताऽधीतिर्यथा सीदति।।'[2]

इत्थम्भूताः नेतृत्वम्भजमानाः जनतासेवाव्रतमाध्रियमाणाः स्वसेवामेव कुर्वाणाः अद्यतनीनाः नेतारः ये च उच्चपदमवाप्य जनसामान्यं हेयदृष्टियोग्यं मन्यन्ते केवलं धवलवस्त्रादिपरिवेषेण आत्मानं पवित्रीमन्यन्ते, संस्काररहिताः असंस्कृतशब्दमिव देशस्य अहितकारिणः प्रशासनरताः प्रशासकाः न जिहासन्ति पदतृष्णाम्, तथाभूताः पदलोलुपाः नेतारः केन प्रकारेण रक्षिष्यन्ति राष्ट्रमिति चिन्तयति कविः।

अपि चाग्रे वैदुष्यपूर्णशैल्यां कविः वास्तविकतायाः दिग्दर्शनं कारयति यत् पदलब्धैः नेतृभिः जनता शोषिता भवति। भारतीयजनतायाः गोः तुलनां विध ााय तस्याः विविध–आयामानां मार्मिकवर्णनं करोति कविः –

वत्सत्वमेति बुभुक्षितां स्वजननीं दूरस्थितामीक्षते,
याऽपीनं विनिपीड्य दोहनपरैर्दोदुह्यते यौवने।
वार्धक्ये बहु खेदिता स वधिकैः सूनागृहं नीयते,
सैषा गौरिव भारतीय–जनता व्याहन्यते निर्दयम्।।'[3]

अर्थात् यदा सा गौः वत्सा भवति तदा बुभुक्षिता सती मातरं प्रति पश्यति। युवती सती सा दोहकैः आपीनं विनिपीड्य दोदुह्यते, वृद्धा सती सा पीडिता वधिकैः वधगृहं निर्दयपूर्वकम् हठान्नेनीयते, एषैव गौरिव स्थितिं लभते सा भारतीया जनता या नित्यं हालाहलं निपीय नीलकण्ठायते, सततं निहन्यते विदल्यते, कष्टां दशां प्राप्यते, आमूलं छल्यते, अशुभैर्नृपशुभिः, तथाकथितैः विनयाच्च्युतैः नेतृभिः। कवेः एते कारुणिकाः भावाः भारतीयजनमानसं प्रति भारतीयचेतनां जागरयति यत् – उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य वरान्निबोधत, आगता वेला, भवन्तः स्वतन्त्राः नागरिकाः, स्वेनैव सत्त्वेन एतं देशं समुद्धरन्तु। दारुणाननुशासन्तीमतिमहतीदानीं शक्तिम् आविर्भावयन्तु। भवन्त एव देशस्य राष्ट्रस्य दशां दिशां च परिवर्तने सक्षमाः। यावद्भवन्तः गर्वोन्नतशिराः, सुविचारकाः, प्रयत्नशीलाः न भविष्यन्ति, तावत् गौरिव सततं दुह्यमानाः भवन्तः तथाकथितैः भ्रष्टनेतृभिः निपीड्यमानाः भविष्यन्ति। अतस्तावत् अन्याय्यं प्रतिकुरुत। एकनीडं सम्भूय 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं' इति ऋचामवलम्ब्य संगठनीभूय एतान् विरोध ायत, ये मानवरूपं सन्धृत्य दानव इव भवभारतं पतनगर्ते पतनातुराः दरीदृश्यन्ते – कविरत्र दक्षमुदाहरति, तत्तथा –

दग्धासीत् खलु दक्षयज्ञदहनज्वालासु पूर्वं सती,
दाहं नैव समर्थयन् ज्वलितदृक् क्रुद्धो यथा धूर्जटिः।

अन्यायं प्रतिकर्तुमेव भगवान् दक्षक्रतुं नाशय,
न्नुग्रं ताण्डवमाचरन्न जनयच्छ्रीवीरभद्रं गणम्।।[4]

अर्थात् दक्षस्य यज्ञज्वालायां सती दग्धा। तद्दाहं न समर्थयन् धूर्जटः शिवः यथा क्रुद्धो भूत्वा नारीं प्रति विहितमन्यायं प्रतिकुर्वन् दक्षयज्ञं च विध्वंसन् उग्रताण्डवं अरचत् वीरभद्रं च अजनयत्द्ध लेखकमतेन अन्यायसहनस्यैका सीमा भवति परन्तु यदात्मसम्माने, अस्मितायां राष्ट्रे च कुठाराघातः स्यात् तदास्माभिः एकत्रीभूय शिवशक्ति इव रौद्ररूपं धारणीयम्, तदैव दक्षप्रजापतिसदृशः अनाचारी बलवान् कथं न स्यात् सः नंस्यत्येव।

साम्प्रतमपि अस्माकं देशे शकुनितुल्यजनानां संख्या विवर्धते ये निरर्थकं निजस्वार्थसिद्धये धर्मावरणे अनर्गलं कुकृत्यं कुर्वाणाः सन्ति वयं च तान् सहावहे धर्मध्वजायाः शीतलच्छाये यदि असामाजिककृत्यं भवति तर्हि तत् अध र्मातिशयं वर्तते। अतः एते अधर्मावलम्बिनः समाजात् बहिष्करणीयाः। लेखकेन जनतायाः उपमा शिवेन कृता –पश्यन्तु तावत् –

ये किंचित् खलु धारयन्ति विततां धर्मस्य कन्थां वृथा,
मिथ्याचारपरायणाश्च बहुधा प्राहुर्वचःपुष्पितम्,
सर्वांस्तान् कुपथाश्रितान् हतधियो दुर्दाम्भिकाञ्शासितुम्,
दुर्वृत्तस्य विनाशनाय जनता कुर्यात् तथा ताण्डवम्।।[5]

ये केचन वृथैव धर्मवसनं धारयन्तः मिथ्याचरणे रताः पुष्पितानि वचांसि ब्रुवाणाः सन्ति तेषां कुपथगामिनां बुद्धिहीनानां दुंदाम्भिकानामनुशासनाय जनता एव ताण्डवं कुर्यात् उक्तपद्ये कविः उपमालंकारस्य पूर्णतया उपयोगं करोति। वैदुष्यपूर्णे लेखने कविः मर्यादामाचरति

तथा च लेखकः मानवातिरिक्तं सर्वं कर्तव्यं निरर्थकमिति मन्यते नैतावदेव शास्त्राध्ययनं, धर्मचर्चा , शाश्वतपौराणिकचर्चा इत्यादेः सर्वस्य वैयर्थ्यम् यदि जनता न ध्याता। एकत्र निगदितं तेन– अस्माकं तु निसर्गतः स्थितिलयाविर्भावहेतुः परं, योगक्षेमविधायिनीह जनता राष्ट्रस्य सा स्तूयते। अपि च–

शास्त्रस्याध्ययनं वृथाऽधिकतरं धर्मस्य चर्चा वृथा,
वैफल्यं तु गता कथापि सकला पौराणिकी शाश्वती।
नो ध्याता जनता जनस्य हृदये नारायणः संस्थितः,
नो ज्ञातो यदि नो कृतोऽस्तिजनतोद्बोधनाय यत्नोऽथवा।।[6]

अर्थात् यदि जनतायै उद्बोधनं न कृतम् उद्बोधनाय न प्रयतितम् तर्हि सर्वाणि कार्याणि व्यर्थान्येव।

किन्तु राष्ट्रवादिनः करुणहृदयवतः लेखकस्य निशिता दृष्टिः, यस्याः न ते निलीनाः ये श्रीकामनया किमपि कर्तुं प्रयत्नशीलाः सन्ति, लक्ष्मी तु चंचला,

एकत्रानिवासस्तस्याः, पुनरपि तत्कृते पक्षिणः विपक्षिणः जनाश्च परस्परं कलहायन्ते। अत्र लेखकेन पौराणिकं कथानकमुदाहरन् नेतृणां तुलना असुरेभ्यः कृता। तच्च नितरां समीचीनम्–

अन्योऽन्यं क्षपयन्ति दुष्टमतयो निघ्नन्ति राष्ट्रं जनं
नेतारश्च परस्परं प्रतिगता पक्षं विक्षं श्रिताः।
व्यूहं वा पचयन्ति द्वन्द्वनिरता राज्यश्रियः काम्यया,
ते स्वं घ्नन्ति परं नयन्ति निधनं सुन्दोपसुन्दौ यथा।।[7]

अर्थात् लक्ष्मीं स्पृहणाय नेतृभिः अन्योऽन्यं निहन्यते राष्ट्रजनान् निघ्नन्ति द्वन्द्वे रताः व्यूहं रचयन्ति आत्मजनानपि न परित्यजन्ति सुन्दोपसुन्दन्यायेन परस्परं व्यतिघ्नन्ति, तर्हि का गतिर्भविता मम राष्ट्रस्य, क्वास्ताः क्व निपतिताः? गच्छति पुरतो देशः पुनरिह पश्चात् प्रधृष्यते जनता। कोऽयं समाजवादः प्रगतिर्वा कीदृशी सेयम्,'[8] अतिनिष्करुणेन केन नीता जनतैषा कठिनां दशां विषण्णा,[9] इति सामाजिकस्थितिं दुरवस्थां च चिन्तयन् लेखकः स्वग्रन्थे प्रतिजनं राष्ट्रदशामवगमनाय प्रयतते भूयश्च प्रयतते। अपि च आत्मभावानुसारं मत्यनुसारं च भाविजनं निर्देशयति तं च सुरक्षित–सुसज्जितराष्ट्रनिर्माणाय प्रेरयति।

आदरणीयत्रिपाठिमहोदयस्य लहरीदशकं राष्ट्रचिन्तनेन ओतःप्रोतश्च विद्यते। जनतायाः करुणविरवणं अरण्यरोदनं च राष्ट्रचिन्तकः कविः दत्तकर्णं श्रृणोति अपि च हृदयविदारकसाभाजिकदृश्यानवलोक्य कवेः लेखनी सहजैव तत्समयस्य घटनामुल्लेखनाय चलितुमारभते, शुभं कामये।

सन्दर्भः

1. लहरीदशकम्, 5/35
2. लहरीदशकम्, 5/37
3. लहरीदशकम्, 5/27
4. लहरीदशकम्, 5/30
5. लहरीदशकम्, 5/31
6. लहरीदशकम्, 5/4
7. लहरीदशकम्, 5/34
8. लहरीदशकम्, 5/25
9. लहरीदशकम्, 5/22

सहायक–प्राध्यापिका
डॉ हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

संस्कृतस्याभिनवरचनधर्मिता आचार्यराधावल्लभत्रिपाठी च

डॉ. प्रियव्रतमिश्रः

वाङ्मुखम्–

स्वप्रज्ञया कुञ्चिकयैव कंचित्सारस्वतं वक्त्रिमभङ्गिभाजम्।
कवीश्वरः कोऽपि पदार्थकोशमुद्घट्य विश्वाभरणं करोति।।

इति खलु सारस्वतवचनं व्यनक्ति कवित्वस्य महत्त्वं माहात्म्यं श्रेष्ठत्वञ्च। कवेः लेखनीधारा अव्याहततया स्यन्दमाना प्रापयति गभीरस्थलम्। यत्र खलु इतरेषां चिन्तनं विरमति ततः आरभते कवेः चिन्तनस्त्रोतः। कविः क्रान्तदर्शी। ब्रह्मा यथा भौतिकसृष्टेः निर्माता तथा कविः सारस्वतसृष्टेः जनकः। आवैदिककालादारभ्य परम्परेयमविच्छिन्नरूपेण प्रवाहमाना अधुना यावत् स्वाम्लानधारया पुनाति लोकम्। मध्येयुगं तत्र कालिदासबाणभट्टादयः स्वामृतप्रवाहे इतोऽपि माधुर्यं चिरञ्जीवित्वञ्चाकार्षुः। परम्परायां तस्याममीषामाचार्याणां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिवर्य्याणां नामधेयं कस्य वा सारस्वतसमाराधकस्य तिरोहितं भवति। संस्कृतजगति गद्यपद्यचम्पूकाव्यप्रणयने अर्वाचीनेषु कविषु आचार्याणामभिधेयं शिखरे राराजीतीत्यत्र नासत्यवादविभीषिका। कश्चित् पद्यकाव्ये प्रवीणः स्यात्, अपरो गद्यकाव्यप्रणयने, केचिच्च स्युः चम्पूकाव्यरचनायाम्। परमाचार्येषु त्रयाणामपि स्रोतसां सङ्गमो दृश्यते इति नूनं काव्यसरिति अयं त्रिवेणीसङ्गमः। अभिनवरचनकौशले अमी आचार्याः शिखरायन्ते इत्यत्र तेषां षष्ट्युत्तरमेकशतं (160) पुस्तकान्येव प्रमाणीभूतानि।

पञ्चदशोत्तरं द्विशतं (215) शोधलेखाः एव साक्षीभूताः। त्रिंशदधिकानि (aabove 30) नाटकान्येव प्रकाशयन्ति तेषां प्रणयनकौशलम्। न केवलमस्यां दिशि त्रिवेणीसङ्गमः अपितु संस्कृतं, हिन्दी, आङ्ग्लमिति भाषात्रयेऽपि ग्रन्थाः प्रणीताः आचार्यैरिति तत्र भाषाप्रवाहेऽपि त्रिवेणीसङ्गमः।

चिरकालात् यान्यपि काव्यानि विरचितानि मनीषिभिः क्रान्तदर्शिभिः रसास्वादकैः कविभिः तत्तत्समयानुगुणं बभूवुः तानि काव्यानि। अथवैतिहासिकानि वा आसन्। परमाचार्याणां कृतीः प्रेक्षामहे चेत् ऐतिहासिकं, तात्कालिकं, सामयिकं काल्पनिककथापरकमिति सकलमपि तत्त्वं वरीवर्त्ति। किम्बहुना कृतिषु तासु अनुसन्धानपरकम्, अनुसन्धेयपरकम्, दृष्टान्तपरकं (Reference) अभिज्ञानपरकं वरीवृत्यते इत्यस्ति वैशिष्ट्यातिशयम् तत्र। धरित्रीदर्शनलहरी, निदाघलहरी, वसन्तलहरी, जनतालहरी इत्येतानि निदर्शयन्ति आचार्याणां सामयिकचिन्तनशैलीम्। वसन्तलहर्याः प्रारम्भे कविः स्वमनः स्थितिंवर्णयति–

शब्दं यथा स्मृतिमुपेत्य पुनर्विलीनाः
सीदन्ति चित्तजगति क्वचिदेककोणे।
उद्भिद्यतेऽथ च विनाशमुपैति सद्यः
काव्याङ्कुरः कविमनःसु तथा वसन्तः।।

तथैव प्रावृड्लहरीकाव्ये सर्वाण्यपि पद्यानि हृदयहारीणि प्रसादगुणयुतानि अलङ्कारैरलङ्कृतानि कौतुकजनकानि रसभावविभावितानि च। तत्रैव दृश्यकाव्यमिव वर्षादृश्यमुपस्थापयत्याचार्यः–

कूजद्भिश्चातकैर्नित्यं मयूरैश्च कुशीलवैः
प्रावृट्प्रवेशमालक्ष्य ध्रुवा प्रावेशिकी कृता।
आकाशरङ्गपीठस्थैः समागत्य बलाहकैः
पूर्वरङ्गप्रसङ्गेऽस्मिन् विहिता परिघट्टना।।
सृष्टेरस्मिन् महानाट्ये पर्जन्यस्तु बलाहकम्।
मृदङ्गमिव सन्ताड्य गम्भीर गुञ्जयन् स्थितः।।
पणवस्य च शङ्खस्य घोषा आनकदुन्दुभेः।
कोणाघातेन गर्जद्भिः क्रियन्तेऽद्य बलाहकैः।।

जनतां प्रति स्वपवित्रान् भावान् कविः प्रकटयति जनतालहर्याम् –

यत्काव्यं कवयामि भावितरसं शब्दार्थविच्छित्तिजम्
यद्गीतं स्फुटमांसलं लययुतं गायामि लीलान्वितम्।
यत्स्फूर्तं विदुषां समासु विपुलं व्याख्यानसम्भाषणे
तत्सर्वं जनताजनार्दनमहादेवस्य सङ्कल्पजम्।।

नाट्यशास्त्रस्य या परम्परा आचार्यैः समुद्धृता निखिलेऽपि विश्वे सर्वोच्चस्थानं प्रापयति सः प्रसङ्गः। यतो हि विशालस्य नाट्यशास्त्रस्य पठनपाठनसम्प्रदायः मध्येकालं लुप्तप्राय एवासीत्। भगीरथ इव आचार्यः समागत्य पुनः तां भागीरथीं समानैषुः। पुनः प्राचारयन् नाट्यशास्त्रमखिलेऽपि जगति। तस्यैव खलु परिणामः नाट्यशास्त्रविश्वकोशः आचार्यप्रणीतः। तत्र नाट्यशास्त्रस्य परिचयः, नाट्यशास्त्रस्य अन्यैः शास्त्रैः सह सम्बन्धः, नाट्यशास्त्रं संस्कृतसाहित्यञ्च, संस्कृतनाटकस्य प्रयोगपरम्परा, नाट्यशास्त्रस्याचार्यपरम्परा, नाट्यशास्त्रपरम्परायाः परवर्तिनः ग्रन्थाः, पाश्चात्त्यनाट्यचिन्तनं नाट्यपरम्परा च, नाट्यशास्त्रमाधुनिकं रङ्गकर्म, संस्कृतनाटकं लोकनाट्यञ्च, संस्कृतनाटकं विश्वनाट्यञ्च, संस्कृतनाटके उपकरणानि इति विश्वरूपं खलु प्रादर्शि आचार्यैः। सौकर्यातिशयं ननु अनुभवति अर्वाचीनवर्गः, यतो हि कोशोऽयमाचरति आचरिष्यति च साहाय्यं तेषामनुसन्धाने।

ततः अलङ्कारशास्त्रविषये आत्मानं व्यापारयामश्चेदनुभूयते आचार्याणां सूक्ष्मेक्षिका। पूर्वं वामनेन "काव्यालङ्कारसूत्रम्" इत्याख्यं स्वोपज्ञं काव्यशास्त्रं प्रणिनाय। यत्र पञ्चाधिकरणानि 319 मितानि सूत्राणि च वर्त्तन्ते। रीतेः काव्यात्मत्वसाधके अस्मिन् ग्रन्थे काव्यलक्षण–प्रयोजन–रीति–गुण–दोषालङ्कारप्रभृतिविवेचनं विहितं परिलक्ष्यते। तत्र राधावल्लभत्रिपाठिमहोदयेन "अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्" प्राणायि। अभिनवेऽस्मिन् काव्यालङ्कारसूत्रे अधिकरणत्रयं विद्यते । तत्र काव्यस्वरूपं नाम प्रथमाधिकरणं यस्मिन् षडध्यायाः 35 सूत्राणि च सन्ति। अलङ्कारविमर्शाख्ये द्वितीयेऽधिकरणे षडेवाध्यायाः 45 सूत्राणि च वर्तन्ते। अन्तिमे काव्यविशेषविमर्शाख्येऽधिकरणे विंशतिः सूत्राणि सन्ति। एवं हि ग्रन्थेऽस्मिन् सम्भूय त्रीण्यधिकरणानि, त्रयोदशः अध्यायाः शतं सूत्राणि च सन्ति। न रीतिः काव्यात्मा अपि तु अलङ्कारमेव काव्यात्मा इत्याचार्याणामाशयः। विषयविवेचनपद्धतिदृष्ट्या वामनानुगतत्वेनैव स्वोपज्ञं काव्यशास्त्रम् अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रमित्यभिधत्ते । एवमेव संक्षिप्तनाट्यशास्त्रं, लहरीदशकमिति नैके अभिनवसंस्कृतग्रन्थाः आचार्याणां लेखनीतः निस्सृताः इति न तिरोहितं भवति विदुषाम्। यथा अस्माभिः पूर्वमेव प्रतिज्ञातं यत् न केवलं सुरगिरा अपि तु राष्ट्रभाषया आङ्ग्लभाषया च महीयसामाचार्याणां लेखनप्रवृत्तिः प्रावर्त्तत। अथर्व वेद का काव्य, भारतीय काव्य शास्त्र की आचार्य परम्परा, संस्कृत काव्य शास्त्र और काव्य परम्परा, संस्कृत साहित्य सौरभ, विक्रमादित्य कथा इत्याद्याः अनेकाः रचनाः साहित्यपरम्परायां नूनमभिनवत्त्वं व्यञ्जयन्ति। आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये मानवाधि

ाकारचेतना इति शोधलेखं वीक्षामहे चेत् अनुभूयते तस्मिन् काले के खलु अधि ाकाराः आसन् मानवस्य, कथं ते संस्कृतसाहित्ये यथावत् चित्रितास्सन्ति। आध ुनिकसाहित्यस्य यदि नवीनां रीतिं जिज्ञासन्ते चेत् मनाक् अवलोकयन्तु आध ुनिकसंस्कृतसाहित्ये नवीनाः रीतयः इति शोधलेखम्। विंशयां शताब्द्यां यदि संस्कृतसाहित्यस्य प्रगतिं द्रष्टुकामाः तर्हि व्यापारयन्तु मतिमाचार्याणां संस्कृत साहित्य – बीसवीं शताब्दी इति ग्रन्थे। संस्कृतसाहित्यस्य स्वर्ण युगं मन्वानाः अमी आचार्यः तत्र व्यचारयन् विस्तरेण संस्कृतसाहित्यस्या विभिन्नां कृतिम्। आधुनिक संस्कृत साहित्य की उपलब्धियां, समकालीन संस्कृत साहित्य–चुनौतियां समस्याएं और सम्भावनाएं, आधुनिक संस्कृत साहित्य–नये प्रतिमान इत्यनेके लेखाः प्रचोदयन्ति अस्मान् अभिनवसंस्कृतसाहित्यं विम्रष्टुम्। विश्ववारा, स्मितरेखा, पण्डितपरिषद्व्याख्यानमाला इत्यनेके ग्रन्थाः सम्पादनकौशलं बोधयन्ति।

लेखनीधारा तथैव प्रवहति आचार्याणामाङ्ग्लभाषायामपि–

1- Kam sutra of vatsyayana

2- Natya Shastra and the India Dramatic Tradition

3- A New bibliography of Sanskrit Drama

4- Vedic foundations of Indian Shastric Tradition

5- Vedic world view and modern science

6- Sixty years of Sanskrit studies

इत्येते लेखाः प्रकाशयन्ति आचार्याणां प्रावीण्यं नैकासु रीतिषु । एवं रूपेण किङ्करोऽहं किं वा वक्तुं पारयामि, परमेतत्तु निश्चप्रचं वच्मि यद् भारते यत्र क्वापि ग्रन्थालयेषु भ्रमन्तु भवन्तः सन्धिकायां प्रत्येकस्यामवश्यमेव ग्रन्थाः आचार्याणां दृग्गोचरीभूताः भवन्त्येव इत्यत्र नासत्यवादविभीषिका। तेनैवानुमातुं शक्यते आचार्याणां सारस्वतसेवापरायणत्वमित्यलं पल्लवितेन।

परामृष्टाः ग्रन्थाः–

1. संस्कृत साहित्य–बीसवीं शताब्दी

2. नाट्यशास्त्रविश्वकोशः

3. लहरीदशकम्

4. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्

5. Sixty Years of Sanskrit

अभिनवकाव्यालङ्.कारसूत्रसन्दर्भे रीतितत्त्वविवेचनम्

मनीषचन्द्रपाण्डेयः

अर्वाचीनकाव्यशास्त्रकारेषु प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिवर्यो विशिष्टं स्थानं लभते। अनेन महोदयेन विरचितम् अभिनवकाव्यालंकारसूत्रमिति काव्यशास्त्रं संस्कृत– साहित्यकाश अभिनवां विच्छित्तिभणितिं प्रकटयति। काव्यशास्त्रमिदं

पूर्वाचार्याणां भामहरूद्रटादीनां साहित्यशास्त्रसिद्धान्तैः सह प्राच्यपाश्चात्त्य–

काव्यगतपरिवर्तनमवलोक्य एकां नवीनां काव्यशास्त्रीयसरणिं प्रस्तौति।

इयं काव्यसरणिः काव्यग्रन्थस्य द्वितीयाधिकरणस्य काव्यव्यापार निरूपणनामकस्य द्वितीयेऽध्याये वृत्तिरीतिमार्गरसादीनां वर्णनेन समं द्रष्टुं शक्यते। अत्र आचार्यो रीतेर्लक्षणं प्रतिपादयन् वक्ति –

"पदविशेषगतो व्यापारो रीति।"[1]

अर्थात् पदानां विशिष्टो व्यापारो यत्र जायते तत्र रीतिर्ज्ञातव्या। आचार्य–

त्रिपाठीभिः रचितेयं रीतिपरिभाषा वामनकृतं 'विशिष्टापदरचनारीतिः'[2] इतिलक्षणमिव प्रतीयते। वामनेनात्र विशिष्टानाम् ओजप्रसादादिगुण–

स्वभावयुक्तानां पदानां रचना रीतिः स्वीक्रियते। तथा रचनायामियं विशिष्टता गुणानामवस्थित्या उत्पन्ना जायते। अत एव गुणोपरि अवलम्बितेयं रीतिः। ग्रन्थकारेणापि रीतिभेदेषु व्यासविडम्बनादिषु गुणाः स्थीयन्ते इति स्वीकरोति। तद्यथा निगदितम् –

"अत्र सर्वेगुणाः सर्वे रसाश्च पदं लब्धुं शक्नुवन्ति"[3]

पुनश्चाग्रे विडम्बनरीतिं वर्णयन्ता आचार्यत्रिपाठीनो वामनकृतरीतिलक्षणस्य परिष्कृतरूपं राघवन्महोदयस्य रचनां समीक्ष्य स्वीकुर्वन्ति। तद्यथाह –

'एतेन विशिष्टा पदरचना रीतिरिति लक्षणं चरितार्थतां तु यात्येव

परन्तु विशिष्टकथ्यविन्यासविचक्षणा विशिष्टा पदरचना रीतिरिति लक्षणपरिष्कारो राघवन्महोदयस्य कृतिं समीक्ष्य कर्तुं शक्यते।"[4]

प्राचिनाचार्यै रीतेः पर्यायभूताः शब्दाः मार्गसंघटनाषैलीवृत्त्यादयो वर्णिता। यथाह भोजराजः सरस्वतीकण्ठाभरणे–

वैदर्भादिकृतः पन्था काव्ये मार्ग इति स्मृतः।

रीङ्.गतावितिधातोः सा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते ।।

रीयन्ते परम्परया गच्छन्त्यनयेति करणसाधनोऽयं रीतिशब्दो मार्गपर्यायः।[5] परन्तु आचार्यत्रिपाठिवर्यैः स्वकीये ग्रन्थे रीतिलक्षणभिन्ना मार्गस्य परिभाषा प्रदत्ता। तथाहि –

अर्थविषयको व्यापारः मार्गः।[6]

अर्थात् शब्दस्य अर्थविषयवान् व्यापारो मार्गः। प्रतिपादितमिदं मार्गलक्षणंकुन्तककृत मार्गस्वरुपमिव परिलक्ष्यते। तत्राचार्यकुन्तकेन सुकुमारविचित्रमार्गलक्षणेभ्या नवषब्दार्थ रमणीयः, पदार्थानां स्वभावस्य प्राधान्यम्,अनिर्वचनीयवाक्यार्थस्य प्रतीयमानत्वम्, पदार्थानां सरसाभिप्राययुक्तस्वभावत्वञ्चेत्यादीनि विषेषणानि वाक्यानि प्रयुक्तानि। यानि विषेषण वाक्यानि अर्थविषयकव्यापारमेव प्राधान्येन प्रकटयन्ति। तद्यथाह वक्रोक्तिजीवितकाव्यग्रन्थे–

अम्लान प्रतिभोद्भिन्ननवशब्दार्थबन्धुरः।

भावस्वभाव प्राधान्यन्यक्कृताहार्य कौशलः।

प्रतीयमानता यत्र वाक्यार्थस्य निबध्यते ।

स्वभावःसरसाकूतो भावानां यत्र बध्यते।[7]

इत्थमवलोक्यते यत् प्राचीनाचार्याः कुत्रचिद्गुणस्वभावयुक्तां क्वचित्सामासिकपदगतां कुत्रचिच्च कविप्रस्थानहेतुभूतां रीतिं परिभाषयन्ति। परमत्र आचार्यराधावल्लभमहोदया उपर्युक्तवैषिष्ट्येन सह पदेभ्यो जायमानं कञ्चनविषिष्टं व्यापारमेव रीतेर्निकषं मन्यते। व्यापारोऽयं चतुर्विधरीतिभेदेषु व्यासविडम्बनचेतनाप्रवाहवार्तालापेषु द्रष्टुं शक्यते। तत्र प्रथमं तावद् व्यासरीतिविष्लिष्यकथनयुक्ता वर्तते। सामासाभावो विष्लिष्यकथनं चास्या रीतेर्लक्षणम्। तद्यथोक्तं –

"विश्लिष्यकथने व्यासरीतिः।"[8]

अस्यामेकवाक्येन प्रस्तुतं यद्वस्तु,तद्वस्तु अनेकैः वाक्यैः अवान्तरवाक्यैः वा प्रस्तूयते। एतस्याः प्रयोगो ललितनिबन्धयात्रावृत्तकथादिष्वाधुनिक संस्कृतसाहित्यविधासु

बहुषोऽवलोक्यते। हिन्द्यादिषु नूतनभारतीयभाषासु वाक्यरचनासु यद्विश्लेषणात्मकरुपं दृष्यते तदेवात्र ग्राह्यम्। एतास्यां यत्तदोर्यथातथयोर्वा प्रयोगो रचनाकर्तृभिः क्रियाणो दृष्यते तथा च भूयो–भूयो एतेषां विधीयमाणः प्रयोगः सामाजिकेषु कुत्रचित् अन्यमनस्कतामुत्पादयति। परञ्च रचनाकर्मकुषलानां कृतित्वे इदमेव वर्ण्यविषयस्य विचारस्य वा सुस्पष्टतां व्यनक्ति। तथाहि कलानाथषास्त्रिण आवाहनमितिकथायाम् –

'तदनु तेन तन्मन्दप्रकाषप्रसारको विद्युद्दीपो निर्वापितो यः प्रकोष्ठे प्रज्ज्वलति स्म। मध्यगायां त्रिपादिकायां परं पिषङ्गलोकावहः सुलघुः विद्युद्दीपः उद्भावितो यस्तस्मिन् कर्गदफलक एव प्रकाषं व्यतनोत्, तदुपरि सा विचित्रा लेखनी निहिताभूत् यामादाय स मृतानां जनानामात्मन आवाह्य तेषां सन्देषंमुट्टङ्कयति स्म।[9] अस्यां सर्वे विंषतिगुणाः सर्वे रसाष्चोपविषन्ति। विषेषतः समाधिः, प्रसादः, पदानांनृत्यत्–प्रायत्वरूपः श्लेषश्चात्र बहुषो दृष्यन्ते। एतां व्यासरीतिं वामनाचार्येण प्रतिपादितेषु अर्थ गुणविवेचनेषु अपि द्रष्टुं शक्नुमः। तत्र वामनः **"अर्थस्य प्रौढिरोजः"**[10] इति ओजलक्षणे प्राप्तां प्रौढि पञ्चधा वर्णयति–

'पदार्थे वाक्यवचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा।

प्रौढिर्व्याससमासौ वा साभिप्रायत्वमेव च।।'

अत्र प्रौढेः प्रथमे भेदे 'पदार्थे वाक्यवचनमित्यस्मिन् व्यासरीतेः सर्वप्रथमं स्वरूपं प्राप्यते। यतो यत्र पदवाच्येऽर्थे भवति सति वाक्यं प्रयुक्तं स्यात् तत्र व्यासरीतिः जायते, प्रौढौ चापि एतादृष्यैव स्थितिः भवति।पुनष्चाग्रे ग्रन्थकारो द्वितीयां विडम्बनरीतिं परिभाषयति। तद्यथा–

'अनुकृत्याभासेन विडम्बनरीतिः।'[11]

अस्य भावोऽयमस्ति–यत्र कविर्नटो वा जानन्नपि अनुकृतेराभासमुत्पादयति, न तु वस्तुतोऽनुकरोति तत्र विडम्बनरीतिर्जायते। आधुनिकसाहित्य इयं पैरोडीपदेन उच्चार्यते। सहृदयेषु कविषु चेयं वक्रोक्ति विषेषैरुत्प्रासेनोल्लुण्ठनेन कमप्यनिर्वचनीयकौतूहलं पुष्टयन् विराजते। माधुर्योदरत अर्थगुणौ परित्यज्य समेषां शब्दार्थगुणानां समावेषोऽत्र भवितुं षक्यते। प्राचीनसाहित्ये विद्यमानां भावुकतातिषयं कल्पनाप्रवणताञ्चोपहसति रीतिरियम्। अस्या उदाहरणेषु हरिभद्रसूरेः धूर्ताख्यानं समागच्छति। आधुनिकरचनासु च

महामहोपाध्यायरामावतारषर्मणो मुद्गरदूतमुत्तममुहादरणमस्ति।
तद्यथा –

तां जानीथाः प्रलपनपटुं मृत्युदेवीं द्वितीयां
दूरीभूते मयि सहचरे तत्र घुकीमिवैकाम् ।
गाढामोदां तनुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वृद्धां
जातां मन्ये विटपतियुतामश्वभर्यामिवान्याम् ।।[12]

अपि च वसन्तत्रयम्बकषेवडेकृतस्य गर्दभाख्यानाम, बच्चूलालावस्थिन उलूकलपितं, श्येन उवाच च, दीनानाथत्रिवेदिमधुपस्य गर्दभगर्वोक्तयष्चैवमद्यतनेषु रचनाकारेषुवीरभद्रमिश्रस्य लघुवंषः रहसविहारीद्विवेदिनः पदप्रज्ञोपनिषद्, अधि ाकारी चेत्यादिप्रभृतयो रचना विडम्बनरीतेः वासस्थानानि वर्तन्ते। अभिनवबोध ादृष्ट्या च रचितेषु काव्येष्वियं रीतिः विसंगतिं बोधयति। एषा विसंगतिः अभिराजराजेन्द्रमिश्रस्य चतुष्पथरूपकेषु तथा आचार्यत्रिपाठिमहोदयकृतस्य विक्रमचरिताख्याने द्रष्टुं शक्यते। समस्यापूर्तिकाव्येषु विडम्बनरीतिसमाश्रयेण अभिनव तत्थ्यानां समुन्मेषो लोकसामान्यप्रतिभाविषेषस्य चाभिव्यक्तिः भूयमानो दृष्यते। तद्यथा श्रद्धेयकमलेषदत्तत्रिपाठिनः काव्ये उत्प्रासमुपहासं च व्यक्तयन् विराजते रीतिरियम् –

"यत्र ध्वाङ्.क्षनिभा विरावपटवो नेतृत्वसंसाधका
उत्कोचैकपरा जनस्वहरणे पारङ्गताः साहिबा ।
'पूजी–स्वामिहितैकसाधनरताः कुम्भोदरा नायका
राजन्ते खलु राजनीतिभुजगा धन्याममेयं धराः ।।[13]

कुत्रचिच्च समस्यापूर्तिषु काव्येषु एनामाश्रित्य करूणरसोऽपि अङ्गत्वेन स्थीयते। यथा उमाषंकरषर्मात्रिपाठिनो चक्रिचुरामणिरितिकाव्ये हास्यं करूणया संवलितम्। अस्यां रीतौ छाया, असंगतिष्चेत्यादयोऽलङ.काराः प्राधान्येन दृष्यन्ते। अग्रे च ग्रन्थकारो

'मनोवृत्तिनिरूपणेन चेतनाप्रवाह रीतिरितितृतियां रीतिं लक्षयति।[14]

इयं strem of consiousness इतिनाम्ना पाष्चात्यसाहित्ये ज्ञायते। अस्यां पदानां नृत्यत्प्रायत्वेन जायमानः श्लेषः,पृथक्पदत्वरूपमाधुर्यः, आरोहावरोह क्रमरूपसमाधिः,

पदसौकुमार्यञ्चेत्यादयो गुणाः प्रामुख्येनावलोक्यन्ते। रसास्वादस्य पार्यान्तिकत्वाभावात्

भावसन्धिभावषबलतादयः प्राधान्येनात्रोपविषन्ति। आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये च

केषवचन्ददासोऽग्रणीभूत एतस्याः प्रयोगे। आङ्ग्लरचनाकारेषु जेम्सज्वाइस वर्जीनियावुल्फ चेत्यादिप्रभृतयो लेखका एतस्या रीतेः प्रयोगं कुर्वाणाः दृष्यन्ते। कनीयसीकथायाःकर्ता

हरि अरविन्दोऽपि यत्र–तत्र अस्याः प्रयोगं कुरुते।

वस्तुतोऽस्यां कथाकारः पात्राणां चिन्तासन्ततितन्तुजाले स्वीयां चेतनां वयमानो दृष्यते। कवेष्च मनःस्थितय एव कथावस्तु निर्मान्ति तथा ता एव घटनाप्रसङ्गमाध्यमेन वः पुरतः समागच्छन्ति। यथा पात्रस्य चिन्तनधारया मनस्थितिभिष्च केषवचन्द्रः कथां प्रणयति–

"दहनं साधारणीकृत्य रात्रिर्व्यतीता। विषयो विमृष्टः। विवादो विचारितः। समाधानम् अन्विष्टम्। आत्मा अवबुद्धः। उपायाश्चिन्तितः। परं कालाधारे सर्वमद्य शिथिलम्। सर्वं च विफलम्। बहु अवसानम् ।अनेकं च अवसन्नम्।[15]

इत्थं तृतीयारीतिवर्णनपष्चात् प्रो0 आचार्यवर्याःतुरीयां वार्तालापरीतिं परिभाषयन्ति। तद्यथा–

"पाठं प्रति सम्बोधनेन वार्तालापरीतिः।"[16]

अर्थात् यत्र रचनाकारः पाठकं सम्बोधयन् काञ्चित् रचनां कुरुते, तत्र वार्तालापरीतिर्जायते। प्राचीनसाहित्ये कवयः कथाकाराष्च पाठकं प्रत्यक्षं न सम्बोधयन्तिस्म। परन्तु आधुनिकासु कुतिषु प्रियपाठक! इत्यनेन सम्बोधयन्ति। सम्बोधनमिदं कविभिः परोक्षं भवत्यपि पाठकं प्रत्यक्षमिव परिकल्प्य सम्बोधयते। यस्मात् कष्चनविषिष्टो गुणः रचनायामुत्पद्यते। सम्प्रति ललित–

निबन्धोस्या मूलवासस्थानम्। अद्यतनेष्वाचार्येषु अभिराजराजेन्द्रमिश्रोऽस्याः प्रयोगे सिद्धहस्तोऽस्ति।

इत्थं इमा रीतयः परम्परागतकाव्यषास्त्रस्थरीतेभ्यः केचिद् विषेषाः सहैव अद्यतनरचनाभ्यो निकषसूत्रमिव वर्तन्ते।

संदर्भ

(1). अभिनवकाव्यालङ्.कारसूत्रम्, 2/2/4
(2). काव्यलङ्.कारसूत्रवृत्तिः, 1/2/7
(3). अभिनवकाव्यालङ्.कारसूत्रम्, 2/2/पृ/23
(4). अभिनवकाव्यालङ्ंकारसूत्रम्, 2/2/पृ. 125
(5). सरस्वतीकण्ठाभरणम्, 2/27
(6). अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 2/2/5
(7). वक्रोक्तिजीवितम्, 1/25, 26, 40, 41
(8). अभिनवकाव्यालङ्.कारसूत्रम्, 2/2/7
(9). दूर्वा, 39 पृ. 85
(10). कॉव्यालङ्कारसूत्राणि, 2/1/108
(11). अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 2/2/8
(12). मुद्गरदूतम् , पृ. 113
(13). कविभारतीकुसुमा०जलिः, 6, 1973, पृ. – 75
(14). अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् , 2/2/9
(15). अन्जलिः, पृ0 38
(16). अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 2/2/10

शोधच्छात्र (S.V.D.V)
बी.एच.यू., वाराणसी

Gentleman Authority, Great scholar-cum-scientist i.e. Prof. Radha Vallabh (Sagar, M.P. India)

Prof. K.K. Misra

I do'nt know which place Sri Radha Vallabh Tripathi was born -- actually after being established as Sanskritist and Worldknown contemporary poet of Sanskritised displine of motherland Bharat i.e. Bharatvarshah Prof. Radha Vallah did not show any whimsical attitude in support of which he added his person as a world being, a polite Bharatiya and grownup world citizen.

For few one it is important to tell how many, and which type of, books are or were added in the field of learning in general or poetic products, also, of caliber. Prof. R.V. do not need such an account in support of his personality, because he has earned a typically great status as a scholar and similarly as a poet who is famous only being himself - a soft, polite and co-operative person. He is friend of all, though there are certainly few one who may be against his great stature and malicious too. In my view he is tallest in modern day scholars, intra-disciplinarily, in his tiny look by the physique.

I do not want to engage me in re-visiting to prof. R.B.'s all of academic and poetic contributions, but I think that his work on 'Sanskrit Kavita Ki Lokadharmi Parampara', is a milestone for modern Sanskrit Researchers. Similarly as an acharya of Poetics he created a manumental work in the name of 'Abhinavakavyalankarasutram'. It is an work which had been very impatiently awaited by the authors of modern poetry. It also penitrates into the minds of newest poets by sharpening their intelects. On the lines of Vedavyasa (Itihosottamadasmat...) after seeing this 'Kavyalanleursutra' we can easily conclude : "Shastrotamadarsmat jayante Kavibuddhayah".

The scholars on the date are supposed to honour our contemporary Giant face in academics and the beginners are doubly fortunate to move on the path of making 'Sanskritam Bharatam' with creativity and intellectually sound way of future making between the lines set by Prof. Radhavallabhaji.

May God give him 125 years o Sanskrit activities for good of world society.

Retd. Head Sanskrit

Ex-Director, Abhinavgupt Institute, Lucknow University, Lucknow

Environment thinking in Laharidashakam

Dr. Rekha Rai

In Vashant Lahari Poet described very ultimate description about vashant ritu. The most of description is present in traditional Sanskrit poem, but he described in different aspects like Environmental Pollution and its impact. How Autumn come and it create effect on environmental pollution. He was deeply thinking about environmental problem and he recides the poem on these problems. Poet said that environmental pollution degraded enjoyment of autumn.

शब्दा यथा स्मृतिमुपे त्य पुनर्विली ना
सीदन्ति चित्तजगति वास्वचिदेक कोणे
उद्भिद्यतेऽथ च विनाशमुपैति सद्यः
काव्याङ्कुरः कदिमनः सु तथा वसन्तः

(वसन्त लहरी – 1)

He described his experiences towards Environment. Poet also described Autumn, it is just like spider and that is agitated and summer is producing lot of heat on the earth so earth is burning and trees are falling down and also gases of vehicles are also create lot of pollution. Petrol ordure spread in all direction and gases are spread on people who are moving around it. Poet is tried to give a message to people to protect this autumn by environmental pollution.

धूमावृतानि वदनानि तथाध्वगानां,
वायुप्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूयः।
धूल्याकुलानि विविधानि च वाहनानि।
निष्ठिव्य गाढमिह यान्ति वसन्तशोभाम्।।

(वसन्त लहरी – 18)

Civilization has crushed autumn. The poet through the poem tries to make people aware to put in efforts and save the beauty of autumn.

The poet criticizes the western culture and talks about how it is damaging our culture and our young generation. He feels sad talking about terrorism which is one big problem of today's time; and about how the rich and powerful are misusing their resources and because of all such problems in today's time. He feels that the true feeling and beauty of autumn is lost.

Talking about the hot summers, the poet is highly upset and disturbed looking at the pitiful condition of animals, birds and certain humans. Also, he talks about all those lives lost due to high water scarcity in Rajasthan and the animals who died in Gujarat because of hunger. The poet has spent a major part of his life in the Sagar University and so he has known the place really well. He is upset seeing the pitiful condition of the lake, which at once used to be one of the main attractions of the city. But now it is highly polluted and buffaloes etc. pollute the water and he knows that all the promises made by the politicians are just baseless and they will do nothing to improve the condition of the lake.

The rain has to change the earth where the earth looking very beautiful and looks like different flowers. One shown and shine and look like blue star wearing like and look beautiful and there's the beauty ness.

In Chhattisgarh, where the women are fully enjoyed this moments and need the plants. In rainy season, the small plants are destroyed permanently because of increase in rainfall.

कालमानामिमा राज्य उत्खातप्रतिरोपिताः।
निवचिने जनैः सद्यः शासनेऽधिकृता मयथा।।

The poet Surprized looking the Airport of Delhi and its beauty and when the plane takes off that time the poet awesome because the plane where he is boarding is nice.

The poet travelled in plane and described to their place and all in fabulous and describe their beauty that's like to enjoy he feel that like the Aeroplane move slowly-slowly in land or landing like then flying in sky.

रिङ्गन रिङ्गन वलयपरिधौ भूमिभागे विभानः,
स्थानात् तस्मादुपरि सहसैवोत्थितपश्चान्तरिक्षे।
क्रान्त्वा भूमिं प्रगुणितरयो भूय एवोन्मुखः खे,
श्यामः पादौ वलिनियमनाश्मुघतस्येव विष्णोः।।

The poet said that there are many poor so poet said that there should be presentation on their poverty, but ministers do not do anything. They always enjoy themselves. The poet also described value of the chapati and their use but some persons known about this but other person do not they have to misuse.

आत्मानं तु निषेवते स जनता सेवा व्रतं धारम–

न्नुच्चैः प्राप्य पदं व पश्यति जनं न्यक्कासार्म भृशम्।

And he says that and his opinion attend on this like they had great but he says that he written on this topic where there no one write on this topic. The poet said that the chapati has very important in our life and related with everything. Where the great valuable of chapati and if there's no chapati in your food plate. So there all thing are no mean of food. Chapati is also important so there's the food look like complete. The poet written the topic on chapati it has a great thing in the world and every person know about mean of chapati and their use or misuse or value in his life etc.

किं न लालप्यते रोटिकायाः कृते,

किं न तातप्यते रोटिकायाः कृते।

किं न साहयते किं न मोनुहयते,

किं न शोश्रूयते किं न बोभूयते।। (वही – 29)

And in last the poet says that his depression like on the relationship of that related on ministers and there the deep study about his good opinion and their use and poet says that there's everyone have the authority.

Guest Lecturer PG Girls College Sagar M.P.

& Director The Sun Foundation

भूली बिसरी यादें

डॉ. श्रीमती सरला दीक्षित

इस बात को करीब 44 साल से ज्यादा हो गये होंगे, जब मैने श्री राध ावल्लभ त्रिपाठी जी को श्रीमती भवालकर की क्लास में पढ़ते हुए देखा था। वे एम. ए. फाइनल में थे और उसी साल मैंने एम. ए. प्रीवियस में एडमीशन लिया था। साधारण सी वेशभूषा थी बल्कि थोड़ी लापरवाही ही झलकती थी वेशभूषा के प्रति। डॉ. राम जी उपाध्याय जो कि उस समय विभागाध्यक्ष थे उनसे ही चर्चा के बीच में डॉ. राधावल्लभ जी के विषय में मालूम पड़ा कि काफी होशियार हैं, होस्टल में रहते हैं और होस्टल के खराब खाने को लेकर परेशान रहते हैं।

उनको अक्सर 8–10 किताबों को दोनों हाथों में लिये आते–जाते देखा करती थी। हम लोगों में 1 साल का अन्तर था पर वह अन्तर सदा 10 साल जैसा रहा। उनमें विद्वता तो थी ही गम्भीरता भी थी और हम लोगों ने उन्हें सदा सम्मान दिया। हम लोग उनके प्रथम विद्यार्थी थे। रिसर्च करते हुए वे हम लोगों को एम. ए.फाइनल में रस गङ्गधर पढ़ाया करते थे। उनकी पढ़ाने की शैली बहुत रोचक थी। वाक्य का अर्थ बताकर शब्दों की धातु आदि बताकर विश्लेषण करना। विषय पर उनका इतना अधिकार था कि वे प्रायः आँख बंद करके ही पढ़ाया करते थे।

एक घटना और याद आ रही है मुझे। एम.ए. फाइनल के एक पेपर में बहुत घबरा गई थी मैं। पेपर देते समय नोट्स पर ध्यान ही नहीं दिया और 10 में से 10 प्रश्न हल कर आई, बाहर आई। तो मुझे अपनी गलती मालूम पड़ी। मुझे बहुत रोना आया पर भूल तो हो चुकी थी। जब श्री त्रिपाठी जी को ज्ञात हुआ तो इस पर उन्होंने कहा कि कुछ लोग 10 में से 10 प्रश्न कर आते हैं और कुछ 5 प्रश्न में से भी छोड़ आते हैं ठीक से करना था पेपर। हमारी एक सहपाठी का वह पेपर बहुत बिगड़ गया था।

एम.ए के बाद मैंने पीएच.डी. के लिए कार्य शुरू किया। तब गुरूवार को होने वाली संगोष्ठी में उनका संस्कृत में भाषण जरूर सुनते थे हम लोग। पर स्वयं बोलने से सदा बचने की कोशिश करते थे।

उस समय यू.जी. सी. की फैलोशिप मिलने के बाबजूद मुझे अपना शोध–कार्य कुछ कारणों से छोड़ना पड़ा। जब सन् 82 में पुन शोध–कार्य शुरू किया तब उनसे पुनः मिलना हुआ। तब श्री राधावल्लभ त्रिपाठी विभागाध्यक्ष बन चुके थे। उनकी शादी हो चुकी थी। दो कन्या रत्नों के साथ में उनका खुशहाल परिवार था मिसेज त्रिपाठी सीधी सादी घरेलू मिलनसार महिला थी। जल्दी ही हम लोगों के घनिष्ठ संबंध बन गये। अक्सर डॉ. कुसुम भूरिया, डॉ. आशा सर्वटे और मैं सब लोग उनसे मिलने घर जाते थे। वे हमारा स्वागत करतीं थी और बढ़िया–बढ़िया नाश्ता कराती थीं। उनके स्नेही स्वाभाव के कारण हमारे घर पर भी उनका आना जाना शुरू हो गया था।

एक वार हम लोगों ने विभाग के सभी छात्र, छात्राओं और प्राध्यापकों के साथ भूतेश्वर में पिकनिक का कार्यक्रम बनाया। उसमें सर, भाभी बच्चे सभी शामिल हुए। लौटते हुए चूंकिं मेरा घर नजदीक था तो सभी ने मेरा चाय का निमंत्रण भी सहर्ष स्वीकार किया। सबने बगीचे में बैठकर चाय पी और मेरी माँ भाभी से सब बात करते रहे।

समय–समय पर वे सपरिवार हमारे यहाँ के सभी कार्यक्रमों में सदा शामिल हुए। मेरी माँ बीमार थीं तब भी वे उनको देखने आये।

सन् 1985 में मैंने तदर्थ (Adhoc) व्याख्याता के रूप मे काम किया। विभाग में उस समय डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी के निर्देशन मे नाट्य शास्त्र पर काम चल रहा था। उसमे भी मैंने और डॉ. आशा सर्वटे ने एक वर्ष काम किया।

इसी समय मुझे पी–एच.डी. की डिग्री भी अवार्ड हुई। वह दिन 2 मार्च 1987 था। विश्वविद्यायलय के आफिस में एक महिने से हड़ताल चल रही थी। तभी हमारे एक्सपर्ट आ गये। उस दिन सर की तबीयत भी खराब थी मैं बहुत परेशान थी कि क्या करूँ अब। फिर चौरसिया जी को उनके घर भेजा। खबर मिलते ही तबीयत ठीक न होने पर भी सर तुरंत आ गये। आफिस से मेरी फाइल मँगाई गई और इस तरह से मेरा वायवा हुआ। बायवा अच्छा हुआ था। वह बात भाभी जी ने मुझे बताई कि सर आपकी प्रशंसा कर बच्चों से कह रहे थे कि इस तरह तैयारी करनी चाहिए जैसी सरला ने की।

अचानक बायवा होने पर भी हर प्रश्न का सही उत्तर दिया। सुनकर मुझे तो अच्छा लगना ही था।

इसी बीच 1987 में सर जर्मनी चले गये। यह बात हम लोगों को तब मालूम पड़ी जब रिसर्च ऐसोसियेट के फार्म पर उनके हस्ताक्षर को जरूरत पड़ी। तब डॉ. कुसम भूरिया ने मेरे फार्म पर हस्ताक्षर किये थे।

ऐसोसियेटशिप में चुनाव हो जाने के बाद मैंने प्रोजेक्ट के ऊपर काम शुरू किया। तब जब भी मुझे उनके मार्गदर्शन की आवश्यकता हुई उन्होंने शंकाओं का समाधान किया।

जबलपुर में मेरी शादी हो जाने बाद मेरे जबलपुर ट्रांसफर में भी उनका सहयोग सराहनीय था। जब 1992 मैं डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय ने मेरे शोध प्रबंध 'महा भारत का काव्य सौंदर्य' का प्रकाशन किया तो पुस्तक की भूमिका लिखने के मेरे आग्रह को उन्होंने स्वीकार किया इसके लिए मैं सदा उनकी आभारी हूँ।

जब भी मैं सागर आयी, सर, भाभी, बच्चों से जरूर मिली। आचार्य डॉ. कृष्णकांत चतुर्वेदी जी के अभिनदंन समारोह में उनसे मिलना हुआ था। मैं उनको घर ले जाना चाहती थी पर उस समय वह बहुत व्यस्त थे और तुरंत ही सागर लौट गये थे। मैंने उनको एक विद्यार्थी, एक शिक्षक, एक श्रेष्ठ वक्ता, के रूप में और अपने परिवार में खुशहाल देखा है। वे सभी रूपों में हम लोगों के लिए प्रेरणास्त्रोत रहे हैं।

इधर 10–12 सालों से सर से मिलना नहीं नहीं हो पाया है कारण कि व काफी समय से सागर से बाहर ही रहे हैं।

आज वे शिखर पर हैं। हम सबकी हार्दिक शुभकामनाएं सदा उनके साथ हैं।

रिसर्च

भूतपूर्व ऐसोसिऐट

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी –कुछ संस्मरण

डॉ. रामरतन पाण्डेय

मैं पिछले लगभग चालीस वर्षों से आचार्य त्रिपाठी जी के संपर्क में हूं। सन् 1973 से 1990 तक उनके श्री चरणों में बैठकर मुझे स्नातक से लेकर डी.लिट् तक की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं एक विद्यार्थी के रूप में उनसे सबसे अधिक समय तक संपर्क में रहने वाला छात्र हूं। त्रिपाठी जी सरल, सहज तथा प्रत्येक छात्र को सहयोग करने में हमेशा तत्पर रहते थे। लेकिन पढ़ाई के अलावा अन्य किसी बात की चर्चा तो दूर, एक शब्द भी वे न सुनते थे न कहते थे। वे अपनी अद्वितीय प्रतिभा तथा विलक्षण बुद्धि के लिए सागर, प्रदेश, देश तथा विदेशों में भी जाने जाते है। प्रो0 दाश बताते थे कि त्रिपाठी जी जिन–जिन देशों में गये हैं वहां के लोग उनकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं तथा उनका गुणगान करते हैं।

उनके कुछ संस्मरण मेरे मस्तिष्क में हैं, जिन्हें सोचकर मैं कभी कभी हैरान रह जाता हूं तथा उनके आदर्श के प्रति नतमस्तक हो जाता हूं। त्रिपाठी जी सभी को सहयोग देते थे लेकिन कभी किसी का सहयोग लेते नहीं थे। वे अपने तथा विभाग के सभी कार्य स्वयं ही किया करते थे। मैं स्वभाव वश अपने गुरूओं के प्रति विशेष आदर भाव रखता था। उस समय डॉ. रामजी उपाध्याय, डॉ. वनमाला भवालकर मेरे गुरूजन थे तथा उम्र में मेरे माता–पिता के समकक्ष भी थे इसलिये मैं उनके प्रति ज्यादा श्रद्धावनत रहता था। उपाध्याय जी जब विभाग में आते तो मैं दौड़कर सीढ़ियों के पास ही उनसे चॉबी लेकर उनका दरवाजा खोलता, पर्दा लगाता इत्यादि, इसी प्रकार जब भवालकर मेडम की कार उन्हें लेने आती तो मैं क्लास में जाकर सूचित करता तथा उनका बैग लेकर उनके आगे आगे चलता। मैं ऐसा करके स्वयं को अपने आप में सम्मानित समझता था। हालांकि गुरूजनों की इस सेवा भावना से मुझे नुकसान होता था और यह नुकसान यह था कि इनकी कक्षाओं में छोटी छोटी गलती पर अन्य छात्रों की तुलना में मुझे ज्यादा डाँट खाना पड़ती थी।

लेकिन इस डाँट में भी, मैं गर्व का अनुभव करता था। लेकिन त्रिपाठी जी के साथ में ऐसा कुछ नहीं था। लेकिन संभवतः मेरी इस भावना से वे प्रभावित जरूर थे। मैं पान का शौकीन था तथा त्रिपाठी जी भी कभी कभार पान खाते थे मैं उनके घर प्रायः सपत्नीक जाया करता था और उनके लिए भी कभी कभार पान ले जाता था। त्रिपाठी जी को मेरा यह सेवाभाव दो–चार दिन तो अच्छा लगा लेकिन एक दिन उन्होंने कुछ अनमने भाव से कहा कि हम लोगों ने अब पान खाना छोड़ दिया है अतः अब तुम पान नहीं लाया करे। पान बेकार पड़ा रहता है। मैंने निराश भाव से पूज्य भाभी जी की ओर देखा और उनकी मुस्काराहट से समझ गया कि गुरूजी को मेरा यह सेवा भाव स्वीकार नहीं हैं और उस दिन से मैंने पान ले जाना बंद कर दिया।

मैं लोक सेवा आयोग की परीक्षा देकर आडीटोरियम से बाहर निकला मेरे साथ विभाग की ही एक शोध छात्रा डॉ. गायत्री श्रीवास्तव (सेवानिवृत महिला बाल विकास अधिकारी) थी। हम दोनों प्रश्न पत्र का मिलान कर रहे थे तभी त्रिपाठी जी वहां दिखे हम दोनों ने जिज्ञासा वश उनसे उस प्रश्न पत्र के बारे में पूछना शुरू कर दिया। त्रिपाठी जी ने स्कूटर खड़ी करते हुए दस मिनिट में वही पर हमलोगों का सामान्य ज्ञान का पूरा प्रश्न पत्र हल कर दिया और बिना एक क्षण रुके विभाग में चले गये। हम दोनों अवाक् और अचेत से,एक दूसरे के चेहरे में अपनी अपनी अयोग्यता को झाँकते रह गये।

हमारे एक अभिन्न मित्र हैं पं. श्री पुरूषोत्तम लाल जी तिवारी ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने मेरे कहने से संस्कृत में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और एक दिन ज्योतिष में पीएच.डी. करने की इच्छा व्यक्त की। मैं उनको लेकर त्रिपाठी जी के यहाँ गया शाम हो गयी थी। चाय पीते–पीते श्रीमती त्रिपाठी ने बताया कि सर की ड्यूटी परीक्षा विभाग में लगी है सुबह सात बजे के गये हैं कुछ नाश्ता भी नहीं किया, हो सकता है थोड़ा विलम्ब हो जाये तो मैं उनका आशय समझ गया और हम लोग चल पड़े। संयोग से बाहर निकले ही थे कि त्रिपाठी जी मिल गये उन्होंने हम से आने का कारण पूछा हमने बता दिया साथ ही यह कह कर कि अभी आप थके हैं बाद में यह काम कर लेंगे। लेकिन सर को परोपकार करने में इतना धीरज कहां ? तत्काल कहा नहीं हम बिल्कुल थके नहीं है और अभी भूख की इच्छा भी नहीं है चलो बैठते है और भाभी जी को पुनः चाय का बोलकर हम लोगों को शोध का विषय, शोध की विषय वस्तु लिखाने बैठ गये। कुछ ज्योतिष् विषयक शोध ! ग्रंथ भी उपलब्ध करा दिये। पुरषोत्तम लाल जी धन्यवाद देने के लिए शब्द

खोजने लगे तब तक त्रिपाठी जी अन्दर चले गये। मैंने पुरषोत्तम लाल जी का हाथ पकड़ा और बाहर निकल आया।

सन् 1990 में मेरी ज्योतिष् की परीक्षा थी परीक्षा हाल में पत्रा ले जाना स्वीकार था। लेकिन जानकारी न होने से तत्कालीन परीक्षा नियंत्रक श्री होराप्रसाद जी गुप्ता ने मेरे पत्रा प्रवेश पर पाबंदी लगा दी और सामान्य छात्र समझकर मुझ पर हावी होने लगे। उनको हावी होते देखकर मैंने उन्हें अपना कुछ परिचय दे दिया। अब गुप्ता जी कुछ सोच में पड़ गये उन्होंने हमारे सामने एक प्रस्ताव रखा कि यह प्रश्न पत्र आगामी समय में रख लेगे क्योंकि अभी पेपर खुला नहीं है मैं इस परीक्षा का एकलौता परीक्षार्थी था। मैंने उनका परामर्श मान लिया और सीधा त्रिपाठी जी के यहां गया। त्रिपाठी जी ने मुझे गेट पर देखते ही समझ लिया कि माजरा क्या हैं और वे अन्दर से स्कूटर की चॉबी लेकर ही बाहर निकले और बोले जल्दी चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूं और गुप्ता जी से कहकर तुम्हें पत्रा ले जाने की अनुमति तथा अतिरिक्त समय भी दिलवाऊंगा। मैं उनकी इस सहयोग भावना के प्रति नतमस्तक हो गया।

प्रो. रामजी उपाध्याय की सेवानिवृत्ति के दिन मैं उनके निवास तक उनको भेजने गया मेरे हाथ में श्रीफल शाल तथा त्रिपाठी जी द्वारा रचित प्रशस्ति पत्र था। उपाध्याय जी ने प्रशस्ति पत्र बड़े शान्त भाव से पढ़ा फिर मुझसे कहा, पंडित जब राधावल्लभ जी मेरी उम्र पर आयेंगे तो मुझे काफी पीछे छोड़ देंगे।

त्रिपाठी जी को अनेकानेक बड़े–बड़े सम्मान मिले लेकिन उनके इस सम्मान की जानकारी समाचार पत्र से अथवा दूरदर्शन के माध्यम से ही हो पाती थी वे यश गाथा से हमेशा दूर ही रहते थे लेकिन एक बार तो हद ही हो गयी जब मैं त्रिपाठी जी के घर उनके किसी पुरस्कार प्राप्ति पर बधाई देने उनके घर पहुॅचा। भाभी जी ने पूछा किस बात की बधाई दे रहे हो तो मैंने कहा कि सर को कोई बडा सम्मान मिला है तब तक त्रिपाठी जी अपने अध्ययन कक्ष में गये और उस दिन के अखबार का वह भाग जिसमें यह समाचार छपा था, लाकर भाभी जी के सामने पटंक दिया। श्रीमती त्रिपाठी जो इस समाचार से पूर्णतया अनभिज्ञ थी पढकर अपने क्रोध को और मैं अपनी हंसी को रोक नहीं पाया। फिर सर ने शांत भाव से कहा मैं भूल गया था।

इसी प्रकार उनके विदेश यात्रा की जानकारी कभी भी किसी को भी

पता ही नहीं चलती थी। जबकि अन्य अध्यापकगण दो–चार माह पहले ही अपनी यात्रा की भविष्य वाणी करने लगते हैं। त्रिपाठी जी के यहाँ जाने पर मालूम पड़ता था कि आज सुबह विदेश चले गये। यह पूछने पर कि सर कल तो मिले थे पर बताया नहीं, उत्तर मिलता भूल गये होगें ।

उनकी विदेश यात्रा–विषयक एक रोचक संस्मरण त्रिपाठी जी ने मुझे और आचार्य राजेन्द्र मिश्र को बताया था। जर्मनी यात्रा के दौरान किसी अन्य विश्वविद्यालय ने उन्हें व्याख्यान के लिये आमंत्रित किया और एक वरिष्ठ अधिकारी को स्टेशन पर ससम्मान लाने के लिये तैनात किया। जब त्रिपाठी जी स्टेशन पहुँचे तो वह अधिकारी राधावल्लभ त्रिपाठी जी को खोजने लगा। त्रिपाठी जी उसका आशय समझ गये और कुछ टूटी फूटी जर्मन भाषा में कहा कि मैं ही राधावल्लभ त्रिपाठी हूँ, मैं ही व्याख्यान देने आया हूँ लेकिन वह अधिकारी यह सोचकर कि यह लड़का मजाक कर रहा है क्योकि भारत का प्रोफेसर कोई वयोवृद्ध धोती कुर्ता धारी ही होगा। उसने इनकी बात को तीन बार अनसुना किया और इनके तीसरी बार कहने पर इनको कुछ झिड़कता सा आगे बढ गया। त्रिपाठी जी वहीं स्टेशन पर रजिस्टर में अपनी उपस्थिति दर्ज कर तथा घटना का जिक्र करते हुये वापिस आ गये। दूसरे दिन वहॉ के प्रशासन ने उस अधिकारी के विरूद्ध कार्यवाही प्रारंभ कर दी। जब उस अधिकारी को वस्तुस्थिति समझ में आयी तब वह अपना माथा ठोक कर रह गया।

एक बार की अन्य घटना का उल्लेख करता हूं कि त्रिपाठी जी स्कूटर से गिर गये परिणामस्वरूप दाहिने हाथ में चोट आई और प्लास्टर बँध गया। लेखन कार्य त्रिपाठी जी के लिए प्राण वायु की तरह है, अब लेखन कार्य रूक गया। एक सप्ताह बाद किसी कार्य वश जब मैं विभाग में गया तो देखा कि त्रिपाठी जी बायें हाथ से ही उसी गति से लेखन कार्य कर रहे थे जिस गति से दाहिने हाथ से करते थे। मैं उनकी इस अनूठी प्रतिभा को देखकर स्तब्ध रह गया। बाद में चर्चा के दौरान मेरे सहपाठी डॉ. दिवाकर शर्मा ने बताया कि वे इसी अवस्था में बायें हाथ से ही अपनी स्कूटर की स्टेपनी बदलते हुए कैम्पस में दिखाई दिये थे।

शोध कार्य के समय मेरे एक अभिन्न मित्र थे डॉ. इन्द्रमोहन सिंह (सेवानिवृत विभागाध्यक्ष पंजाबी विश्वविद्यालय) एक दिन पुस्तकालय में बैठकर वे हमें काव्य प्रकाश पढ़ा रहे थे तभी उन्हें किसी श्लोक में कठिनाई प्रतीत हुई वे तत्काल हम को लेकर त्रिपाठी जी के बंगले की ओर चल पड़े।

वे पीएच.डी. तो प्रो. रामजी उपाध्याय के अंडर में कर रहे थे लेकिन वे अपनी जिज्ञासायें त्रिपाठी जी से शांत करते थे। मई जून की प्रचण्ड धूप थी हम लोग घर पहुंचे त्रिपाठी जी ने काव्य प्रकाश समझाकर कहा कि इतनी धूप में तुम लोगों को नहीं आना था। अब आ गये हो तो यही बैठकर एक–दो घंटे पढ़ो और जब धूप कम हो जाये तब जाना।

हम लोग चुपचाप बैठकर पढ़ने लगे तभी एक अन्य शोध छात्र जी0एस0 कुर्वेती (सेवानिवृत वरिष्ठ अधिकारी म.प्र. शासन) आये और त्रिपाठी जी से कहा सर उसी कार्य के लिए कोर्ट चलना है अभी रजिस्ट्रार साहब बैठे है। आप चलकर सर्टिफाई कर देगे तो मेरी फेलोशिप स्वीकृत हो जायेगी। संभवतः त्रिपाठी को उनके इस कार्य की पूर्व जानकारी थी त्रिपाठी जी तत्काल उठे अपनी स्कूटर निकाल कर कुर्वेती को लेकर उसी धूप में कोर्ट की ओर चल पड़े और हम दोनों से कहा बैठो इतनी धूप में अभी नहीं जाना है। उनके जाने के बाद हम लोग उनके इस उदार स्वभाव की सराहना करते बैठे रहे।

त्रिपाठी जी के सानिध्य में मैं अधिक समय तक रहा उनको अधिक नजदीक से देखने के कई अवसर मिले। निश्चित रूप से त्रिपाठी जी अत्यधि ाक परिश्रमी, कई भाषाओं के ज्ञाता और संस्कृत के साथ–साथ अन्य विषयों के भी प्रकाण्ड विद्वान है। मेरे मन में हमेशा एक बात आती है कि त्रिपाठी जी को कोई न कोई दैविक कृपा अतिरिक्त रूप से प्राप्त है। अन्यथा छः साल की अबोधावस्था में कोई कविता का सृजन नहीं कर सकता। मैं सर्वथा अयोग्य होते हुए भी उनका आशीर्वाद प्राप्त करने का अधिकार रखता हूँ। अस्तु

प्रस्तुतकर्ता
रामरतन पाण्डेय, सागर म.प्र.

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी–असाधारण व्यक्तित्व और उनके संस्मरण

हेमलता विल्थरिया

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् के मनीषी डॉ. त्रिपाठी मेरे गुरू रहे हैं, जिनके विषय में लिखने में मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। उसके मार्ग निर्देशन में सन् 1993 में मुझे विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त हुई। मैं उनकी व अपनी गुरूपत्नी डॉ. श्रीमती सत्या त्रिपाठी की आभारी हूं। मेरी अत्यन्त विषम परिस्थिति में आचार्य त्रिपाठी से न केवल सहयोग मिला, वरन् आत्मीय स्नेह एवं सौजन्यता श्री मिली जो अविस्मरणीय है। आपका सान्निध्य मुझे सन् 1990 से प्राप्त हो रहा है इस सान्निध्य का व मेरे कार्य की पूर्णता के सहयोग का श्रेय मेरे स्व. पति श्री प्रेमनारायण बिल्थरिया जी का रहा है जो डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में राष्ट्रीय सेवा योजना समन्वयक समन्वयक अधिकारी के पद पर पदस्थ रहे थे।

त्रिपाठी जी का जन्म मध्यप्रदेश के रायगढ़ जिले में 14 फरवरी सन 1949 में हुआ। धार्मिक प्राङगण में पले आपका बाल्यकाल से ही संस्कृत के प्रति रुझान रहा है। आप अल्पायु में अपनी शिक्षा समाप्त कर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में सन् 1980 में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित हुए, उसी समय से आप विभिन्न रचनाओं के सृजन, संपादन एवं प्रकाशन करते रहे उनमें कई रचनाऐं पुरस्कृत हुई जैसे – 1. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास (1976), 2. कुन्दमाला (1982)। अपनी रचनाओं की सर्जना व प्रकाशन द्वारा वैदिक काल से अभिसिंचित वैदिक वाङ्मय की परम्परा को समृद्ध बनाने में आधुनिक युग में आप प्रयासरत रहे हैं। इन्होंने इनकी रचनाओं में देवभाषा संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी की त्रिवेणी प्रवाहित कर

न केवल भारत वरन् स्म्पूर्ण विश्व को ज्ञान की सुरसरि में निमज्जन कराया है। (1) कालिदास की समीक्षा परम्परा (2) भारतीय धर्म और संस्कृति इत्यादि अनेक रचनाऐ इनके असाधारण व्यक्तित्व का साकार दर्पण है, व अद्‌भुत प्रतिभा का प्रस्फुटन है। इन्होंने लोक सांस्कृतिक जीवन का चित्रण आधुनिक परिवेश के साथ कर जीवन मूल्यों को संस्थापित किया है।

आधुनिक युग में अनेक कवि रत्न हुए हैं जैसे – पण्डिता क्षमाराव श्रीनिवासरथ, अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र इत्यादि। आप भी इन्हीं सरस्वतीपुत्रों में से एक है। आपकी कविता का आधार मालविकाग्निमित्र की निम्न पंक्ति है – पुराणमित्येव न साधु सर्वम् न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

भावयित्री प्रतिभा के धनी कवि ने तत्व संग्रहणी प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों का संगीत की स्वरलहरी द्वारा सम्प्रेषण किया है। इनकी पुस्तक– सांस्कृतिक कविता की लोकधर्मी परम्परा' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'रोटिका लहरी' कविता में समाज की वेदना का मार्मिक चित्रण किया है व जल समस्या ने समाज को कैसे विद्रूप बनाया जिसका सटीक चित्रण आपने 'निदाघ लहरी' के 19 वे श्लोक की निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया है–

साहटं स्वघटं चाग्रे स्थापयन्ति तु पृष्ठतः ।

कटूकत्या दारत्येषा हट्‌टा हट्टिकया अथवा।।

मुझे आपकी संगीत माधुरी सुनने का अवसर प्रायः अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के समय कवि सम्मेलन में प्राप्त हुआ व अखिल भारतीय भवभूति समारोह में प्राप्त हुआ, जिसे सुनकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हुआ, साथ ही मुझे भी नई दिशा में सोचने का मार्गदर्शन मिला।

लोक जीवन के पारखी कवि की कविता, अदम्य साधना, संस्कृत के प्रति लगन, निष्ठा व समर्पण आधुनिक युग के युवकों व कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। नई दिशाओं का आयाम है। ज्ञानवृद्ध ऐसे आचार्य त्रिपाठी जी के सेवानिवृत्ति के अवसर पर मैं उनके यशस्वी व स्वस्थ जीवन की कामना करती हूं। पुनः मैं उनको अज्जलिबद्ध प्रणाम करती हूं।

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष – शतैरपि।।

(मनुस्मृति – अ.2 / 227)

ग्वालियर

₹ 700.
ISBN : 978-93-83754-11
9789383754113
सत्यम् पब्लिशिंग हाउस
एन-3/25, मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
दूरभाष : 011-25358642 ई-मेल : satyampub_2006@yahoo.com